सार्वजनिक अर्थशास्त्र
(Public Economics)

प्रश्न पत्र-VII

Paper-VII

एम.ए. अर्थशास्त्र (उत्तरार्द्ध)

M.A. Economics (Final)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक-124 001

Copyright © 2004, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय सूची

अध्याय 1:	राज्य का आर्थिक हस्तक्षेप	5
अध्याय 2:	राजकोषीय कार्य	10
अध्याय 3:	बाजार विफलताएँ : अपूर्ण प्रतियोगिता, घटती लागतें तथा सार्वजनिक वस्तुएँ	17
अध्याय 4:	बाह्यताएँ एवं सार्वजनिक वस्तुएँ	24
अध्याय 5:	सामाजिक तथा निजी वस्तुओं की धारणा	30
अध्याय 6:	सामाजिक वस्तुओं का सिद्धान्त	34
अध्याय 7:	मुफ्त उपयोग की समस्या	38
अध्याय 8:	लिण्डाल माडल	42
अध्याय 9:	लोक चुनाव तथा राजकोषीय निर्माण प्रक्रिया; चुनाव प्रक्रिया तथा बहुमत वोट	45
अध्याय 10:	बजटिंग : बजट की धारणाऐं	52
अध्याय 11:	खर्च बजट एवं शून्य-आधार बजट में सुधार	56
अध्याय 12:	भारत में बजट बनाने की प्रक्रिया	63
अध्याय 13:	वैगनर का सिद्धान्त	68
अध्याय 14:	पीकाक तथा वाइजमैन परिकल्पना	75
अध्याय 15:	सार्वजनिक व्यय का आर्थिक प्रभाव	78
अध्याय 16:	निवेश कराइटेरिया	82
अध्याय 17:	सार्वजनिक लागत-लाभ विश्लेषण	87
अध्याय 18:	कराधान के सिद्धांत : विभिन्न धारणाएँ व सिद्धांत	93
अध्याय 19:	कराभार का विश्लेषण	105
अध्याय 20:	कुशल कर निर्धारण : इष्टतम कराधान	109
अध्याय 21:	करों का कार्यक्षमता पर प्रभाव	114
अध्याय 22:	करों का वर्गीकरण : प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर	117
अध्याय 23:	प्रगतिशील, अनुपातिक तथा प्रतिगामी कर, मूल्य वर्धित तथा विशिष्ट कर	122
अध्याय 24:	बहु इकाई वित्त	129
अध्याय 25:	अनुदान निर्धारण के सिद्धान्त	136
अध्याय 26:	केन्द्रीय सरकार के आय के स्रोत	139
अध्याय 27:	वित्त आयोग	143
अध्याय 28:	भारत का योजना आयोग	147
अध्याय 29:	केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध	152
अध्याय 30:	स्थिरीकरण के लिए राजकोषीय निति	158
अध्याय 31:	सार्वजनिक गहण प्रबन्ध	162
अध्याय 32:	कार्यशील वित्त तथा सार्वजनिक गहण के भार से सम्बन्धित विरोध	164

M.A. (Final) Economics

Paper-VII

Public Economics

M. Marks : 100
Time : 3 Hrs.

Note:

(i) Question paper will consist of two sections A and B

(ii) Section A will consist of two Compulsory questions spread over the whole of syllabus. The first question will consist of 7 parts and the candidate will be required to attempt 5 parts. Answers will be very short type about 35 words carrying 4 marks each. The second question will consist of 3 parts and the candidate will be required to attempt 2 parts. Answer will be short type of about 200 words carrying 10 marks each.

(iii) Section B of the paper will consist of 6 questions taking two from each unit, and the candidate will be required to attempt 3 questions selecting one from each unit. The answers will be full length essay type carrying 20 marks each.

UNIT–I

Economic Rationale of Government, Fiscal functions; Market failures: Imperfections, Decreasing costs, Externalities and public goods; Concepts of Private Goods Pure Public Goods Mixed Goods and Merit Goods; Theory of Public Goods: The optional provision of Public Goods, Free Rider's Problem, Lindahl Equilibrium; Public choice and Fiscal decision making, Voting systems, Majority voting.

UNIT–II

Public Expenditure: Structure and Growth of Public Expenditure; Wagner's Hypothesis, Peacock-Wiseman hypothesis; Economic effects of Public Expenditure; Criteria for Public Investment, Social Cost-Benefits analysis: Valuation of benefits and costs, discount rate; Budgeting: Concepts of budgets Reforms in Expenditures budgeting and zero based budgeting; Budget making process in India; Public Expenditure in India; Trends and Issues.

UNIT–III

Theory of Taxation: Various approaches to Taxation, neutrality, equity, ability to pay, benefits principle, revenue maximization, income maximization, Analysis of incidence of axes, Efficient tax design: Optional Taxation, Effects of Taxation on work effort, savings, investment and growth; Classification of taxes: Direct and indirect taxes, progressive, proportionate and regressive taxes, Ad-valorem and specific taxes; Tax systems in India: Structure, Composition and various economic issues.

UNIT–IV

Fiscal Federalism: Principles of Multi-Unit Finance; Principles of Grant Design; Indian Fiscal Federalism, Vertical and horizontal imbalances, Assignment of functions and sources of Revenue; Constitutional provisions; Finance Commissions and Planning Commission; Centre-State financial Relations in India, Problems of States' resources and indebtedness; Transfer of resources from Union and States to Local Bodies.

UNIT–V

Fiscal Policy: Instruments and transmission mechanisms: Fiscal policy for stabilization-automatic vs. discretionary stabilization; Various concepts of budgetary deficits, Fiscal Deficits in India: extent, trend and implication; Public Debts: Functional Finance and the controversy regarding burden of public debt and its shifting, Public Borrowing, Debt Management.

अध्याय - 1

राज्य का आर्थिक हस्तक्षेप

(Economic Rational of Govt.)

राज्य आरम्भ से ही मानव जीवन में किसीं न किसी रूप से हस्तक्षेप कर रहा है और यह विषय भी आरम्भ से ही विवादास्पद रहा है क्या राज्य को आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप करना चाहिए अथवा नहीं और यदि करना चाहिए तो किस सीमा तक? परम्परावादी अर्थशास्त्री मानते थे कि राज्य अथवा सरकार को मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं या जीवन में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। क्योंकि परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार राज्य के केवल वो ही कार्य होते हैं। (1) आंतरिक सुरक्षा बनाए रखना (2) बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा करना। इस प्रकार परम्परावादी अर्थशास्त्री राज्य की पुलिस राज्य का कार्य मानते थे और वे लेजिज फेयर (Laissage Fare) की नीति के समर्थक थे।

परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री आर्थिक विकास के लिए राज्य के हस्तक्षेप को अनिवार्य मानते हैं। क्योंकि आधुनिक राज्य पुलिस राज्य न होकर कल्याणकारी राज्य है और उसे लोगों के विकास के लिए उपयुक्त माहौल पैदा करना पड़ता है। क्योंकि आर्थिक विकास के लिए आधारभूत सुविधाएँ प्रदान करनी पड़ती हैं, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, यातायात, संचार, बैंकिग, सड़क, रेल सेवाएं, परिवहन सेवाएं इत्यादि। इन सेवाओं को निजी क्षेत्र पूरा नहीं कर सकते क्योंकि इन पर लागत अधिक तथा जोखिम उठाना पड़ता है और इससे प्रत्यक्ष व तुरंत लाभ भी नहीं मिलता, इसलिए कल्याणकारी सरकार ही यह कार्य कर सकती है। निजी क्षेत्र की बुराइयों के कारण ही सार्वजनिक क्षेत्र का अधिकतम विस्तार हुआ है। दुर्लभ साधनों का समुचित वितरण आय की विषमताएं, आर्थिक अस्थिरता व्यापक बेरोजगारी, एकाधिकारी प्रव तियों में व द्धि, सार्वजनिक वित ही अवहेलना, असंतुलित आर्थिक विकास आदि ऐसे त्रुटिपूर्ण निर्णय हैं जिसके कारण निजी क्षेत्र की उपेक्षा कर सार्वजनिक क्षेत्र की आवश्यकता महसूस की जाती है और इसके कारण ही सार्वजनिक क्षेत्र का विकास हुआ है। इन वर्णित बुराइयों को दूर करने के लिए ऐसी संस्था की आवश्यकता है जो अर्थव्यवस्था की नियमित देखभाल कर सके और आर्थिक क्रियाओं का उपयुक्त ढंग से संचालन कर सके।

ब्राइट सिंग के अनुसारः प्रगतिशील अर्थव्यवस्थाओं में 'सरकारी हस्तक्षेप पूंजीवादी संकट के निदान के रूप में पनपा है, लेकिन विकासशील देशों के राज्यों ने अपनी शक्ति प्रचलित पिछड़ेपन के कारण बढ़ाई है।

Breaking social chasms and creating a true chological, idelogical, social and political situation proportion to economic development becomes the permanent duty of the state in such countries.

अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की कुछ ऐसी समस्याएं होती हैं जिनके निदान के लिए सरकारी क्षेत्र को आगे सामना करना पड़ता है और एक मुख्य भूमिका निभानी पड़ती है ये समस्याएं निम्नलिखित हैं।

1. सामाजिक ढांचे में परिवर्तन

किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए उसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक ढांचे में परिवर्तन करना सबसे आवश्यक होता है। आधुनिक समाज में कुछ ऐसी सामाजिक व धार्मिक संस्थाएं कार्य कर रही हैं जो कि आर्थिक विकास के कार्य में बाधा उत्पन्न कर रही है जैसे संयुक्त परिवार प्रणाली, जाति प्रथा, आपसी मित्रता की भावना इत्यादि ऐसी समस्याएं हैं जिनके होते आर्थिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यदि हम आर्थिक विकास करना चाहते हैं तो हमें समाज के प्रत्येक द ष्टिकोणों में परिवर्तन करना होगा। परन्तु सामाजिक द ष्टिकोणों (सुधारों) में परिवर्तन धीरे-धीरे ही किया जाए तभी आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

फ्रांसीसी अर्थशास्त्री हैशु के अनुसार, "It took Europe ten centuries or more to produce to one an individual orientations of life. "

इस प्रकार सरकार सामाजिक सुधारकों को प्रोत्साहन देकर अर्थव्यवस्था को विकास की गति प्रदान करती है और आर्थिक विकास के लिए काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

2. संस्थागत सुधार

संस्थागत सुधार भी आर्थिक विकास के मार्ग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिए सरकार ही दूरसंचार व परिवहन व विस्तार व विकास कर सकती है। क्योंकि यह कार्य किसी निजी कंपनी के कार्य क्षेत्र से बाहर होता है और इन कार्यों को करने में वे असमर्थ भी होते हैं। कुछ वित्तीय संस्थाओं के विकास के द्वारा सरकार कृषि और उद्योगों का विकास कर सकती है जैसे Co-operation bank, land, moretages, industrial bank, investment-bank co-operation etc.**। सरकार श्रमिकों के लिए मापदण्ड तैयार करके संस्थाओं का विकास कर सकती है। जैसे मजदूर के काम के घण्टे निश्चित करना, मजदूरी भुगतान स्थापित की गई मशीनरी की देखरेख व श्रमिकों सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है ऐसे मापदण्ड हैं। जिनके कारण आर्थिक विकास को बल मिलता है। कुछ कानून मालिक व मजदूरों के बीच संबंध मजबूत बनाते हैं। जिनके कारण श्रमिकों की कार्यकुशलता और उत्पादकता दोनों में ही व द्धि होती है। सरकार द्वारा श्रमिकों को ऐसी सुविधाएं उपलब्ध करानी चाहिए जिनके कारण श्रमिकों की उत्पादन क्षमता में व द्धि होती है। ऐसे गांवों में ही शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, पानी, संचार परिवहन की सुविधाएं। इस प्रकार ये सुविधाएं**

कोई निजी कंपनी या व्यक्ति उपलब्ध नहीं करा सकता, इसलिए सरकार को ही ये सुविधाएं लोगों को उपलब्ध करानी चाहिए।

3. जनहित के कार्यों में सुधार

आजकल यह माना जाता है कि व्यक्ति अपने सुख-दुःख के लिए स्वयं उत्तरदायी नहीं होता बल्कि यह उत्तरदायित्व तो समाज पर होता है। क्योंकि सरकार ही समाज ही व्यक्ति के विकास का उचित वातावरण पैदा करता है निजी उद्यम या क्षेत्र इस प्रकार के वातावरण का निर्माण नहीं कर सकते। लोगों को बिजली, पानी, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन इत्यादि सुविधाएं लोगों के विकास के लिए अति महत्वपूर्ण साधन हैं और इस प्रकार के कार्यों की अर्थव्यवस्था का उचित विकास होता है। वास्तव में हम देखें तो केवल राज्य ही यह कार्य (वातावरण) तैयार करवाने में सक्षम है।

इस कार्य को कोई भी सवामित्व कंपनी पूरा नहीं कर सकती। इस प्रकार से जनसंबंधी सुविधाएं सरकार की सहायता के बिना नहीं कराई जा सकती।

4. शिक्षा

शिक्षित समाज ही आर्थिक विकास कर सकता है और बिना शिक्षा के आर्थिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जैसे (Myrdal) ने ठीक ही कहा है :

"To start on a National Development Progress while leaving the population largely illitrate seems to me to be futile." जैसे श्रम के लिए श्रमिक की गुणवता अति महत्वपूर्ण होती है अकुशल श्रमिक चाहे अधिक समय तक कार्य कर ले तो भी उनकी प्रति व्यक्ति उत्पादकता व प्रति व्यक्ति आय कम ही होगी। इसी तरह अकुशल और अशिक्षित श्रमिकों से यह आशा भी नहीं की जाती कि वे मशीनों का रखरखाव कर सकें व उनका ईष्टतम उपयोग कर सकें। यह कार्य केवल उचित शिक्षा प्रणाली द्वारा ही संभव हो सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था का किसान वर्ग शिक्षा के अभाव में अपने साधनों का पूर्ण उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। और यही उनके पिछड़ेपन का कारण है। इसलिए मजदूरों, किसानों और सभी वर्गों के लोगों को तकनीकी शिक्षा उपलब्ध कराना अति आवश्यक है। चूंकि यह कार्य कोई व्यक्तिगत कंपनी या निजी क्षेत्र के लोग नहीं कर सकते। इसलिए सरकार द्वारा ही लोगों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए। शिक्षा में भी सरकार को तकनीकी शिक्षा व व्यावसायिक शिक्षा को अधिक महत्व देना चाहिए। यात्रिकों वैज्ञानिकों, डॉक्टरों, कलाकारों, अध्यापकों, कृषि विशेष से इत्यादि की शिक्षा को उचित महत्व देना चाहिए। इस प्रकार से अल्पविकसित देशों में शिक्षा के विकास पर अत्यधिक निवेश की आवश्यकता होती है, जैसे - बच्चों पर किया गया निवेश, भवनों पर किया गया निवेश, उद्योगों के किए गए निवेश की भांति शिक्षा पर भी भारी निवेश करना जरूरी है यह कार्य कंपनी सरकार ही कर सकती है।

5. सामाजिक पूंजी का निर्माण

किसी भी देश के विकास के लिए सड़कों, नहरों, पुलों, रेलों, बांधों का निर्माण अति आवश्यक होता है। इसी प्रकार मानवीय पूंजी के निर्माण के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, श्रम कल्याण आदि के व्यवसाय की आवश्यकता होती है। केवल सरकार के लिए ही इतने व्यापक स्तर पर पूंजी लगाना संभव है और न ही वे इतने व्यापक स्तर पर पूंजी लगाना पसंद करते हैं क्योंकि प्रतिशत की आशा तुलनात्मक रूप से बहुत कम रहती है, लाभ के लिए काफी लंबे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है और साथ ही इस प्रकार के कार्यों के लिए जोखिम भी उठाना पड़ सकता है। इसलिए सामाजिक पूंजी का निर्माण करने के लिए सरकार को निवेश करना पड़ता है। क्योंकि बिना सरकारी सहयोग के यह कार्य संभव नहीं हो सकता।

6. बेरोजगारी

बेरोजगारी का सामना करने के लिए आर्थिक क्षेत्र में सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक है बाजार आर्थिक व्यवस्था अनेक स्थितियों के बेरोजगारी का पूरी तरह सामना करने में असफल रहे हैं जहां बेरोजगारी बढ़ने लगती है वह कोई भी अकेला उद्यम सुधार नहीं कर सकता। और पूंजी रोजगार की स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकता। यदि अनेक निजी उद्यम मिलकर भी इस समस्या का निपटारा करना चाहे तो भी वे केवल कुछ हद तक ही इस समस्या का निपटारा कर सकते हैं संपूर्ण रूप से नहीं। केवल सरकार ही इस द ष्टि से सक्षम होती है कि वह विभिन्न उद्योगों और कार्यों में बेकार लोगों को रोजगार प्रदान करे तथा और भी संस्था में रोजगार के साधन उपलब्ध कराए। इसे हम रेखाचित्र से देख सकते हैं।

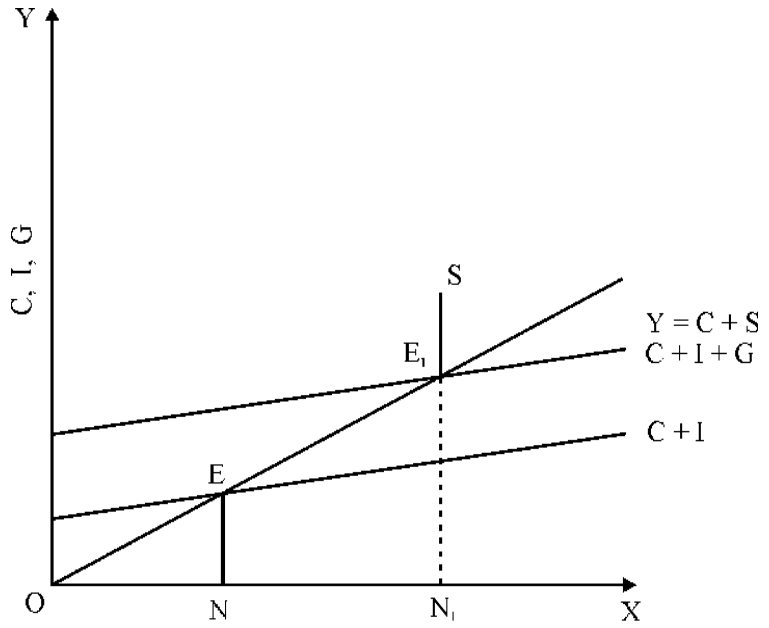

Income / Employment

इस Diagram से हम देख सकते हैं कि 45° रेखा पर E_1 बिन्दु पर $C + 1$ रेखा से ON रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं। इस निजी उद्यम से पूर्ण रोजगार के अवसर प्राप्त नहीं कर पाते। इसलिए सरकार को आगे आना पड़ता है, तथा सरकारी व्यय (G) के उपरान्त अब सन्तुलन यदि E_1 बिन्दु पर होता है तो हमें ON_1 रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं जो कि पूर्ण रोजगार स्तर को प्रकट करते हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि बिना सरकारी सहयोग के पूर्ण रोजगार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पूर्ण रोजगार महत्वाकांक्षी लक्ष्य की प्राप्ति केवल सरकार के माध्यम से ही हो सकती है बिना सरकारी सहयोग के यह संभव नहीं हो सकता।

7. बाजार को विस्त त करना

सरकार का मुख्य कार्य बाजारों को अत्यधिक रूप से विस्त त करना है विकासशील देशों में बाजार अपेक्षाकृत सकुंचित होते हैं अतः इन्हें विस्त त करने के लिए सरकार स्वयं इस क्षेत्र में प्रवेश करती है और इस प्रकार की संस्थाओं का विस्तार करती है जो कि विस्त त बाजार का आधार बना सके।

8. परिवार नियोजन और जनसंख्या सम्बन्धी विकास

आज अधिकांश विकासशील देशों में अधिकतर जनाधिक्य की समस्या है अर्थात् तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या नई-नई समस्याओं को जन्म दे रही है जो आर्थिक विकास के रास्ते में बहुत बड़ी बाधा उत्पन्न करती है। लोगों को परिवार नियोजन संबंधी जानकारी उपलब्ध करानी चाहिए, उन्हें छोटे परिवार के महत्व के बारे में जाग त करना चाहिए। इसलिए आवश्यक है कि अस्पतालों और परिवार परामर्श केन्द्रों का अधिक विस्तार करना चाहिए, म त्यु दर को कम करके जन्मदर को कम करना चाहिए। स्वास्थ्य और चिकित्सा कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि वे बेहतर मेडिकल सेवाएं लोगों को उपलब्ध करवा सके। सरकार के द्वारा किए जाने वाले सभी कार्य जिसमें परिवार नियोजन के कार्यक्रम शामिल नहीं हैं वे बेकार साबित होंगे यदि बढ़ती हुई जन्मदर को कम नहीं किया गया।

अतः स्पष्ट है कि आर्थिक क्षेत्र में सरकार का प्रवेश औचित्यपूर्ण है। विशेषकर विकासशील देशों के लिए सरकार द्वारा आर्थिक क्रियाओं का किया जाना अति आवश्यक है। कोई भी अर्थव्यवस्था कितनी भी पिछड़ी हुई होगी उसमें सरकारी क्षेत्र का उतना ही अधिक महत्व होता है। आर्थिक क्षेत्र में राज्य का प्रवेश इसलिए भी उचित है क्योंकि इसके पास खर्च करने की क्षमता होती है। आधुनिक सरकार केवल साधनों की स्थायी अथवा नव प्रवर्तक ही नहीं है बल्कि बहुत बड़ी उपभोक्ता व्ययकर्ता और बचतकर्ता भी है। अपनी इस आर्थिक क्षमता से वह आर्थिक सामाजिक लाभ में व द्धि कर सकती है जो निजी पूंजी द्वारा संभव नहीं है। सार्वजनिक विनियोग की विवेकपूर्ण व द्धि से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से निजी क्षेत्र का भी विस्तार हो सकता है और इसके फलस्वरूप देश की अर्थव्यवस्था सर्वांगीण विकास की ओर अग्रसर हो सकती है।

अध्याय - 2
राजकोषीय कार्य
(Fiscal Functions)

वर्तमान युग में सभी अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ इस विचार से सहमत हैं कि मनुष्य के आर्थिक जीवन में सरकारी हस्तक्षेप होना चाहिए, प्रत्येक प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में सरकारी हस्तक्षेप आर्थिक जीवन में होता है। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि राज्य का हस्तक्षेप सिर्फ आर्थिक क्रियाओं के ''नियमन और नियन्त्रण'' (Regulation and Control) या मुद्रा की पूर्ति के 'नियमन व नियन्त्रण' तक ही सीमित होना चाहिए, परन्तु प्रो. लुईस, नेल्सन, नर्कसे तथा हैर्षभन आदि ने भी अपने आर्थिक विकास माडलों में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए इन अर्थव्यवस्थाओं को 'निर्धनता के दुश्चक्र' से निकालने के लिए एक 'बड़े धक्के' (Big Push) के लिए 'विकास का न्यूनतम आवश्यक प्रभाव' (Critical Minimum Effort Thesis) के प्रयत्न की आवश्यकता है और इसके लिए अत्यधिक राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

प्रो. मैसग्रेव ने आधुनिक राज्यों में सरकार के वित्तीय कार्यों को निम्न तीन भागों में बांटा है :

1. **आवंटन (Allocation Function)**
2. **वितरण कार्य (Distribution Function)**
3. **स्थायित्व कार्य (Stablization Function)**

1. आवंटन कार्य (Allocation Functions)

इस फलन के अनुसार बजट नीति का सम्बन्ध इस बात से है कि समाज के कुल साधनों का विभाजन व निर्धारण निजी क्षेत्र व सामाजिक क्षेत्र में किस प्रकार से तथा कितनी मात्रा में आवंटित किया जाए।

बाजार अर्थव्यवस्था की प्रक्रिया (Market Machenism) विभिन्न बाजार की विशेषताओं के साथ कार्य करती है, जैसे - (i) पूर्ण प्रतियोगिता की शर्त (ii) बढ़ती लागतें (iii) सामाजिक वस्तुओं का न होना (iv) पूर्ण ज्ञान तथा (v) पूर्ण गतिशीलता इत्यादि।

परन्तु व्यवहारिक जीवन के कुछ क्षेत्रों में बाजार की शक्तियाँ कार्य नहीं करती तथा उनके आदर्श परिणाम भी नहीं आते, जैसे आय के समान वितरण की समस्या, पूर्ण रोजगार की

प्राप्ती तथा कीमत स्थिरता इत्यादि कार्यों में बाजार की शक्तियाँ आदर्श परिणाम नहीं देती हैं। उत्पादकों व उपभोक्ताओं का अपूर्ण ज्ञान विकसित देशों में भी अपूर्णता को जन्म देते हैं। अतः इन अपूर्णताओं को दूर करने के लिए राजकोषीय क्रियाओं की जरूरत पड़ती है, इसलिए उत्पादन तथा उत्पादन के साधनों के इष्टतम प्रयोग (Optimum Use) के लिए बजट नीति की आवश्यकता है।

सरकार निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र से प्राप्त वस्तुओं के मिश्रण में परिवर्तन की नीति अपनाती है तो सरकार को ऐसी नीतियों को अपनाना होगा जिससे उत्पादन के साधनों के संयोगों का मिश्रण उत्पादन प्रक्रिया के तरीकों के प्रयोग के लिए अलग हो और जिससे वस्तुओं व सेवाओं की कीमतों का निर्धारण भी सरकार अपनी नीतियों द्वारा करती हैं इन सभी नीतियों को आवंटन नीतियाँ (Allocation Policies) कहा जाता है।

अर्थव्यवस्था में निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में उत्पादन का बंटवारा

(Allocating the Economy's output between Private and Public Sectors):

इसकी व्याख्या देश के 'उत्पादन संभावना वक्र' से की जा सकती है। रेखाचित्र-1 में X-अक्षीश पर निजी क्षेत्र की वस्तुएं तथा Y-अक्षीस पर सार्वजनिक क्षेत्र की वस्तुएं निजी क्षेत्र में अधिकतम संभावित उत्पादन की मात्रा का उत्पादन होना अनिवार्य है, उदाहरणतया इष्टतम उत्पादन के लिए सरकारी क्षेत्र द्वारा न्यायालय स्थापित करना तथा कानून व्यवस्था को बनाए रखना जरूरी है। OX से कम सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश को केवल अराजकता फैलाने वाली सरकार ही चुनेगी। पूर्ण रोजगार की अवस्था में उत्पादन, उत्पादन संभावना वक्र पर ही होगा और संसाधनों के आबंटन का निर्माण विभिन्न मिश्रणों के बीच में लिया जाएगा जैसे A बिन्दु या बिन्दु B का चुनना। B को चुनने का अर्थ है कि सार्वजनिक क्षेत्र में वस्तुओं एवं सेवाओं का अधिक उत्पादन। जैसे, राष्ट्रीय सुरक्षा, सार्वजनिक पुस्तकालय,

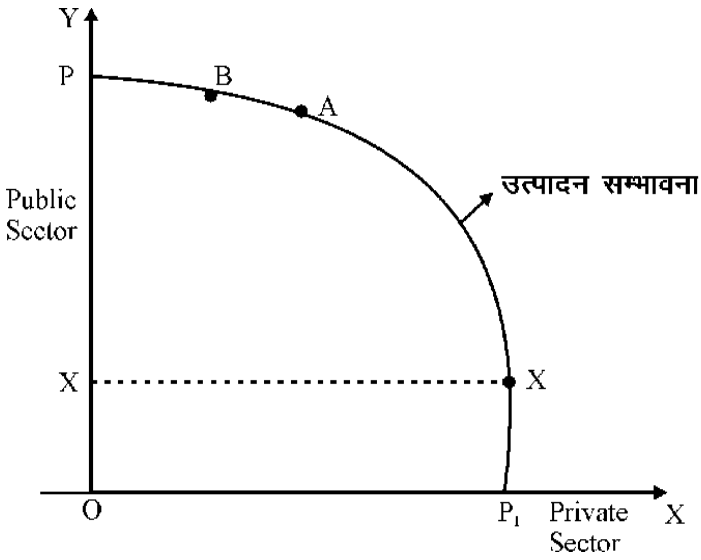

रेखाचित्र - 1

शिक्षा तथा जनस्वास्थ्य की सुविधाएं 'बिन्दु A से बिन्दु B' पर अधिक प्राप्त होंगी, परन्तु बिन्दु B को प्राप्त करने के लिए अर्थव्यवस्था को अपने साधनों में इस प्रकार परिवर्तन करना होगा कि उससे निजी क्षेत्र में कम निवेश होगा जैसे कम मकान, दवाईयों, शिक्षा का खर्च, वाहनों का कम उत्पादन तथा व्यक्तिगत कल्याण आदि पर खर्च करने वाली साधनों की मात्रा कम उपलब्ध होगी। यह निर्माण साधन आबंटन के प्रकार पर निर्भर करते हैं जो कि सार्वजनिक नीति द्वारा प्रभावित होती है। यदि सभी व्यक्तियों को जनस्वास्थ्य सुविधाएं निजी क्षेत्र में पूर्ण रूप से प्राप्त हो रही हों तो सार्वजनिक जनस्वास्थ्य का योगदान शून्य होगा और शायद सार्वजनिक नीति का यह कार्यक्षेत्र ही ना हो। यदि सार्वजनिक वस्तुओं की सघनता निजी क्षेत्र की वस्तुओं की सघनता से अधिक हो जाती है तो राजनैतिक प्रक्रिया द्वारा सार्वजनिक नीति का निर्माण इस प्रकार से होगा कि साधनों का आबंटन उत्पादन संभावना वक्र पर ऊपर की ओर खिसकेगी।

What type of Goods to be Provided in these Sectors?

प्रत्येक क्षेत्र से कौन-कौन सी वस्तुएं व सेवाएं उत्पादित की जाएं?

उपरोक्त प्रश्न पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं है; रक्षा खर्च के स्तर का निर्धारण सरकारी क्षेत्र में उत्पादन के हिस्से तथा इस क्षेत्र में साधनों के आवंटन पर निर्भर करता है, इसी प्रकार, निजी क्षेत्र में प्राथमिक, सैकंण्डरी तथा विश्वविद्यालय शिक्षा के स्तर का निर्धारण सार्वजनिक निजी क्षेत्रों का मिश्रण और निजी क्षेत्र में साधनों के आवंटन पर निर्भर करता है। यदि इन क्षेत्रों में वस्तुओं के मिश्रण को स्थिर मान लें तो हम अन्तः क्षेत्र आबंटन की नीतियों की समीक्षा कर सकते हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र में यदि साधनों को अनुसंधान कार्यों, सड़क (Highways) व रक्षा से हटाकर ही अधिक अस्पतालों व विद्यालयों का निर्माण किया जा सकता है। अधिकतर नागरिक सरकार के कल्याणकारी कार्यों को समर्थन देते हैं जबकि सरकार के कुछ अन्य कार्यों की वे आलोचना भी करते हैं क्योंकि नागरिकों को सार्वजनिक काम के प्रत्येक निर्माण का निर्धारण करने के लिए वोट डालने का अधिकार नहीं है। सार्वजनिक अधिकारी ही इन वास्तविक प्रोग्रामों का निर्धारण करते हैं तथा इससे निजी क्षेत्र के आबंटन भी प्रभावित होते हैं। सार्वजनिक नीतियाँ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और बाजार प्रक्रिया को भी प्रभावित करती है, क्योंकि इनसे कुछ वस्तुओं के उत्पादन पर प्रतिबंध लगते हैं जैसे - नशीली दवाएं। सार्वजनिक नीतियों द्वारा कुछ वस्तुओं का उत्पादन प्रोत्साहित होता है जैसे अच्छे हस्तशिल्प उत्पादकों को आर्थिक सहायता (Subsidy) प्रदान करना।

Choice of Technology that Determines how Goods are Provided:

सार्वजनिक क्षेत्र में राष्ट्रीय सुरक्षा को अधिक श्रम प्रधान (Labour-intensive) या पूंजी प्रधान (Capital Intensive) तकनीकों के हथियारों द्वारा देश की सुरक्षा का चुनाव करना उस देश में उपलब्ध वर्तमान तकनीक पर निर्भर करेगा। रक्षा कार्यों में अधिक श्रम-शक्ति के प्रयोग होने का अर्थ हे कि निजी क्षेत्र को कम श्रम-शक्ति उपलब्ध होना तथा सेना के प्रयोग की जाने वाली उपभोग आदि वस्तुओं के उत्पादन को घटाएगा। सार्वजनिक आर्थिक नीतियाँ

निजी क्षेत्र में कैसे उत्पादन किया जाए इस पर भी प्रभाव डालती हैं। जैसे बाल श्रम रोककर, श्रम के संगठित होने के अधिकार, खद्दानों और फैक्ट्रियों में श्रम की सुरक्षा के उपायों इत्यादि के द्वारा मानव कल्याण में व द्धि की जा सकती है।

आर्थिक विकासः

साधनों के बंटवारे में आर्थिक विकास एक महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र है। महामन्दी (1929-30) और द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् साम्यवादी तथा पूंजीवादी विचारधाराओं में भिन्नता का युग आरम्भ हुआ। आर्थिक विकास मुख्य रूप से स्थिर पूंजी तथा मानवीय पूंजी पर निर्भर करता है। पूंजी निर्माण का अर्थ है कि अर्थव्यवस्था के कुछ साधनों का प्रयोग वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति की अपेक्षा भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाना है। जिससे भविष्य में अधिक उत्पादन किया जा सके ; क्योंकि कल्याण वर्तमान और भविष्य के आशातीत उपभोग (निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में) पर निर्भर करता है। यदि व्यक्ति ऐसे त्याग करने को तैयार होते हैं तभी आर्थिक विकास संभव होता है।

सार्वजनिक आर्थिक विकास की नीति वर्तमान साधनों के आबंटन से परिवर्तन की नीति वर्तमान साधनों के आबंटन में परिवर्तन करके पूंजी निर्माण में व द्धि कर सकती है।

आर्थिक विकास की नीति का सम्बन्ध राष्ट्रों के बीच साधनों के बंटवारे से भी है। साधनों के प्रयोग के अधिकारों का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनुबन्ध होता है क्योंकि राष्ट्र इसमें अपने नागरिकों का कल्याण देखते हैं। समुद्रों तथा आकाश का प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सन्धियों के आधार पर होता है।

2. वितरण कार्य (Distribution Functions)

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में आय के वितरण के लिए साधनों की कीमत का निर्धारण साधनों की सीमान्त उत्पादकता से होता है। सरकार विभिन्न नीतियों का निर्धारण करके आय के वितरण का निर्धारण बाजार की शक्तियों में परिवर्तन करके करती हैं क्योंकि अन्य लोग कल्याण, व्यक्तिगत कल्याण का फलन है। दूसरों के कल्याण के प्रति यह व्यवहार सार्वजनिक आर्थिक नीति के 'समानता का आधार' की नीति पर निर्भर करता है। इस नीति के लिए किसी एक धारणा का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि व्यक्तिगत कल्याण के फलन के तत्व परिवर्तनशील है, जिनको परिभाषित करना मुश्किल है, ये नीति राजनैतिक, प्रक्रिया द्वारा लागू की जानी चाहिए। समानता की धारणा दो तत्वों पर निर्भर करती हैं:

(i) Object

(ii) Subject

(i) Object, जैसे ''आय'' जिसका वितरण किया जाना है।

(ii) Subject, ''व्यक्तियों का समूह' जिनमें आय का वितरण किया जाना है।

हम समानता को उपरोक्त दो तत्वों के आधार पर वर्णन कर सकते हैं, परन्तु फिर भी हम समानता का कोई एक फार्मूला ज्ञात नहीं कर सकते हैं।

व्यक्तिगत कल्याण को समानता के मुख्य आधार (Object of Equity) के रूप में नहीं लिया जा सकता क्योंकि व्यक्तिगत कल्याण को मापा तथा उसकी तुलना नहीं की जा सकती है।

आय को समान वितरण का आधार माना गया है तथा आय के समान वितरण के लिए विभिन्न नीतियाँ सुझाई गई हैं। एक विशिष्ट नीति - ''गरीबी हटाओ प्रोग्राम' (Anti-Poverty Programme) में आय के विशेष स्तर से नीचे के परिवारों की संख्या को कम करना है, परन्तु यहां पर समस्या परिवार के आकार, आयु संरचना, भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार कीमतों में भिन्नता, व्यक्तिगत उपभोग के अनाज की कीमत, तथा स्वयं के मकान का मूल्य इत्यादि के समायोजन की आती है। उपरोक्त समस्याओं के समाधान के लिए 'आय' के स्थान पर 'धन' का प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु धन की परिभाषा करना भी कठिन कार्य है। यदि परिसम्पतियों का बाजार मूल्य ही धन है तो इसका वितरण उस धन से भिन्न होगा जो भविष्य के श्रम की वर्तमान कीमत को शामिल करेगा। इसके अतिरिक्त कुछ वस्तुओं की बाजार कीमत का ज्ञान नहीं होता है जैसे, पेंटिग, दुलर्भ पुस्तकें, ग्रन्थ इत्यादि। अतः धन को Object of equity के रूप में पूर्ण रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता है।

करों का भारः व्यक्तियों द्वारा करों के भुगतान और उनकी आय से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए Progressive और Regressive धारणाओं का प्रयोग किया जाता है। वास्तव में उपरोक्त दोनों प्रकार की कर व्यवस्थाएं कर वसूलने के प्रकार हैं जिन्हें राजनैतिक प्रक्रिया द्वारा स्वायत्त आय (Disposable Income) के वितरण में समानता लाना है। प्रगतिशील करों से धनी व्यक्तियों पर अधिक तथा निर्धनों पर करों का कम भार व दर पड़ता है तथा लोग इस प्रकार के करों को ठीक मानते हैं। 'इसमें अन्तः व्यक्ति उपयोगिता (Inter Personal Utility) की तुलना से कर लगाए जाते हैं अतः प्रगतिशील कर व व्यय करो (Expenditure Taxes) को 'समानता का आधार' (Object of Equity) के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

सार्वजनिक वस्तुओं के प्रयोग तथा समानता का आधार

किसी विशेष कर की समानता का वर्णन जब तक अधूरा होगा तब तक की उन करों को खर्च करके लोगों को सार्वजनिक वस्तुओं के रूप में उपलब्ध कराई जाने वाली वस्तुओं से प्राप्त लाभ का वर्णन ना किया जाए। करों और सार्वजनिक व्यय का सामूहिक अध्ययन के द्वारा ही आय के समान वितरण की उपयोगिता का निर्माण लिया जा सकेगा, अर्थात् करों और सार्वजनिक व्ययों से प्राप्त लाभों की तुलना की जा सकेगी। कुछ वस्तुएं और सेवाएं, जो कि सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाती हैं, जैसे की राष्ट्रीय सुरक्षा, देश के सभी नागरिकों द्वारा एक समान मात्रा में उपयोग की जाती हैं, परन्तु कुछ सार्वजनिक सेवाओं/कार्यों का लाभ समाज के एक हिस्से के लिए ही लाभकारी होता है, अर्थात् लाभों का असमान वितरण होता है -

"Equility of Educational Opportunity" उपरोक्त phrase शिक्षा के क्षेत्र में समानता के उद्देश्य

को दर्शाता है परन्तु What does the phrase mean? क्या इसका अर्थ है कि प्रत्येक विद्यार्थी पर प्रत्येक स्कूल में समान रुपये खर्च किए जाएंगे या 'शिक्षा में समानता का अवसर' का अर्थ है कि प्रत्येक बच्चे को एक न्यूनतम स्तर तक स्कूलों की सुविधा उपलब्ध करवाना है। शायद इसका अर्थ यह है कि समान योग्यताओं के वितरण वाले बच्चों के समूह को समान शिक्षा का स्तर प्राप्त करना चाहिए। यद्यपि प्रत्येक बच्चों के समूह पर, दूसरे समूह से उस स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिक खर्च भी क्यों ना करना पड़े। Equity of Educational Opportunity की कोई एक स्पष्ट परिभाषा नहीं दी जा सकती।

उपरोक्त विश्लेषणों में वितरण नीति के चार प्रमुख उद्देश्य लिए हैं - आय, धन, कर व सामाजिक वस्तुएं। व्यक्तियों का समूहों में अध्ययन किया गया है क्योकि नीति निर्धारण के कार्य पूरे समूहों को प्रभावित करते हैं न कि किसी व्यक्ति विशेष को, अतः अन्य व्यक्तियों का कल्याण हमारे अपने कल्याण को प्रभावित करता है। इन चारों उद्देश्यों को 'व्यक्तियों के समूह' में आय के वितरण के आधार पर बांटा गया है, परन्तु समानता के लिए केवल आय को ही मापदण्ड मानकर मापना पर्याप्त नहीं है बल्कि अन्य मापदण्डों को भी ध्यान में रखना होगा जैसे शहरी ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात, लिंग अनुपात, भौगोलिक परिस्थितियाँ तथा पारिवारिक प ष्ठभूमि इत्यादि।

3. स्थायीत्व कार्य (Stablization Functions)

राजकोषीय नीति के कार्यों में आर्थिक स्थिरता सबसे नया कार्य है जो कि लगभग 1930 से प्रकाश में आया है। स्थिरता का कार्य, जो भी क्षतिपूर्ति वित भी जाना जाता है, रोजगार के उच्चे स्तर तथा कीमतों में स्थिरता रखना है। इस वित्तीय कार्य की आवश्यकता इसलिए हुई क्योंकि बाजार अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार और मूल्य की स्थिरता स्वतः ही प्राप्त नहीं की जा सकती है। पूर्ण रोजगार का स्तर तथा कीमतें उत्पादन क्षमता की सापेक्षता में कुल मांग के स्तर पर निर्भर करते हैं। देश में स्थिर कुल माँग को बनाए रखने के लिए बजट के रूप में विस्तारवादी तथा संकुचनवादी राजकोशिक नीति की आवश्यकता होगी।

सरकार समाज के आर्थिक जीवन का नियमन करने के लिए सार्वजनिक व्यय तथा करारोपण का सहारा लेती है, इनका आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है।

मुद्रा-स्फीति की अवस्था में आर्थिक स्थिरताः

मुद्रा-स्फीति में मूल्यों में निरन्तर व द्धि होती रहती है जिससे समाज में उपभोक्ताओं को हानी होती है। ऐसी स्थिति में सरकार अधिक कर लगाकर, व्यय-शक्ति कम करके कीमतों को बढ़ने से रोकती है। आय-कर तथा व्यय कर इस सम्बन्ध में अधिक प्रभावशाली हुए हैं। चूंकि मुद्रा-स्फीति का एक कारण उत्पादन का आय की अपेक्षा कम होना भी है, अतः उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ करों में छूट देना अधिक लाभकारी सिद्ध होता है। यह उचित होगा कि नये उत्पादकों पर कोई नया कर नहीं लगाया जाए ताकि उन्हें उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिले। वस्तुओं की मात्रा आयातों द्वारा भी बढ़ाई जा सकती है।

मन्दी की अवस्था में आर्थिक स्थिरताः

मन्दीकाल में सामान्यतया नये कर लगाना वांछनीय नहीं समझा जाता क्योंकि इसमें एक ओर तो क्रय शक्ति कम हो जाती है और दूसरे ओर निवेश में भी कमी हो जाती है। अतः मन्दीकाल की अवस्था में यह आवश्यक है कि करों की मात्रा पहले से कम की जाए, सार्वजनिक व्यय में व द्धि की जाए और ऐसे उद्योगों को चालू किया जाए जिनसे अधिक व्यक्तियों को रोजगार मिल सके।

मन्दीकाल ये घाटे के बजटों का सुझाव दिया जाता है क्योंकि इनसे लोगों की क्रय-शक्ति में व द्धि होती है। मन्दीकाल में उन करों में कमी करना विशेष रूप से आवश्यक होता है जिनका भार कम आय वाले अथवा निर्धन वर्गों पर अधिक पड़ता है। धनी व्यक्तियों का कर भार कम करने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि उपभोग की मात्रा में केवल निर्धनों का कर-भार कम करने से ही व द्धि होगी। इस प्रकार करों द्वारा जो धन का पुनः वितरण होता है वह मन्दी को रोकने तथा आर्थिक स्थिरता को बनाए रखने में सहायता करता है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि मुद्रा-स्फीति में नये कर लगाकर तथा मन्दीकाल में करों की दरें कम करके तथा नये करों का विचार स्थगित करके कीमतों को स्थिरता प्रदान की जा सकती है और रोजगार की स्थिति को स्थाई बनाया जा सकता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए राजस्व सम्बन्धी क्रियाओं का उपयोग आधुनिक सरकारों द्वारा किया जाता है। आर्थिक स्थिरता को प्रभावशाली ढंग से कायम करने के लिए करारोपण; सार्वजनिक व्यय और सरकारी ग्रहण की एक समन्वय पूर्ण नीति अपनाई जाए तथा इसके बावजूद भी यह आवश्यक है कि इन राजकोशीय उपायों एवं आर्थिक नियन्त्रण तथा उपयुक्त मौद्रिक नीति आदि अन्य उपायों के बीच भी समन्वय स्थापित किया जाए।

अध्याय - 3

बाजार विफलताएँ : अपूर्ण प्रतियोगिता, घटती लागतें तथा सार्वजनिक वस्तुएँ

(Market Failures : Imperfections, Decreasing costs and Public Goods)

बाजार अर्थव्यवस्था संसाधनों के इष्टतम आबंटन की समस्या का समाधान करती है और इन संसाधनों का निजी वस्तुओं की उत्पत्ति में प्रयोग किया जाता है बशर्ते कि कुछ शर्तें लागू होती हों ''मैसग्रेव। जैसे कि वस्तु व साधन बाजार में क्रताओं और विक्रताओं की अधिक संख्या, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण गतिशीलता, उत्पादकों का अधिकतम लाभ प्राप्ती का उद्देश्य, उपभोक्ताओं का अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्ती का उद्देश्य वस्तुओं की विभाज्यता, समरूप वस्तुएँ तथा वर्जन के सिद्धान्त का लागू होना इत्यादि। एक समय ऐसा था कि बाजार की शक्तियों, मांग व पूर्ति तथा कीमत-सयन्त्र को ही अर्थव्यवस्था में संसाधनों के 'इष्टतम आबंटन' (Optimum Allocation) का सबसे उपयुक्त उपाय माना जाता था और बाजार में सार्वजनिक क्षेत्र की उपस्थिति नहीं मानी जाती थी। सरकारी आर्थिक हस्तक्षेप अमान्य था और Laisseze 2 Faire Policy ही एकमात्र बाजार की संचालक मानी जाती थी। परन्तु वास्तव में इस कीमत सयन्त्र प्रक्रिया में व्यवहार में अनेक कठिनाइयां आती हैं जैसे कि बाजार का अपूर्ण प्रतियोगी होना, उपभोक्ताओं व उत्पादकों को अपूर्ण ज्ञान, वस्तुओं के उपभोग में वर्जन के सिद्धान्त का लागू न होना इत्यादि ऐसे अनेक कारण हैं जो बाजार की शक्तियों द्वारा कीमत निर्धारण प्रक्रिया को नहीं अपना सकती हैं। सामाजिक वस्तुओं की मुख्य विशेषता यह होती है कि उनकी (i) उपभोक्ता विशेष के लिए व्यक्तिगत रूप से बिक्री असंभव होती है क्योंकि वर्जन का सिद्धान्त (Exclusion Principle) लागू नहीं होता है या (ii) सामाजिक वस्तु की बिक्री अवांछनीय होती है क्योंकि वस्तु का उपभोग गैर प्रतिद्वन्दी (Non-rival) होता हैं इन वस्तुओं की कीमतों के निर्धारण में बाजार सयन्त्र के प्रयोग में लाने से 'सामाजिक कल्याण' अधिकतम नहीं होता है बल्कि लाभ अधिकतम हो सकते हैं, इस प्रकार जिन वस्तुओं के उपभोग व उत्पादन में उपरोक्त दोनों शर्तें लागू होती हैं वहां पर सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका (A case of govt. interference in the economic activities) महत्वपूर्ण हो जाती है तथा बाजार की अपूर्णताएँ होती हैं वहां पर राज्य का हस्तक्षेप अनिवार्य हो जाता है।

A Case for Public Sector:

सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार और राज्य के आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप की व द्धि का मुख्य कारण बाजार सयन्त्र की अपूर्णताएं हैं। सार्वजनिक क्षेत्र की व द्धि एवं हस्तक्षेप का अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाएगा जब हम निम्न बिन्दुओं पर प्रकाश डालेंगे।

1. घटती उत्पादन लागतें।
2. शून्य उत्पादन लागतें - घटती उत्पादन लागतों का ध्रुवीय बिन्दु (Polar Extreme Point)
3. सामूहिक उपभोग एवं गैर-वर्जन।
4. पूर्ण ज्ञान न होना तथा जोखिम सम्बन्धित समस्याएँ।
5. निजी वस्तुओं की सार्वजनिक क्षेत्र में बिक्री।

Decreasing Costs of Production and Marginal Cost Pricing:

सरकार उन वस्तुओं की पूर्ति करती है जो निजी फर्मों द्वारा कुशलता पूर्वक उपलब्ध नहीं करवाई जाती हैं क्योंकि उत्पादन में बढ़ती लागतें होती हैं। घटती लागतें सार्वजनिक उपयोगिता वाली वस्तुओं पर लागू होता है जैसे बिजली आपूर्ति, जनस्वास्थ्य सेवाएं, संचार व पोस्टल सेवाएं, सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था इत्यादि। इन दशाओं को 'Natural Monopolies' कहा जाता है जहाँ पर प्रतियोगी बाजार कार्य नहीं कर सकता है क्योंकि बड़ी फर्में कम लागत पर उत्पादन कर सकती हैं और अन्ततः एक फर्म ही पूरे बाजार की पूर्ति को प्राप्त कर लेती है। सरकारी हस्तक्षेप के बिना, एकाधिकारी उत्पादक लाभ प्राप्ती के उद्देश्य से बहुत कम उत्पादन करेगा और बहुत अधिक कीमत वसूल करेगा। यद्यपि सरकारी नियन्त्रण ही एक ऐसा उपाय है, घटती लागतों की दशा में फर्म को हानि उठानी पड़ेगी यदि उसको सीमान्त लागत के बराबर कीमत (MC = p) वसूल करने पर मजबूर किया जाएगा। इसलिए सरकार इन सेवाओं को स्वयं उपलब्ध करवाना स्वीकार कर लेती है और एक निजी फर्म के नियन्त्रण के स्थान पर सरकारी उद्यम इन सेवाओं की पूर्ति करता है।

अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में फर्म के घटती लागत इकाई के रूप में उत्पादन उत्पादित होने की अवस्था को निम्न रेखाचित्र -1 द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

1. Profit Maximization and Optimal Allocation Under Conditions of Decreasing Costs:

रेखाचित्र में X-axis पर वस्तु के उत्पादन की मात्रा तथा Y-axis पर कीमतें व उत्पादन लागतें दर्शायी गई है। AC और MC वक्र उद्योग की दीर्घकालीन लागत वक्र हैं जबकि AR और MR वक्र आय वक्र हैं। फर्म के AR और MR वक्र का ढ़लान लाभ ऋणात्मक है जो कि अपूर्ण बाजार की अवस्था को दर्शाता है, यदि फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्ति हो तो वह Marginalist Principle के आधार पर MC = MR बराबर होने की अवस्था में कुल OE उत्पादन करेगी और OPm कीमत निधारित करेंगी और LMQ Pm के समान असामान्य लाभ अर्जित करेगी, फर्म इससे कम कीमत का निर्धारण केवल 'बिक्री कर'

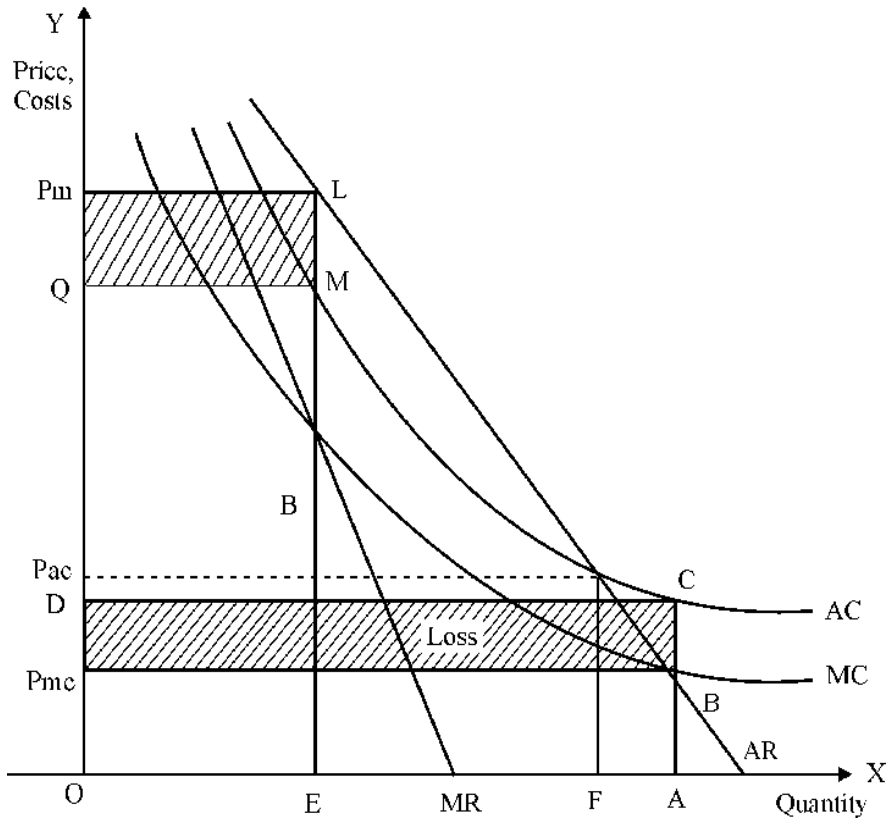

रेखाचित्र-1

लगाने की अवस्था में ही करेगी अन्यथा नहीं। अतः यदि उत्पादन निजी क्षेत्र में होता है तो फर्म केवल OE उत्पादन उत्पादित ही करेगी जबकि समाज के लिए आवश्यक उपयुक्त उत्पादन की मात्रा OA हैं, यदि फर्म OA उत्पादन को उत्पादित करती है तो उसे OPmc के समान कीमत प्राप्त होती है, इस उत्पादन स्तर पर फर्म की AC > AR है अतः फर्म को हानि हो रही है जो कि BC के समान प्रति इकाई हानि है तथा कुल हानि Pmc BCD के समान है जिसे रेखाचित्र-1 में छायाकार आयात द्वारा दर्शाया गया है। अतः हानि की अवस्था में कोई भी निजी फर्म दीर्घकाल में उत्पादन उत्पादित नहीं करेगी और यदि अर्थव्यवस्था में आवश्यक कुशल उत्पादन की पूर्ति की जानी है तो सरकारी हस्तक्षेप अनिवार्य है। इस प्रकार Optimal Social Output की मात्रा OA उपलब्ध करवाने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र की आवश्यकता होगी।

यदि सरकार फर्म की हानि को कम या शून्य करना चाहती है तो एक संभावना यह भी है कि फर्म उस अवस्था तक उत्पादन करे जहाँ पर AC = AR हैं जो कि रेखाचित्र-1 में OF उत्पादन की मात्रा के समान है और फर्म को Pac कीमत प्राप्त होती है, इस अवस्था में फर्म की हानि तो शून्य हो जाती है परन्तु यह उत्पादन OF अभी भी आवश्यक कुशल सामाजिक उत्पादन (Optimal Social Output) के स्तर OA से कम है, इस प्रकार इष्टतम सामाजिक उत्पादन व कीमत (OA और Pmc) निर्धारित करने पर घाटा हो रहा

जो किसी न किसी रूप में अवश्य प्राप्त होना चाहिए।

"The presence of 'imperfect market' and 'decreasing production cost' conditions, represents a degree of allocational failure in the market, which strengthens an economic case for public sector, output of many be considered as 'second best.'" B.P. Herber,

Deficit Paid from General Revenue :

यदि फर्म OA उत्पादन उत्पादित करे तो उसको होने वाली BC के समान प्रति इकाई हानि को पूरा करने का एक तरीका यह है कि सामान्य जनता पर कर लगा दिया जाए और फर्म के घाटे का पूरा कर दिया जाए, परन्तु इससे नई समस्या पैदा होगी, यदि इस प्रकार का कर-एक-मुश्त कर (Lump sum tax) के रूप में लगाया जाता है तो कोई भी Efficiency cost नहीं लगेगी परन्तु यह समाधान कर देय क्षमता (Ability-to-pay) के आधार पर अस्वीकार्य हो जाएगा। यदि कर समानता के आधार पर लगाए जाते हैं, जैसे आयकर, तो इससे Effciency Cost उत्पन्न हो जाएगी। इस Effieicncy Cost को अवश्य ही उन्हीं करों से वसूलना चाहिए। यदि AR = AC = P निर्धारित होती है तो किसी भी बाहरी सहायता (कर) की आश्वयकता नहीं होती।

Deficit Paid by User Charges:

सामान्य जनता की अपेक्षा घाटे को प्रयोगकर्ताओं से वसूल करके पूरा किया जा सकता है, परन्तु इससे करों को वसूल करने की लागत बढ़ जाती है तथा वस्तु की कीमत बढ़ जाती है और सन्तुलित उत्पादान का स्तर घट जाता है क्योंकि AR = AC से कीमत ऊँची हो जाती है, इसे बचने के लिए या न्यूनतम करने के लिए प्रयोगकर्ताओं से ही Full Costs वसूलने की तकनीक प्रयोग की जाती है। इस अवस्था में प्रति इकाई कीमत Pac के समान वसूलने की अपेक्षा कम Efficiency Loss होता है।

ऐसा करने का एक उपाय 'दो-भाग करो (Two-part tariff) का है, जिसके अनुसार यदि कोई भी उस वस्तु या सेवा का प्रयोग करता है तो उसके प्रयोग के बदले उसे प्रति इकाई निश्चित राशि (Flat Charge) अवश्य भुगतान करना होगा। इस प्रकार के भुगतान पर सदस्यता फीस प्रयोगकर्ता को वस्तु या सेवा के बदले देनी होगी जो कि एकमुश्त कर (Lum-Sum-Tax) के रूप की हो सकती है। इसका प्रतिस्थापन्न प्रभाव इस रूप में होगा कि व्यक्ति या तो उस वस्तु। सेवा के प्रयोग का भागीदार बने या पूर्ण रूप से उसे अलग रहे। परन्तु इसका प्रतिस्थापन्न प्रभाव एक बार सदस्यता फीस का भुगतान करने पर सेवा की मात्रा को (Level of Use) नहीं चुना जा सकता है। यदि सीमान्त लागत कीमत सिद्धान्त द्वारा कीमत व उत्पादन निर्धारित करने पर घाटा बहुत कम मात्रा में है और प्रयोगकर्ताओं की संख्या बहुत अधिक है तो फीस (कर) की दर बहुत कम होगी ताकि प्रयोगकर्ताओं की भागीदारी को अधिकतम किया जा सके, उदाहरणतया स्थानीय टेलीफोन काल, शिक्षा फीस, पानी आपूर्ति फीस इत्यादि।

Deficit Cover by Price-Discrimination:

उपभोक्ताओं से कीमत-विभेद द्वारा भी घाटे को पूरा किया जा सकता है। उपभोक्ताओं से अन्तिम इकाई की कीमत Pmc के बराबर तथा इससे पहले ही इकाइयों की कीमत Pmc से अधिक वसूल की जाती हैं ताकि उपभोक्ता को प्राप्त होने वाली 'उपभोक्ता की बचत' को करो (Taxes) के रूप में वसूला जा सके। बिजली की दरें इसी प्रकार से निर्धारित की जाती हैं।

2. **Zero Marginal Cost:**

कुछ सार्वजनिक वस्तुओं की प्रकृति ऐसी होती है जिनके एक बार उत्पादित होने की अवस्था के पश्चात् इनके प्रत्येक अगले उपभोक्ता के शामिल होने की अवस्था में, भी सीमान्त लागत शून्य होती है, इनका उपभोग 'सामूहिक उपभोग' के रूप में किया जाता है तथा X उपभोक्ता के शामिल होने पर Y व Z के उपभोग के स्तर पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है जैसे टी.वी. व रेडियो प्रोग्राम में नये उपभोक्ता के शामिल होने पर पहले वाले उपभोक्ता कर्ताओं के उपभोग की गुणवता पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है।

इस अवस्था में प्रत्येक अगले उपभोक्ता की सीमान्त लागत (mc = o) शून्य होती है, अतः कीमत भी शून्य (mc = p = o) होनी चाहिए और निजी लाभ भी शून्य होगा। अतः संसाधनों का आबंटन इष्टतम सामाजिक नियम (Social Optimum Rule) के अनुसार होने चाहिए जैसा कि रेखाचित्र-2 द्वारा दर्शाये गए हैं।

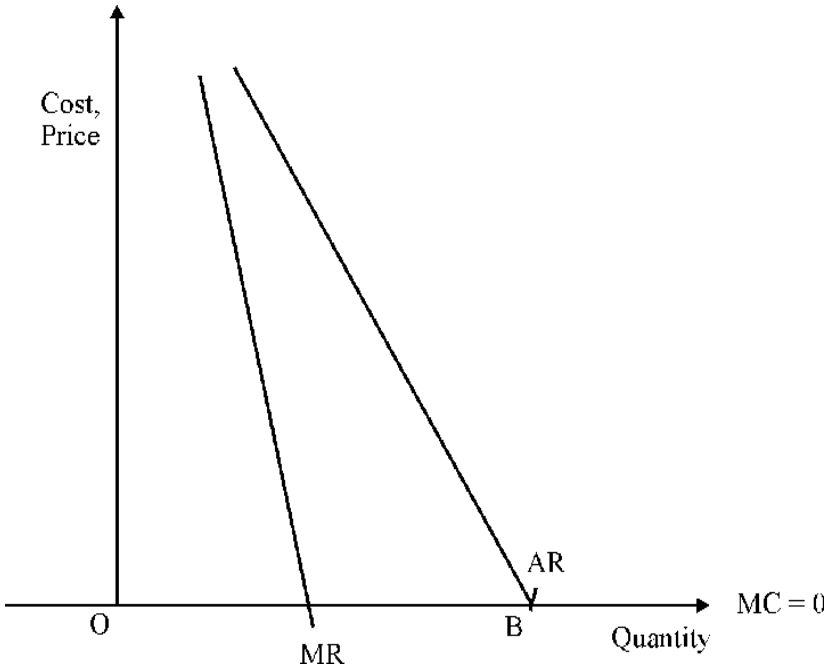

रेखाचित्र-2

उपरोक्त रेखाचित्र में mx X-axis रेखा के साथ ही हैं। सामाजिक इष्टतम उत्पादन का स्तर OB होगा जहाँ पर कीमत (AR) = mc है। इस बिन्दु पर कीमत शून्य होती है।

3. **Collective Consumption and Non-Exclusion:**

सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत संसाधनों के आबंटन का अन्य महत्वपूर्ण aspect वस्तुओं के उपभोग में निजी व सामाजिक वस्तुओं की प्रकृति पर भी निर्भर करता है।

निजी वस्तुएं:

निजी वस्तुएं व्यक्तिगत आवश्यकर्ताओं को सन्तुष्ट करती हैं तथा निजी क्षेत्र द्वारा उत्पादित की जाती है, इनका विभाजन किया जा सकता है और केवल उन्हीं व्यक्तियों को इनका लाभ मिलता है जो इनकी कीमत का भुगतान करते हैं तथा जितनी मात्रा एक उपभोक्ता को प्राप्त हो जाती है उतनी मात्रा अन्य उपभोक्ताओं के लिए अनुपलब्ध हो जाती है, इन वस्तुओं में 'वर्जन का सिद्धान्त' लागू होता है, इस प्रकार की वस्तुओं की कीमतें बाजार सयन्त्र (मांग व पूर्ति) द्वारा निर्धारित होती हैं। रेखाचित्र-3 में इन वस्तुओं के आबंटन की अवस्था को दर्शाया गया है।

Demand Summation for a Private Good

(Exclusion Principle does apply)

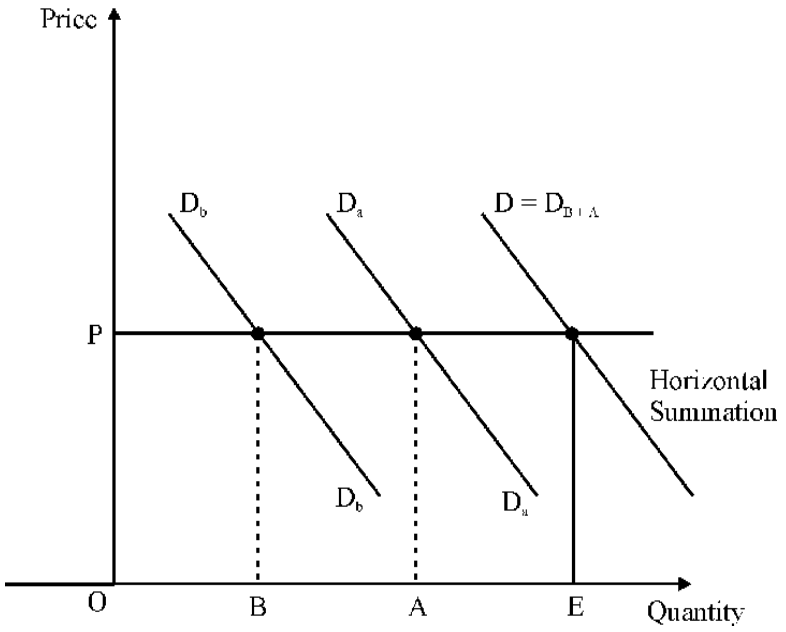

रेखाचित्र-3

माना कि अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु के केवल दो ही उपभोक्ता A तथा B हैं और वस्तु की प्रकृति निजी वस्तु (जैसे रोटी) की है। उपभोक्ता A का माँग वक्र DaDa वक्र द्वारा दर्शाया गया है तथा उपभोक्ता B का माँग वक्र DbDb वक्र द्वारा दर्शाया गया है जबकि कुल माँग वक्र D = Da + Db वक्र द्वारा दर्शाया गया है। OP बाजार कीमत पर उपभोक्ता B वस्तु की OB मात्रा तथा A वस्तु की OA मात्रा का उपभोग करता है तथा कुल बाजार मांग OE (i.e. $D_a + D_b$) की जाती है अतः कुल उत्पादन OE दोनों उपभोक्ताओं के मध्य बंट जाता हैं (OB + OA = OE) और दोनों एक समान कीमत OP अदा करते हैं।

सामाजिक वस्तुएँ (Public Goods)

सामाजिक वस्तुएँ (public goods) समाज के लिए सामूहिक रूप से पूर्ति व उत्पादित की जाती हैं और इनका समाज को सामूहिक लाभ प्राप्त होता है, इनका इकाईयों में विभाजन करके व्यक्तियों में नहीं बेचा जाता है। इस प्रकार से एक व्यक्ति द्वारा किया उपभोग अन्य व्यक्तियों को प्रभावित नहीं करता है जैसे गली में बिजली की रोशनी (Street Light) सामाजिक वस्तुओं के उत्पादन व कीमत प्रक्रिया को रेखाचित्र-4 द्वारा दर्शाया गया है।

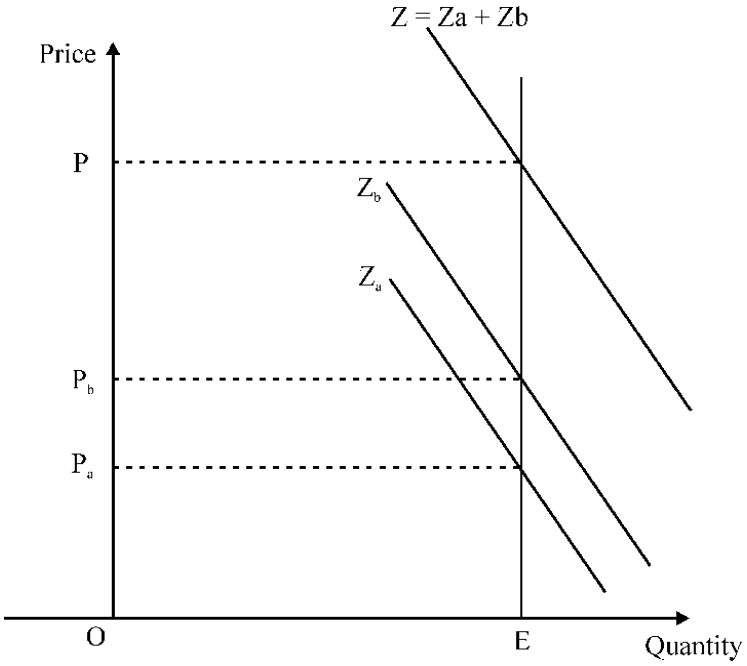

रेखाचित्र-4

माना कि सामाजिक वस्तु की प्रकृति ऐसी है जिसमें उपभोग में गैर-प्रतिद्वन्द्विता पाई जाती है। दोनों उपभोक्ताओं को वस्तु समान मात्रा में उपलब्ध होती है अर्थात् -

$$Z_a = Z_b = Z$$

एक उपभोक्ता के उपभोग से दूसरे उपभोक्ता के लिए वस्तु की मात्रा कम नहीं होती है, परन्तु वस्तु के उपभोग के बदले दोनों उपभोक्ताओं से अलग-अलग कीमतें (कर) वसूल की जाती हैं क्योंकि दोनों के अधिमान अलग-अलग हैं।

रेखाचित्र-4 में Za वक्र उपभोक्ता A के अधिमान को तथा Zb उपभोक्ता B के अधिमान को प्रकट करता है जबकि Z = Za + Zb सामाजिक वस्तु की कुल बाजार माँग को प्रकट करता है। चूंकि वस्तु की प्रकृति सामाजिक वस्तु की है अतः सभी उपभोक्ताओं समान भाग OE उपलब्ध होती है, परन्तु कीमतें (कर की दर) अलग-अलग वसूल की जाती हैं। उपभोक्ता A से OPa तथा उपभोक्ता B से OPb कर वसूल किये जाएंगे तथा कुल कर (OPa + OPb = OP) OP के समान होंगे जो कि सामाजिक वस्तु की लागत के समान होंगे।

अतः सामाजिक वस्तुओं के उत्पादन व उपभोग में बाजार प्रक्रिया का सयन्त्र काम नहीं करता है और इनके उत्पादन में सरकारी हस्तक्षेप अनिवार्य हो जाता है।

अध्याय - 4

बाह्यताएँ एवं सार्वजनिक वस्तुएँ

(Externalities and Public Goods)

उत्पादन तथा उपभोक्ताओं द्वारा जो प्रक्रियाएँ की जाती है उनसे बाह्य प्रभाव उत्पन्न होते हैं इन गैर बाजार बाह्य प्रभावों को बाह्यताएं, बिखराव प्रभाव या पड़ोस प्रभाव कहते हैं। इन बाह्यताओं को कीमत में शामिल नहीं किया जाता है। ये दो प्रकार की हो सकती है - (1) बाहरी बचतें (2) बाहरी हानियाँ।

यदि किसी व्यक्ति की आर्थिक क्रियाएँ अन्य व्यक्तियों को लाभ पहुँचाती है तथा वे इसके लिए कोई कीमत या भुगतान नहीं करते हैं तो वह बाहरी बचत कहलाती है।

इसके विपरीत यदि एक व्यक्ति की आर्थिक क्रिया या निर्माण प्रक्रिया अन्य व्यक्तियों को हानि पहुँचाती है तथा वह उस हानि के लिए कोई मुआवजा नहीं देता है तो इसे बाहरी हानि कहा जाएगा। बाह्यताएं शब्द बाहरी बचतों तथा बाहरी हानियों दोनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

बाह्यताएँ दो प्रकार धनात्मक तथा ऋणात्मक की हो सकती है। **धनात्मक बाह्यताएं** वह होती हैं जिससे व्यक्तियों को बचत तथा लाभ प्राप्त होता है। जो व्यापार में लाभ को बढ़ाती है तथा हानियों को घटाती हैं। इसके साथ-साथ यह व्यक्ति की उपयोगिता में भी व द्धि करती है।

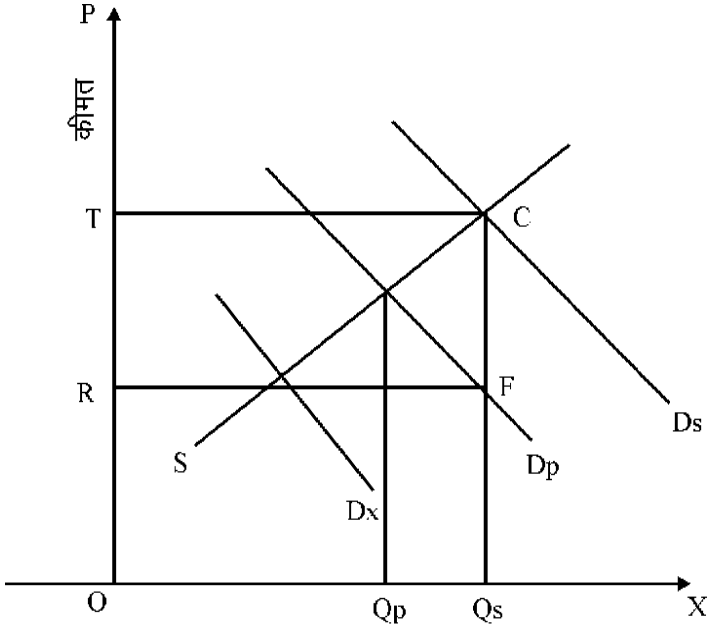

ऋणात्मक बाह्यताएं वह होती है जिस प्रक्रिया से अन्य व्यक्तियों को हानि या लागत होती है यह लाभ को कम तथा हानियों को बढ़ाती है इससे व्यक्ति की उपयोगिता में भी कमी होती है।

यदि सामाजिक लाभ निजी या व्यक्तिगत लाभ से अधिक है तो बाह्य लाभ धनात्मक होगा। जैसे - चेचक का टीका लगवाना, यह एक की जरूरत है लेकिन इससे समाज को अधिक लाभ होता है। इसे समाज में इस बीमारी के फैलने का भय खत्म हो जाता है। चेचक की टीका लगवाना व्यक्ति की निजी जरूरत है। लेकिन इससे समाज को अधिकतम लाभ होता है। सरकार उन वस्तुओं को बजटरी प्रोहिविशन राशन प्रणाली के द्वारा उपलब्ध करवाती है। लेकिन यदि सामाजिक वस्तुएं निजी व्यक्तियों से खरीदी जाती है तो सरकार उन पर Subsidy (रियायत) देती है ताकि सामाजिक लाभ अधिकतम हो सके। इस प्रक्रिया को हम निम्नलिखित चित्र की सहायता से दर्शा सकते हैं -

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि D_p वक्र निजी वस्तुओं का बाजार माँग वक्र है जिसको व्यक्तियों के माँग वक्रों के Vertical जोड़ से प्राप्त किया गया है। D_x बाह्य लाभ वक्र है जो निजी उपभोग से प्राप्त होती है। इस वक्र को भी व्यक्तियों के मांग वक्रों के Vertical जोड़ से प्राप्त किया गया है। D_s वक्र कुल बाह्य लाभ वक्र है जिसको DP तथा DX वक्र के Vertical जोड़ से निकाला गया है।

चित्र से स्पष्ट है कि OQp बाजार में निजी संतुलित उत्पादन स्तर है जब कि अर्थव्यवस्था का कुशलतम उत्पादन स्तर OQ_s है। कुशलतम उत्पादन स्तर को तब प्राप्त किया जा सकता है। जब सरकार उत्पादकों को FC या TR के बराबर Subsidy दे जिसके कारण उपभोक्ता OR कीमत को अदा करे, जबकि कीमत OT है। अधिकतम सामाजिक कल्याण के लिए सरकार को कुशलतम उत्पादन स्तर उत्पादित करने के लिए TR या FC के बराबर Subsidy देनी होगी।

बाह्यताएं तथा अकुशलता: बाह्यताओं के कारण अर्थव्यवस्था में अकुशलता की स्थिति किस प्रकार उत्पन्न होती है इनकी व्याख्या हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं।

बाह्यताएं दो प्रकार की धनात्मक तथा ऋणात्मक होती हैं इन्हीं के कारण अर्थव्यवस्था में अकुशलता उत्पन्न होती है। इनके द्वारा अकुशलता कैसे उत्पन्न होती है वह निम्न प्रकार से है -

1. ऋणात्मक बाह्यताएं तथा अकुशलता

बाह्यताएं जब समाज के लिए व्यक्ति की अपेक्षा अधिक हानि या लागत उत्पन्न करती है तो इसे ऋणात्मक बाह्यताएं उत्पन्न होती है जो उत्पादन में अकुशलता पैदा करती है। इसे हमें एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं - मान लो एक अर्थव्यवस्था में स्टील प्लांट उद्योग उत्पादन कर रहा है जो अपना बेकार बचा हुआ गंदा व हानिकारक पदार्थों के अवशेष पास ही बह रही एक नदी में बहा देता है। जिससे नदी का जल प्रदूषित हो जाता है। अब इस नदी के जल का उपभोग करने वाले उपभोक्ताओं को हानि होती है। यदि प्लांट के उत्पादन की मात्रा को बढ़ाया जाता है नदी के प्रदूषण की मात्रा भी बढ़ जाती है जिससे

व्यक्तियों की हानि भी बढ़ जाती है। इस प्रकार उद्योग के द्वारा डाला गया गंदा व हानिकारक पदार्थ समाज के लिए हानि या लागत उत्पन्न करता है। इस प्रकार की लागत को सीमान्त सामाजिक लागत (MSC) कहते हैं।

हम दो प्रकार से ऋणात्मक बाह्यताओं का विश्लेषण कर सकते हैं -

1. जब केवल एक फर्म नदी को प्रदूषित करती है।
2. जब सभी स्टील फर्में नदी को प्रदूषित करती हैं।

1. जब केवल एक फर्म नदी को प्रदूषित करती है तो प्रदूषण की मात्रा कम होती है लेकिन जैसे-जैसे फर्म अपना उत्पादन बढ़ाती है प्रदूषण की मात्रा भी बढ़ जाती है जिससे उपभोक्ताओं को जो हानि होती है उसे सीमांत बाह्यताएं लागत (MFC) कहते हैं, यह भी बढ़ती जाती है।
2. इस प्रकार जब उद्योग की सभी फर्में नदी को प्रदूषित करेगी तो जाहिर है नदी का प्रदूषण बढ़ जाएगा जिससे समाज की बाह्य हानि या लागत पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ेगी। इन दोनों प्रकार का ऋणात्मक बाह्यताओं को एक फर्म की द ष्टि से तथा उद्योग की द ष्टि से निम्न चित्रों की सहायता से दर्शा सकते हैं।

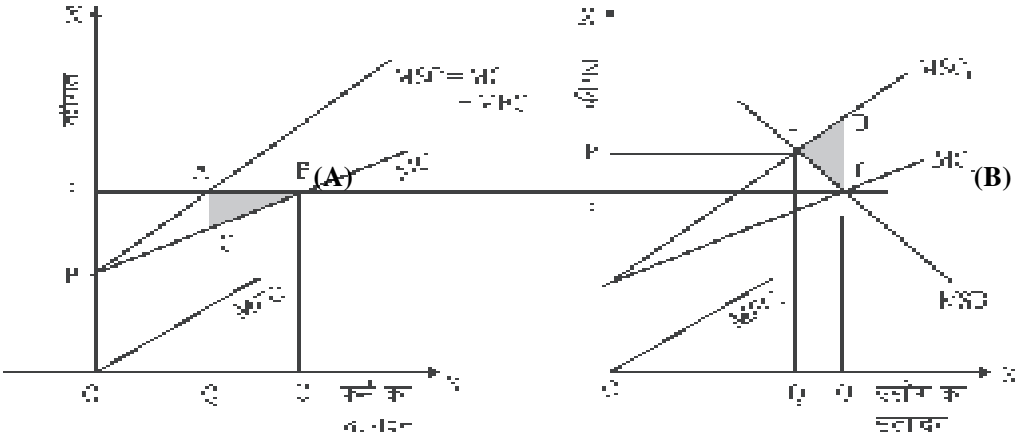

उपरोक्त चित्र (A) से स्पष्ट है कि एक फर्म के लिए MC सीमान्त लागत वक्र है तथा MEC वक्र समाज के लिए बाह्य लागत वक्र है और MSC वक्र सीमान्त सामाजिक लागत है जिसको MEC तथा MC को जोड़कर प्राप्त किया गया है। (MSC = MEC + MC)

फर्म सन्तुलन में वहां होगी जहाँ MC = P होगी, इसलिए फर्म P_1 कीमत पर OQ_1 उत्पादन की मात्रा उत्पादित करती है जिसके कारण समाज को ABC भाग के बराबर हानि उठानी पड़ती है।

चित्र (B) उद्योग के संदर्भ में बनाया गया है इनमें उन्हीं वक्रों को लिया गया है जो चित्र (A) में दर्शाये गये हैं। लेकिन इनके अतिरिक्त चित्र B में MSB वक्र को लिया गया

है जो समाज का सीमान्त सामाजिक लाभ वक्र है। चित्र (B) में उत्पादन में व द्धि होने से MSCI में भी व द्धि होती है। चित्र में MSB वक्र यह दर्शा रहा है कि उत्पादन में व द्धि से सीमान्त सामाजिक लाभ कम होता जाता है। चित्र (B) में उद्योग का सन्तुलित उत्पादन स्तर OQ_1 है तथा कीमत OP_1 है। उद्योग की द ष्टि से यह उत्पादन का कुशलतम स्तर है लेकिन सामाजिक द ष्टि से यह उत्पादन का अकुशलतम स्तर है क्योंकि इस स्थिति में समाज को CFD के बराबर बाह्य हानि (लागत या बाह्यताएं) सहन करनी पड़ती है। इसलिए समाज के लिए कुशलतम स्थिति तब होगी जब $MSC_1 = MSB$ होगा। अतः OQ उत्पादन उत्पादित होगा। क्योंकि यहाँ पर समाज की सीमान्त सामाजिक लागत, सीमान्त सामाजिक लाभ के बराबर है। लेकिन ऋणात्मक बाह्यताओं के कारण उत्पादन में अकुशलता उत्पन्न हो जाती है। जिसके कारण समाज को अधिक हानियाँ या अधिक लागत सहन करनी पड़ती है।

2. धनात्मक बाह्यताएं तथा अकुशलता

धनात्मक बाह्यताएं वह होती हैं जो एक व्यक्ति की आर्थिक क्रियाओं का समाज को जो लाभ प्राप्त या बचत प्राप्त होती। धनात्मक बाह्यताओं के कारण एक व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक लाभ या बचत प्राप्त होती है। धनात्मक बाह्यताओं के कारण भी अकुशलता उत्पन्न होती है जिसे निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है - एक मकान मालिक अपने मकान की मरम्मत सफाई व सजावट पर निवेश करता है। जिसके कारण समाज को लाभ पहुंचता है क्योंकि सफाई मरम्मत आदि करवाने से पड़ोसियों को भी कम लागत पर मरम्मत सफाई आदि का लाभ मिलता है। इसको हम एक चित्र द्वारा भी समझ सकते हैं -

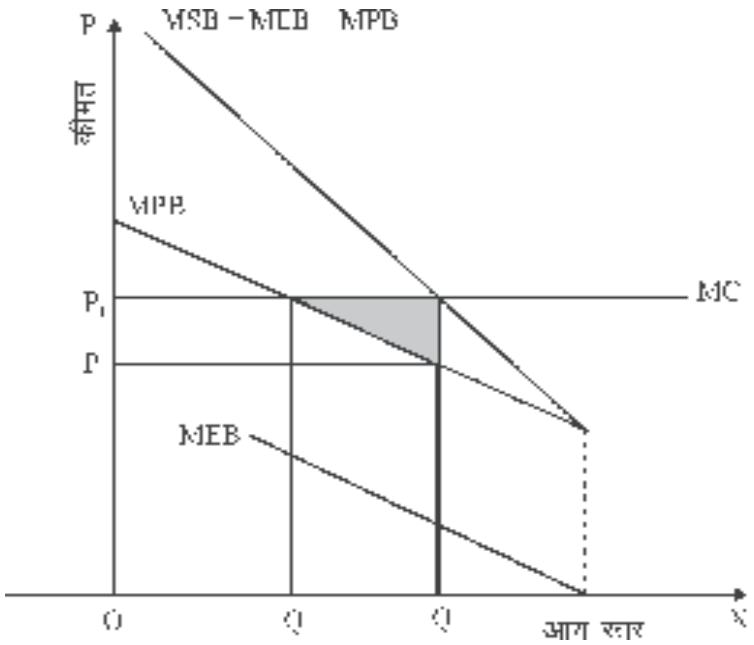

चित्र में MC सीमान्त लागत वक्र है जो यह दर्शाता है कि मरम्मत की सीमान्त लागत स्थिर रहती है जो P, के बाबर है। MPB सीमान्त निजी बचत वक्र है। MSB वक्र यह दर्शा रहा है कि अधिक मरम्मत कार्य से निजी बचत कम होगी तथा कम कार्य से अधिक बचत होगी। MEB वक्र पड़ोसियों के लिए सीमान्त बाह्य बचत को दर्शा रहा है जो मरम्मत कार्य से प्राप्त होती है तथा MSB वक्र सीमान्त सामाजिक बचत वक्र है जिसको MPB तथा MEB को जोड़कर प्राप्त किया गया है। (MSB = MPB + MEB) समाज के लिए कुशलतम उत्पादन स्तर OQ है जहाँ पर मरम्मत की MC = MSB बराबर है। अब इसमें अकुशलता उत्पन्न होने का कारण यह है कि यहाँ कीमत OP_1 जो है बहुत ऊँची है जो इच्छित था कुशलतम मरम्मत कार्य पर रोक लगाती है यदि कुशलतम स्तर OQ प्राप्त करना है तो कीमत OP करनी होगी। कीमत के कम होने पर कुशलतम स्तर में व द्धि होगी, जिसके कारण मकान मालिक OP कीमत पर तब कार्य चुनेगा। बाह्यताओं के कारण मकान मालिक को मकान की मरम्मत तथा सजावट का पूरा लाभ नहीं मिल पाता जिससे अकुशलता उत्पन्न होती है। इस प्रकार धनात्मक बाह्यताओं के कारण भी अकुशलता उत्पन्न होती है जिससे उत्पादन का इच्छित तथा कुशलतम स्तर प्राप्त नहीं हो पाता।

3. बाह्यताएं तथा बाजार की असफलताएं

ऋणात्मक तथा बाह्यताओं का अकुशलता के साथ सम्बन्ध जानने के बाद अब हम देखते हैं कि बाह्यताएं किस प्रकार बाजार वितरण की कुशलता को प्रभावित करती हैं। जिससे बाजार असफलताएं उत्पन्न होती हैं। इसे हम एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं - मान लो कि लोहे का उत्पादन करने पर वायु प्रदूषण होता है जिससे आसपास रहने वाले क्षेत्र के लोगों के कल्याण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार लोहे की लागत दो प्रकार की हो जाती है।

(i) एक वह जो कच्चे माल, मशीन तथा श्रमिक आदि की प्रत्यक्ष लागत जिसे आगे चित्र MC_1 द्वारा दर्शाया गया है।

(ii) दूसरी वह जो वायु प्रदूषण के रूप में समुदाय के लोग सहन कर रहे हैं जिसे चित्र में SMC द्वारा दर्शाया गया है।

MC, तथा SMC का Vertical Difference (लम्बवत् अन्तर) वायु प्रदूषण की मात्रा को दर्शा रहा है। जो लोहे की प्रति इकाई उत्पादन से उत्पन्न होती हैं वायु प्रदूषण हानि की उस मात्रा के रूप में परिभाषित किया जाता है जो लोग वायु प्रदूषण से बचने के लिए अदा करते हैं। इसलिए चित्र का छायांकित भाग वायु प्रदूषण की हानि की उसी मात्रा को दर्शा रहा है। उत्पादन के कम होने अर्थात् Q_1 से Q होने पर वायु प्रदूषण की मात्रा यानि हानि की मात्रा भी कम हो जाती है। लोहे का बाजार मांग वक्र D है। यदि बाजार प्रतियोगी है और फर्म वायु प्रदूषण से होने वाली हानि के लिए कोई मुआवजा नहीं देती है तो सन्तुलित उत्पादन तथा कीमत स्तर OQ_1

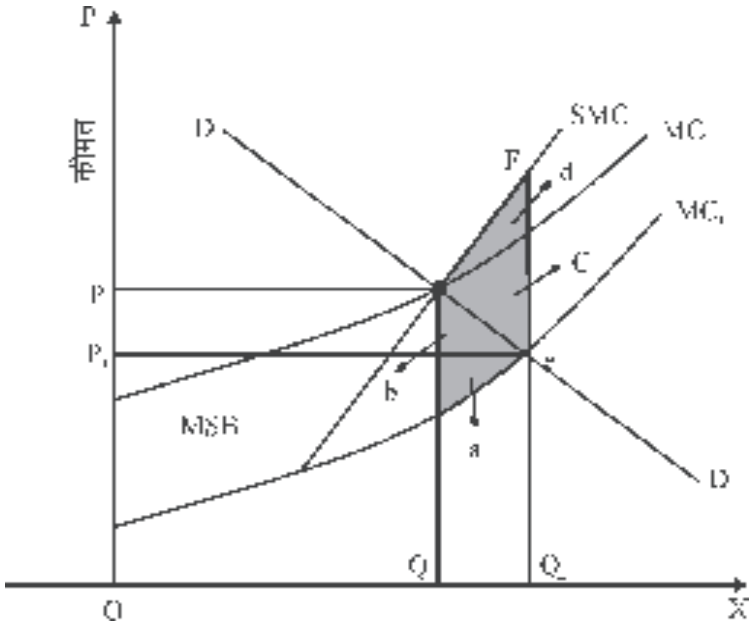

तथा OP, होगा, क्योंकि यहां पर वस्तु की MC = P है, यह सन्तुलन की आवश्यक शर्तें हैं।

OQ_1 उत्पादन स्तर प्रतियोगी बाजार का सन्तुलित स्तर है हम जानते हैं कि eF प्रदूषण हानि OQ_1 उत्पादन स्तर उत्पादित करने से उत्पन्न होती है इसलिए उत्पादन स्तर की मात्रा में कमी करके सभी लोगों के सामाजिक कल्याण में सम्भावित व द्धि की जा सकती है अर्थात् जो वायु प्रदूषण से प्रभावित होते हैं वह eF से अच्छी स्थिति में हो सकते हैं। OQ_1 उत्पादन स्तर पर उत्पादक सामान्य लाभ प्राप्त कर रहे हैं। यदि उत्पादक OQ_1 स्तर से कम उत्पादन उत्पादित करते हैं तो अनेक लाभ बढ़ते हैं। इसलिए OQ से OQ_1 उत्पादन स्तर के बीच सभी इकाइयां उत्पादक तथा उपभोक्ता के कल्याण में OQ, उत्पादन स्तर से अधिक व द्धि करती है। यदि उत्पादन OQ_1 से कम करके OQ कर दिया जाता है तो वायु प्रदूषण हानि a + b + c + d भाग से कम होकर a + b भाग रह जाती है तथा शुद्ध सम्भावित कल्याण में c + d के बराबर व द्धि होती है। OQ से कम उत्पादन स्तर सभी लोगों के कल्याण में अर्थात् उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के कल्याण में OQ, उत्पादन स्तर से अधिक व द्धि करती है। यदि उत्पादन OQ, से कम करके OQ कर दिया जाता है तो वायु प्रदूषण हानि a + b + c + d भाग से कम होकर a + b भाग रह जाती है तथा शुद्ध सम्भावित कल्याण में c + d के बराबर व द्धि होती है। OQ से कम उत्पादन स्तर सभी लोगों के कल्याण में अर्थात् उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के कल्याण में व द्धि नहीं कर सकती क्योंकि प्रदूषण हानि उत्पादक उपभोक्ता की बचत (कल्याण) से अधिक होती है यद्यपि OQ सीमित उत्पादन स्तर बाह्य लागत उत्पन्न करता है ऐसी लागत पेरेटो का भाग नहीं है क्योंकि इनका हटना उत्पादक या उपभोक्ता दोनों में से किसी एक को बढ़तर बना देता है।

दूसरी तरफ बाजार प्रणाली भी कुशल वितरण करने में असफल हो जाती है क्योंकि बाह्यताओं के कारण उत्पादन OQ_1 से कम उत्पादित किया जाता है। OQ_1 उत्पादन बाजार प्रणाली की कुशलता को दर्शा रहा है अर्थात् MC = P, जो बाजार प्रणाली या प्रतियोगी बाजार की आवश्यक शर्तें हैं। इस प्रकार बाह्यताओं के कारण बाजार की असफलताएं सामने आती हैं।

अध्याय - 5
सामाजिक तथा निजी वस्तुओं की धारणा
(Concepts of Private and Social Goods)

मनुष्य की आवश्यकताएँ आर्थिक क्रियाओं की मुख्य प्रतिकारक हैं। संसाधनों के उपयोग के अनुसार आवश्यकताएँ निजी तथा सार्वजनिक रूप में विभाजित की जा सकती हैं। सार्वजनिक वस्तुओं की पूर्ति बजट प्रक्रिया द्वारा की जाती है तथा इनका प्रयोग सामाजिक रूप से किया जाता है, इनके प्रयोग के लिए प्रत्यक्ष भुगतान की आवश्यकता नहीं होती है। निजी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए प्रयोग व खरीदी गई वस्तुओं को निजी वस्तुएँ कहा जाता है और इनको बाजार प्रक्रिया द्वारा माँग व पूर्ति की जाती है।

निजी वस्तुएँ क्या हैं? (What is Private Goods):

जिन वस्तुओं का क्रय-विक्रय अन्य व्यक्तियों को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करता हो, वे निजी वस्तुएँ हैं। समाज में अधिकांश वस्तुएँ ऐसी हैं जिनकी पूर्ति निजी क्षेत्र द्वारा की जाती है। निजी क्षेत्र का इन वस्तुओं के उत्पादन करने का मुख्य उद्देश्य 'अधिकतम लाभ प्राप्त' करना है। परन्तु कुछ वस्तुएँ जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, पार्क इत्यादि कल्याणकारी वस्तुएँ' व सेवाएं ऐसी हैं जो निजी व सार्वजनिक क्षेत्र दोनों द्वारा उपलब्ध करवाई जाती हैं। निजी क्षेत्र यद्यपि 'उपभोक्ता की सार्वभौमिकता' का ध्यान तो रखता है परन्तु उसके साथ-साथ अपने लाभ का भी ध्यान रखता है जबकि सार्वजनिक क्षेत्र इन वस्तुओं को 'आर्थिक कल्याण' को ध्यान में रखकर प्रदान करता है। इन सेवाओं को सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा उपलब्ध करवाने के पीछे यह धारणा कार्य करती है कि इनकी पूर्ति व उपयोग आय के वितरण द्वारा प्रभावित नहीं होना चाहिए।

निजी वस्तुओं में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं:

(i) **उपभोग का वर्जन:** इन वस्तुओं को केवल वही उपभोक्ता उपभोग कर सकता है जो इनकी कीमत अदा करता है, आम व्यक्तियों को उपभोग से वर्जित रहना पड़ता है।

(ii) **प्रकटित अधिमान:** इन वस्तुओं का उत्पादन उपभोक्ता की सार्वभौमिकता के अनुरूप किया जाता है। उपभोक्ता के प्रकटित अधिमान के अनुरूप ही उत्पादन किया जाता है।

(iii) **आन्तरिक लाभ:** निजी वस्तुओं से केवल उपभोक्ता को ही उपयोगिता प्राप्त होती है, इससे बाह्य लाभ उत्पन्न नहीं होते हैं।

(iv) **संसाधनों का इष्टतम उपयोगः** अर्थव्यवस्था में सन्तुलन पैरिटो इष्टतम सिद्धान्त के अनुसार होता है तथा अनुकूलतम स्थिति में उत्पादन, उपभोग व वितरण होता है।

(v) **उपभोग में प्रतिद्वन्द्विताः** जो वस्तु एक उपभोक्ता ने उपभोग कर ली वह अन्य उपभोक्ता के लिए उपलब्ध नहीं हो सकती।

सार्वजनिक वस्तुएँ क्या हैं? (What is Public Goods):

सामाजिक वस्तुएँ वे हैं जिनके उत्पादन से बाह्य लाभ (External Benifit) का स जन होता है और लाभ का उपयोग अनेक व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। इन वस्तुओं के प्रयोग से 'बिखराव प्रभाव' (Spill-over Effects) ऐसे होता है कि जो एक व्यक्ति के प्रयोग से अनायास ही अन्य व्यक्तियों को प्राप्त हो जाता है, जैसे मच्छर मारने की दवाई का छिड़काव 'बिखराव प्रभाव' पैदा करता है, परन्तु इन बाह्य लाभों (External Benefits) पर 'सम्पति का अधिकार' स्थापित नहीं किया जा सकता अर्थात् उन व्यक्तियों को उस वस्तु के उपभोग से वंचित नहीं किया जा सकता जो कीमत का भुगतान नहीं करते हैं।

सामाजिक वस्तुओं में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैंः

(i) **बाह्य लाभः** सामाजिक वस्तुओं के उपभोग व उत्पादन से बाह्य लाभ प्राप्ति होते हैं।

(ii) **गैर-प्रतिद्वन्द्विता उपभोगः** सामाजिक वस्तुओं का उपभाग एक साथ कई उपभोक्ताओं द्वारा किया जा सकता है और इससे अन्य व्यक्तियों के उपभाग पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता 'जैसे, टी.वी. प्रोग्राम साथ-साथ देखना।

(iii) **सम्पत्ति का अधिकार नहीं:** इन वस्तुओं पर किसी एक व्यक्ति के सम्पत्ति के अधिकार का नियम लागू नहीं होता है।

(iv) **बिखराव प्रभावः** इन वस्तुओं के प्रयोग से अनायास ही बिखराव प्रभाव हो जाता है।

(v) **संयुक्त उपभोगः** एक ही वस्तु या सेवा का कई उपभोक्ता साथ-साथ उपभोग कर सकते हैं।

(vi) **बाजार प्रक्रिया लागू न होनाः** इन वस्तुओं की कीमतों के निर्धारण में बाजार प्रक्रिया लागू नहीं की जा सकती है अर्थात् माँग व पूर्ति द्वारा उत्पादन व कीमत निर्धारित नहीं की जा सकती है।

निजी व सामाजिक वस्तुओं में अन्तर

प्रो. मैसग्रेव ने इन वस्तुओं के मध्य निम्न दो आधारों पर अन्तर किया हैः

(i) आवश्यकता के निर्धारण का आधार तथा लाभ की प्रकृति।

(ii) उपभोग से वर्जन (Exclusion) तथा प्रतिद्वन्द्विता (Rival) की उपस्थिति या अनुपस्थिति।

1. आवश्यकता की किस्में (Types of Wants):

निम्न तालिका द्वारा आवश्यकता के निर्धारण के आधार पर निजी तथा सामाजिक वस्तुओं के मध्य अन्तर को दर्शाया गया है।

आवश्यकता के निर्धारण का आधार	लाभ की प्रकृति	
	आन्तरिक लाभ	बाह्य लाभ
व्यक्तिगत (Individual)	Private Good	Public Good
आरोपित (Imposed)	Merit Good	Merit Good

निजी व सामाजिक वस्तुओं में अन्तर लाभ की प्रकृति द्वारा किया जाता है यदि लाभ आन्तरिक है तो वस्तु निजी है और यदि लाभ बाह्य है तो वस्तु सामाजिक है।

Merit Goods:

इन वस्तुओं से प्राप्त लाभ आन्तरिक व बाह्य दोनों प्रकार के हो सकते हैं, परन्तु इसका उत्पादन कितनी मात्रा में किया जाएगा, इसका निर्धारण व्यक्तिगत न होकर सरकार द्वारा आरोपित होता है। जैसे - प्राइमरी तथा माध्यमिक शिक्षा, चेचक के टीके, स्वास्थ्य सेवाएं, लाईब्रेरी इत्यादि Merit Goods हैं।

2. **वर्जन सिद्धान्त एवं उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता (Exclusion Principle and Rival in Consumption):**

निजी वस्तुओं का उत्पादन बाजार सिद्धान्त तथा आर्थिक निपुणता (Economic Efficiency) के अनुसार होता है।

यदि बाजार प्रक्रिया द्वारा एक वस्तु (सेब) खरीदी जाती है और की जाती है तो वह क्रेता और विक्रेता दोनों मो 'पैरिटो इष्टतम' (Pareto Optimal) के द्वारा सन्तुष्ट करती है तथा इस सौदे का अन्य व्यक्तियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है जबकि यह वस्तु समाज के अन्य व्यक्तियों को उपलब्ध नहीं होती है, इसे शुद्ध निजी वस्तु (Pure Private Good) कहा जाता है। अर्थात् वे वस्तुएँ जिनका लेन-देन अन्य व्यक्तियों को किसी प्रकार से प्रभावित न करता हो तथा वह वस्तु समाज के अन्य लोगों के लिए उपलब्ध ना हो उसे निजी वस्तु कहा जाता है।

बाजार अर्थव्यवस्था दो सिद्धान्तों पर आधारित है।

A. Exclusion Principle (वर्णन सिद्धान्त)।

B. Revealed Preference (प्रकट अभिमान)।

निजी वस्तु का उपभोग केवल वही उपभोक्ता करते हैं जो इसके लिए बाजार कीमत का भुगतान करते हैं। अन्य व्यक्ति इसके उपभोग से वंचित रह जाते हैं। लोगों को 'सम्पत्ति का कानूनी अधिकार (Legal Right to Property) प्राप्त होता है। अतः निजी वस्तुओं से प्राप्त लाभ आन्तरिक रहते हैं और उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता रहती है जिसके फलस्वरूप वस्तु का उपभोग केवल वही उपभोक्ता करता है जो उसकी कीमत का भुगतान करता है।

परन्तु कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका प्रावधान बाजार व्यवस्था (Market Mechanism) द्वारा संभव नहीं है क्योंकि 'वर्जन का सिद्धान्त' लागू नहीं होने के कारण उपभोक्ता उस वस्तु का अपने लिए 'अधिमान को प्रकट नहीं करते हैं तथा इन वस्तुओं को उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता

भी नहीं रहती है ऐसी वस्तुओं को सामाजिक वस्तुएँ (Pure Public Goods) कहा जाता है।

निम्न तालिका द्वारा निजी तथा सार्वजनिक वस्तुओं के मध्य अन्तर दर्शाया गया है:

वस्तुओं का विभाजन

उपभोग	वर्जन (Exclusion)	
	सम्भव (Feasible)	**सम्भव नहीं** (Not Feasible)
प्रतिद्वन्द्विता (Rival)	1. Private	2. Merit
गैर प्रतिद्वन्द्विता (Non-Rival)	3. Public	4. Public

वस्तुओं को उपभोग की प्रतिद्वन्द्विता व वर्जन के आधार पर चार भागों में बांटा गया है:

स्थिति – 1

यह स्थिति स्पष्ट रूप से 'निजी' वस्तुओं' की है क्योंकि वस्तुएं प्रतिद्वन्द्वी हैं और वर्जन सम्भव है। जैसे सेब।

स्थिति – 2

इस अवस्था में बाजार यन्त्र टूटने के कारण 'वर्जन' सम्भव नहीं है जबकि उपभोग में प्रतिद्वन्द्वी हैं ये वस्तुएं मेरिट वस्तुएं हैं जैसे - चेचक के टीके।

स्थिति – 3 व 4

स्थिति 3 और 4 में प्रतिद्वन्द्विता की अनुपस्थिति के कारण वस्तुएँ सामाजिक हैं।

जिन वस्तुओं का विनिमय, अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करता हो वे वस्तुएं सामाजिक वस्तुएं हैं, जैसे मच्छर मारने का छिड़काव। इन वस्तुओं का प्रभाव सभी उपभोक्ताओं को समान मात्रा में उपलब्ध होता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति समान कीमत अदा करेगा। इसका अर्थ यह है कि जब एक उत्पाद एक व्यक्ति द्वारा उपभोग किया जाता है तो वह अन्य व्यक्तियों को भी उसी मात्रा में उपलब्ध होता है जैसे टी.वी. प्रोग्राम, मुनिसिपल पार्क, स्ट्रीट लाईटें, रेडियो प्रोग्राम इत्यादि।

सामाजिक वस्तु है जिसका सन्तुलन कि स्थिति में जितना उत्पादन होता है उतनी ही मात्रा में सभी उपभोक्ताओं को मिलता है तथा अलग-अलग उपभोग करते हैं अर्थात् -

Gp = Gi = Gj = – – – = Gn

Gp = Pure Public Good

i, j – – n उपभोक्ताओं की संख्या

निजी वस्तुओं की अवस्था में एक व्यक्ति के उपभोग से वस्तु दूसरे के लिए अनुपलब्ध (वर्जित) हो जाती है अर्थात् -

$$X_p = \frac{n}{\underset{i}{2}} X_i \quad \text{or} \quad X = X_A + X_B$$

i -- n ⇒ उपभोक्ताओं की संख्या।

अध्याय - 6
सामाजिक वस्तुओं का सिद्धान्त

Theory of Public Expenditure

लोक व्यय के आधुनिक सिद्धान्त का प्रारम्भ सन् 1954 के सैम्यूअलसन के लेख, 'The Pure Theory of Public Expenditure' के प्रकाशन से हुआ है। Prof. Samuelson ने अपने सिद्धान्त को पैरिटो (Pareto) के इष्टत्तम कल्याण की शर्तों के विस्तार के रूप में प्रस्तुत किया है, उन्होंने इस सिद्धान्त को बजट नीति के निर्धारण की प्रक्रिया के सुधार के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है, वस्तुतः बजट नीति के निर्धारण की प्रक्रिया में सैम्युअलसन ने 'कार्यक्षमता की शर्तों' (Condition of Efficiency) को अलग रखा है।

प्रो. सैम्युअलसन ने अपने सिद्धान्त को एक मिश्रित अर्थव्यवस्था में 'साधनों के आर्दश आबटंन' की समस्या के रूप में प्रस्तुत किया है। ऐसी अर्थव्यवस्था में वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन निजी व सार्वजनिक क्षेत्रों दोनों में होता है। निजी वस्तुएँ से है जिनका अपभोग अलग-अलग मात्र में विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा होता है क्या सभी उपभोक्ताओं के अलग-अलग उपभोग का कुल भोग ही इन वस्तुओं की कुल उत्पत्ति होती है,

अर्थात् $X_P = X_A + x_B + - - + X_n$

कुल उत्पादन $X_p = \sum_{i=1}^{n} X$

सार्वजनिक वस्तुओं का उपभोग सभी उपभोक्ता समान मात्रा में करते हैं अतः विभिन्न उपभोक्तओं के उपभोग को अलग-अलग जोड़कर इन वस्तुओं के कुल उत्पादन को प्राप्त नहीं किया जा सकता है, अर्थात् -

$$G_p = G_i = G_j = G_n$$

मान्यताएँ

सैम्युअलसन का सिद्धान्त निम्न मान्यताओं पर आधारित हैः

1. अर्थव्यवस्था का 'उत्पादन सम्भावना वक्र' दिया हुआ है।
2. दोनों वस्तुओं के उपभोक्ता अधिमानों; (Consumer Preferonces) का ज्ञान है अर्थात् उपभोक्ताओं द्वारा की जाने वाली कुल मांगे ज्ञात है।
3. प्रो. सैम्यूअलसन ने वस्तुओं की ध्रुवीय स्थितियों (Polar Cases) अर्थात् शुद्ध निजी और शुद्ध सार्वजनिक वस्तुओं की अवस्था को लिया है। निजी वस्तु जैसे रोटी, जिसका विभाजन उपभोक्ताओं में सम्भव है।

$$X = X_A + X_B$$

शुद्ध सार्वजनिक वस्तु ऐसी वस्तु है जिसकी उत्पत्ति का उपभोग समान मात्रा में उपलब्ध है जैसे टी.वी. प्रोग्राम।

$$G = G_A = G_B$$

स्पष्ट है कि निजी वस्तुओं की तरह सार्वजनिक वस्तु की कुल उत्पत्ति को व्यक्तिगत उपभोक्ताओं की मांगे को जोड़कर ज्ञान नहीं किया जा सकता है।

4. निजी वस्तुओं की मांगे के सम्बन्ध में 'अधिमान' मान की जानकारी बाजार की मतों द्वारा प्राप्त की जाती है जबकि सार्वजनिक वस्तुओं का अधिमान इस प्रकार ज्ञात नहीं किया जा सकता है इसके लिए सैम्युअलसन ने यह मान लिया है कि एक सर्वज्ञ मशीन (Omniscient Calclulation Machine) है जो सार्वजनिक वस्तुओं की व्यक्तिगत मांग की जानकारी देती है।

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में वस्तुओं व सेवाओं की अधिकतम उत्पत्ति कैसे प्राप्त होती है तथा इस 'कार्यकुशल उत्पादन' की शर्ते क्या है?

उपरोक्त रेखाचित्र A में निजी वस्तु का बंटवारा तथा रेखाचित्र B में सार्वजनिक वस्तु का बंटवार दर्शाया गया है माना कि अर्थव्यवस्था में आय का विवरण व अन्य वस्तुओं की कीमतें

रेखाचित्र- A

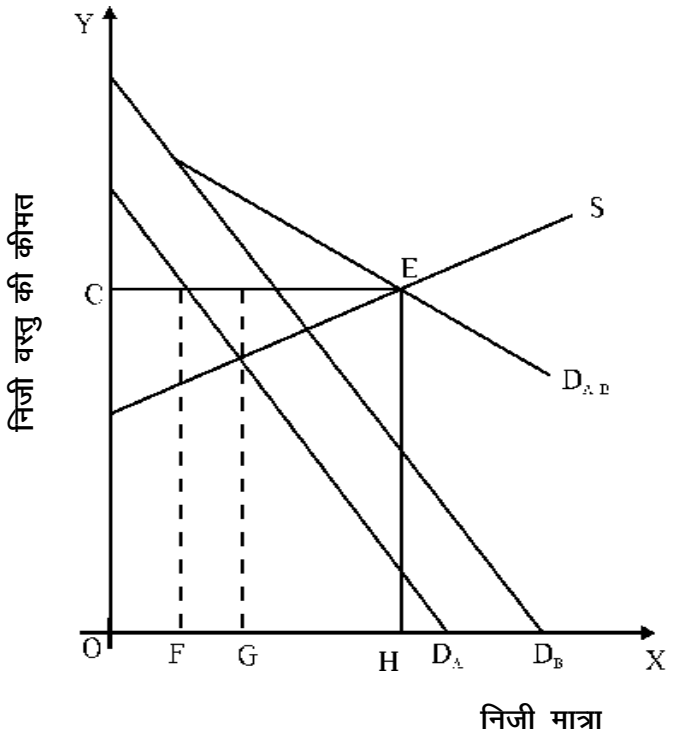

दी हुई हैं तथा केवल दो उपभोक्ता A व B हैं और वे दोनों ही निजी व सार्वजनिक वस्तुओं

रेखाचित्र-B

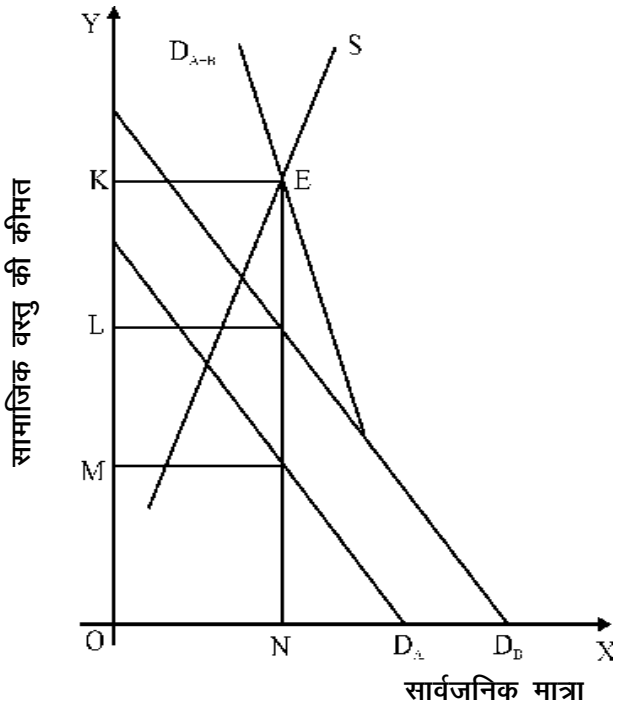

की मांग करते हैं। रेखांकित A में D_A तथा D_B दोनों व्यक्तियों की निजी वस्तु की मांगे हैं तथा $D_A + B$ निजी वस्तु की बाजार मांगे वक्र है जिसे व्यक्तिगत मांग वक्रो को क्षेत्रिया भोग (Horizantal Summation) से ज्ञात किया है। पूर्ति वक्र SS है जो $D_A + B$ को E बिन्दु पर काटता है अतः वस्तु X का OH कुल उत्पादन होगा और OC कीमत निर्धारित होगी। उपभोक्ता A तथा B के मध्यम वस्तु के कुल उत्पादन OH को OF उपभोक्ता A तथा OG उपभोक्त B खरीदता है तथा दोनों समान कीमत OC का भुगतान करते हैं अतः OF + OG = OH.

रेखाचित्र-B में D_A और D_B सार्वजनिक वस्तु के मांगे वक्र हैं। D_A और D_B के अर्ध्व योग (Vertical Summation) द्वारा सामाजिक वस्तु G का बाजार मांग वक्र $D_A + B$ प्राप्त होता है तथा पूर्ति वक्र SS है, मांग और पूर्ति का सन्तुलन E बिन्दु पर होगा तथा वस्तु का 'कुल उत्पादन' ON होगा जो दोनों उपभोक्ताओं को समान मात्रा ON ही उपलबध होता है, इस प्रकार $G = G_A = G_B$ होगा। यद्यपि उपभोग A व B द्वारा समान मात्र में होता है, परन्तु A तथा B इस वस्तु के उपभोग के लिए समान कीमत नही देते हैं। इसका कारण यह है कि दोनों उपभोक्ताओं के लिए सामाजिक वस्तु को मूल्यांकन अलग-अलग है। उपभोक्ता A कर के रूप में OM कीमत तथा B, OL किमत देता है क्योंकि उपभोक्ता B के अधिमान A की अपेक्षा अधिक हैं अतः वह अधिक कर देने को तत्पर हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'सामाजिक वस्तु के सन्तुलित उत्पादन तथा कीमत निर्धारण की प्रक्रिया' वही है जो निजी वस्तु के लिए प्रयोग होती है परन्तु फिर भी निम्न अन्तर

पाए जाते हैं। कार्यकुशलता के लिए यह जरूरी है कि निजी वस्तु की स्थिति में प्रत्येक उपभोक्ता को प्राप्त सीमान्त लाभ (Marginal Benifit) इसकी सीमान्त लागत (MC) के बराबर हो अर्थात् -

$$MB_A = MB_B = MC$$

सामाजिक वस्तु की स्थिति में प्रत्येक उपभोक्ता को प्राप्त सीमान्त लाभ प्रत्येक के लिए अलग-अलग होता है अतः सभी उपभोक्ताओं को प्राप्त सीमान्त लाभ का योग सीमान्त लागत के बराबर होता है।

अतः $MB_A + MB_B = MC$

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही बाजार यन्त्र के उपयोग के बावजूद परिणाम प थक हैं, प्रत्येक उपभोक्ता सामाजिक वस्तु को समान मात्रा में प्रयोग करता है परन्तु अलग-अलग कीमतें देता है, प्रत्येक उपभोक्ता निजी वस्तु को भिन्न-भिन्न मात्रा में खरीदता है, लेकिन एक ही कीमत देता है।

अध्याय - 7
मुफ्त उपयोग की समस्या
(Free Rider's Problem)

Social Goods and Private Goods का मुख्य अंतर यही होता है कि Social Goods non Rival होती है जिसमें एक उपभोक्ता की सतुष्टि को बढ़ाने के लिए दूसरे उपभोक्ता की संतुष्टि को कम नहीं करना पड़ता। Social Good में Non-Exclusion की विशेषता पाई जाती है। जिसमें एक उपभोक्ता जो कीमत नहीं देना चाहता उसको हम वस्तु के उपभोग से वंचित नहीं रह सकते। इन दो विशेषताओं के कारण Private Sector Social Goods को समाज में प्रदान नहीं करते क्योंकि इन वस्तुओं में Incentive Compatibitity नहीं पाई जाती। सरकार को इन वस्तुओं का उत्पादन करना पड़ता है और समाज को प्रदान करनी पड़ती है। इन वस्तुओं के उपभोग में सबसे बड़ी समस्या Free Rider's Problem की है। जिसका तात्पर्य यह है कि Consumer मुफ्त में उस वस्तु को जनना चाहता है। अन्य शब्दों में उपभोक्ता उस वस्तु के लिए किसी प्रकार का त्याग नहीं करना चाहता है। सरकार को ही तय करना पड़ता है कि उपभोक्ता से उसकी कीमत ली जाये तो सरकार Tax के रूप में वसूल करती है। फिर भी कुछ उपभोक्ता बिना कीमत दिये उस वस्तु का उपभोग करते हैं जैसे देश की वायुसेना की सुरक्षा सभी को मिलती है। चाहे वो Tax दे या ना दे।

(Free Rider's Problem) किस कारण से होती है:

प्रत्येक उपभोक्ता विवेकशील होता है वह प्रत्येक वस्तु जिसका उपभोग करता है। उसकी कम से कम कीमत देना चाहता है। उपभोक्ता को पता है कि Social Goods की कीमत यदि वो नहीं देगा तब भी उसके उपभोग से उसे कोई नहीं रोक सकता इसलिए वह उसकी कीमत नहीं देना चाहता।

(Free Rider's Problem) के प्रभाव:

Free Rider's Problems के कारण Private Sector इन वस्तुओं का निर्माण नहीं करता। सरकारी क्षेत्र को ही इनका उत्पादन करना पड़ता है। जो उचित नहीं है सरकारी क्षेत्र के सामने भी इनको प्रदान करने संबंधी समस्याऐं आती है। जैसे कितनी Social Goods का निर्माण किया जाय उसकी कितनी कीमत तय की जाय। किन उपभोक्ताओं से और किस प्रकार से कीमत ले। कुछ अर्थशास्त्रियों ने इन समस्याओं के अध्ययन के लिए कुछ सिद्धान्त विकसित किये हैं। इसमें Lindahl और Wecksal के सिद्धांत है जो यह बताता है कि Social Goods की कितनी कीमत लेनी चाहिए और कितना निर्माण करना चाहिए।

मान्यताएं

इस सिद्धान्त की मान्यताऐं निम्नलिखित हैं।

1. प्रत्येक वस्तु सामाजिक वस्तुओं और निजी वस्तुओं का अलग-अलग सन्तुविट वक्र बना सकता है। सामाजिक वस्तुओं का संतुविट वक्र Private Goods के संतुविट की तरह ही होता है।

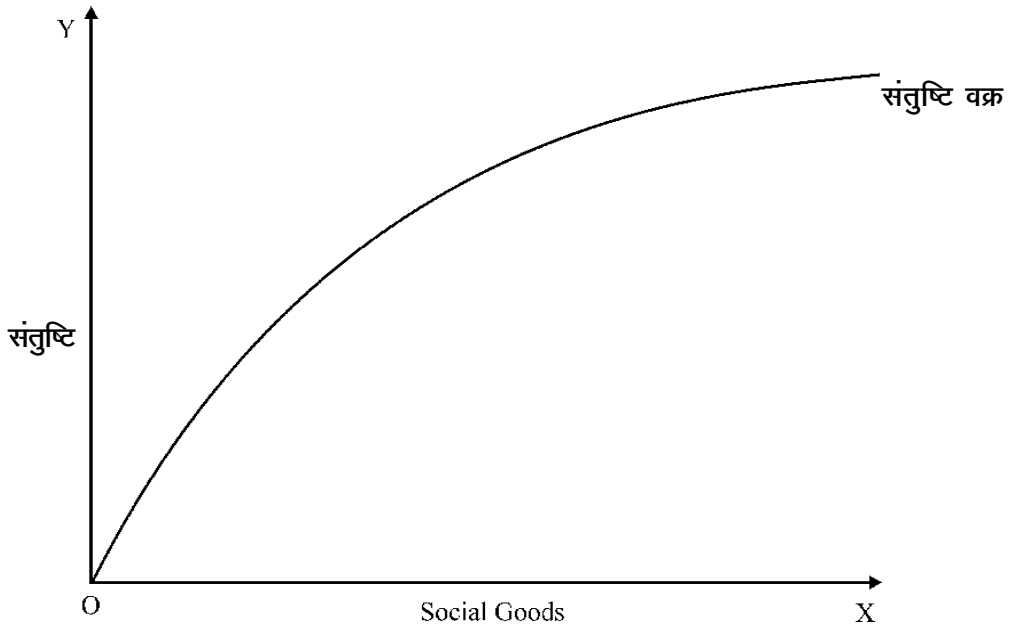

2. Marginal rate of Substitution (MRS) between social goods and private good इकाई के बराबर होता है।
3. प्रत्येक उपभोक्ता अपने Preference को सही दर्शाता है।
4. उपभोक्ता यह निर्णय ले सकता है कि उसकी संतुविट कहाँ पर अधिकतम होगी।
5. सरकार प्रत्येक उपभोक्ता से Social goods का एक निश्चित भाग Tax के रूप में लेना चाहती है।

   सरकार Tax rate को इस प्रकार से तय करना चाहता है जिससे समाज की संतुविट अधिकतम होगी।

व्याख्या

Lindhal and Wecksell के द्वारा इसकी व्याख्या इस प्रकार है:

G = Social goods

X_1 = Private goods

$U^i = f(G_1X_1) = V^1(h) + X_1$ for individual

Xi + T = Wi T = Tax

Wi = Budget Constant)

T = tG (tG **सरकार द्वारा लगाया गया** Tax)

Xi = Wi – T

(**बजट में से यदि** Social Goods **पर किये जाने वाले** Tax **को घटा दिया जाये तो** Private Goods **किये जाने वाला व्यय निकल आएगा**)

$u^i = V^1 (G) + X_i$

put $= X_i = (Wi - T)$

$u^i = V^1 (G) + (Wi - T)$

$u^i = V (G) + Wi - T)$

Diff W.r to G

$$\frac{\partial u^i}{\partial G} = \frac{\partial V^1(G)}{\partial G} + O - \frac{\partial T}{\partial G} = O$$

$$\frac{\partial V^1}{\partial G} = \frac{\partial T}{\partial G}$$

$$\left[\frac{\partial V^1 G}{\partial G} = \text{Tax Rate}\right]$$

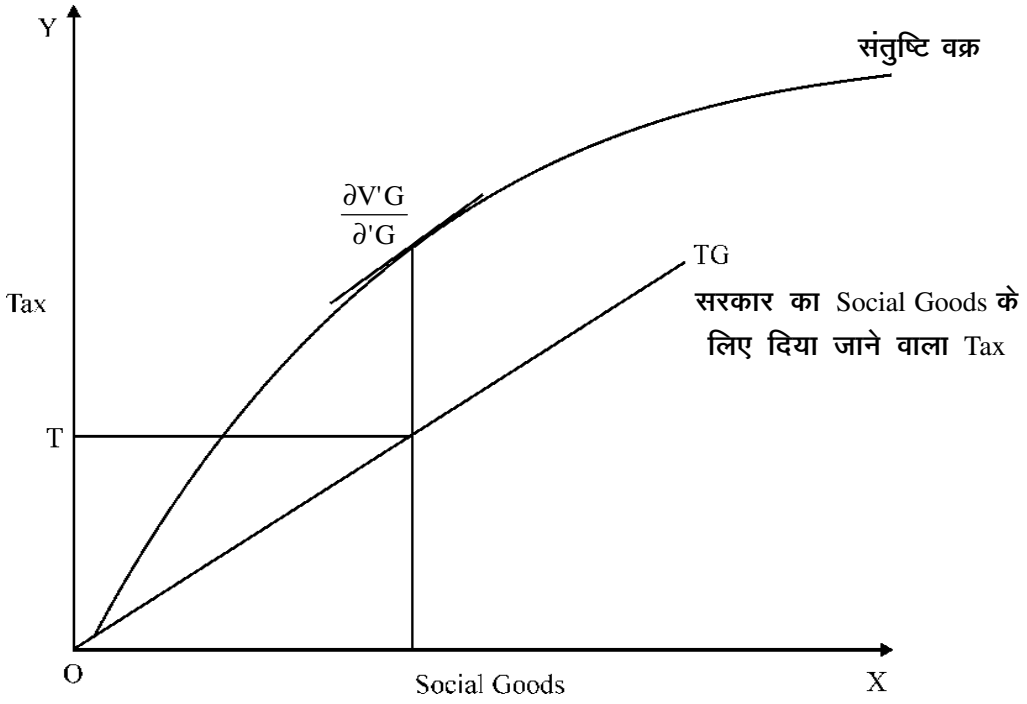

सरकार को जब तक Social Goods पर Tax लगाना चाहिए। जब तक कि Social Goods से मिलने वाली संतुविट और Tax Rate बराबर ना हो जाये। इनके बराबर होने के बाद सरकार को Tax नहीं लगाना चाहिए।

उपरोक्त रेखाचित्र के अनुसार सरकार को OT तक ही कर लगाना चाहिए। क्योंकि इस पर

है इससे आगे सरकार को Tax नहीं लगाना चाहिए।

आलोचनाएं

इस सिद्धान्त की आलोचनाएं निम्न हैं।

1. कोई भी उपभोक्ता इतना विवेकशील नहीं होता कि वह यह निर्णय ले सके कि उसकी संतुष्टि कहाँ पर अधिकतम होगी।
2. प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक वस्तु तथा निजी वस्तुओं से मिलने वाली संतुष्टि का ज्ञान नहीं होता।
3. प्रत्येक उपभोक्ता अपने Preference को सही नहीं बताता।
4. Social Goods से मिलने वाली संतुविट के लिए कोई भी उपभोक्ता उसकी कीमत देना ही नहीं चाहता।

$$\frac{\partial V^{1}(G)}{\partial (G)} = \frac{\partial T}{\partial G}$$

अध्याय - 8
लिण्डाल माडल
(Lindahl Equilibrium)

सामाजिक वस्तुओं के सिद्धान्त विकास के क्रम में गैर-ब्रिटिश लेखकों की देन की अन्तिम कड़ी एरिक लिण्डल (Frik Lindahl) का प्रस्तुतीकरण है। 1919 में लिण्डल ने अपने सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। यह आगे चलकर स्वैच्छिक विनिमय सिद्धान्त (Voluntry Exchange Theory) कहलाया। मान ले समाज में दो व्यक्ति A तथा व्यक्ति B है। सार्वजनिक वस्तु के लिए इनके मांग वक्र को इस रूप में दिखाया जाता है कि वे दो व्यक्ति A तथा B है। सार्वजनिक वस्तु के लिए इनके मांग वक्र को इस रूप में दिखाया जाता है कि वो इस वस्तु की कुल लागत में कितना हिस्सा देने के लिए तैयार है इन दोनों वक्रों के कटान बिन्दु पर सन्तुलन की इस प्रकार स्थापना होती है कि उनके सीमान्त मूल्यांकनों का योग कुल लागत के बराबर होता है।

A का मांग वक्र aa है जिससे यह जानकारी मिलती है कि इस वस्तु की विभिन्न मात्रा

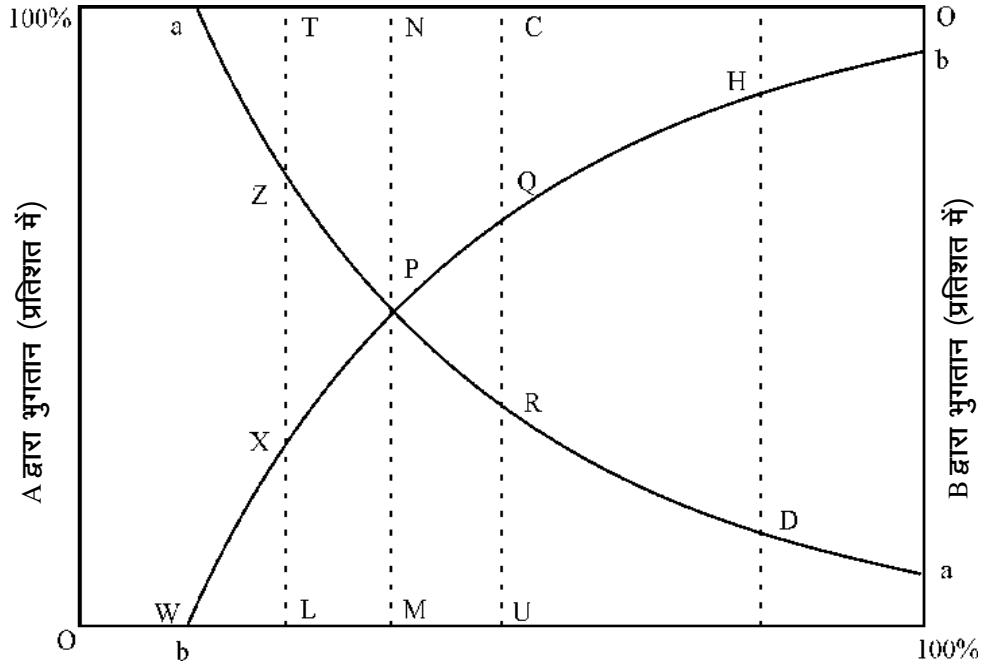

में उत्पादन करने पर जो भिन्न-भिन्न लागत आयेगी उसका कितना हिस्सा A देने को प्रस्तुत है। इस प्रकार कीमत को लागत के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया गया है। bb वक्र से इसी बात की जानकारी B के लिए मिलती है। B जितनी मात्रा में भुगतान करने के लिए तैयार है इस वह ज्ञान पर निर्भर करता है कि A कितना भुगतान करता है। यदि A का

हिस्सा K हो तो B का हिस्सा 100-K होगा। वक्र bb को सामाजिक वस्तु के लिए B का मांग वक्र समझा जा सकता है या A के द ष्टिकोण से सामाजिक वस्तु का पूर्ति वक्र। इस प्रकार OW परिमाण में सामाजिक वस्तु के उत्पादन के लिए 100 प्रतिशत लगान का भुगतान करने के लिए B प्रस्तुत है और A को यह मात्रा मुफ्त ही मिल सकती है चित्र से यह जानकारी भी मिलती है कि दोनों मिलकर OM से अधिक मात्रा में वस्तु के उत्पादन के लिए तैयार नहीं होंगे अर्थात अधिकतम लोक व्यय OM हो सकता है। मान लें कि वस्तु की कुल उत्पत्ति OS होती है इस स्थिति में B चाहेगा भी A का यह योगदान इस प्रतिशत में हो लेकिन A के माँग वक्र से यह पता लगता है कि वह SD अनुपात से अधिक देने के लिए तैयार नहीं है अतः OS भाग में उत्पादन की सम्भावना नहीं है। दोनों व्यक्तियों के मोलभाव करने की ताकत के अनुसार सन्तुलन S बिन्दु की बायीं ओर कहीं भी स्थापित हो सकता है। यदि दोनों की मोलभाव की शक्ति एक समान हो तो साम्य पूर्ति OM होगी। OM पर दोनों के लिए सार्वजनिक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता एवं कीमत बराबर है तथा लोक व्यय से प्राप्त समग्र उपयोगिता अधिकतम होती है। इस उत्पत्ति की कुल लागत को दोनों इस प्रकार बांट लेते हैं कि दोनों का हिस्सा मिलकर 100 प्रतिशत हो जाता है यदि सामाजिक वस्तु की उत्पत्ति OL के बराबर हो तो इसकी लागत TK अंश देने को तैयार होगा तथा चाहेगा कि A का हिस्सा LK है। किन्तु A इसमें अधिक LG देने को तैयार है। इस प्रकार कुल कीमत कुल लागत से Zk की मात्रा में अधिक है। इस वस्तु की उत्पत्ति में व द्धि होगी। उत्पादन OU हो तो A केवल RU तथा B मात्र CQ का भुगतान करने के लिए प्रस्तुत होंगे। इस प्रकार वस्तु की कुल लागत से कुल कीमत RQ के बराबर कम रह जाती है। इसका अर्थ यह है कि सामाजिक वस्तु की कुल लागत का प्रावधान नहीं हो पाता है। अतः उत्पत्ति घटेगी। OM ही साम्य उत्पत्ति होगी जहाँ कुल लागत कुल कीमत के बराबर रहती है। MN (कुल लागत) = MP (A का योगदान) + NP CB का योगदान) जो कीमत निर्धारित होती है उससे प्रत्येक करदाता उस स्थिति मे आ जाता है जहाँ कीमत अनुपात प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के बराबर हो जाता है। इस प्रकार सामाजिक वस्तुओं का मूल्य निर्धारण उसी प्रकार होता है जिस प्रकार निजी वस्तुओं का होता है लेकिन एक अन्तर हैः निजी वस्तु की विभिन्न मात्र एक ही कीमत पर विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा खरीदी जाती है किन्तु सामाजिक वस्तु की समान मात्रा का उपभोग सभी करदाता करते है जबकि अलग-अलग कीमत कर के रूप में दी जाती है।

उपर्युक्त विश्लेषण इस सरल मान्यता के आधार पर प्रस्तुत किया गया कि केवल दो करदाता तथा एक सामाजिक वस्तु है यदि करदाताओं तथा सामाजिक वस्तुओं की संख्या में व द्धि कर दी जाए तो मूल तर्क में कोई फर्क नहीं पड़ेगा केवल लोक व्यय तथा करके हिस्से के निर्धारण की कठिनाइयाँ बढ़ जाएंगी। जाँच एवं मूल के आधार पर बाजार में करार में बराबर परिवर्तन उस समय तक होंगे जब तक सन्तुलन की स्थापना नहीं हो जाती। वस्तुतः ऐसा प्रत्येक बजट में करने की जरूरत नहीं है। प्रत्येक नये बजट में केवल सीमान्त समायोजन (Adjustment) की जरूरत पड़ेगी क्योंकि सामाजिक वस्तु के चयन एवं वित्त व्यवस्था की प्रक्रिया तो स्थिर

है।

लिण्डल के सिद्धान्त की काफी आलोचना हुई। आलोचना का मुख्य विषय उसकी मान्यताएँ हैं:

1. इस सिद्धान्त में मान लिया जाता है कि जिस तरह उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं पर किये गए व्यय से प्राप्त उपयोगिता को जान सकता है उसी तरह करदाता भी विभिन्न प्रकार की सामाजिक वस्तुओं से प्राप्त लाभ को जानते है। आलोचकों का कहना है कि अविभाज्यता इन वस्तुओं का एक महत्वपूर्ण गुण है अतः इनसे करदाताओं को अलग-अलग कितना लाभ मिलता है जाना नहीं जा सकता।
2. सभी करदाताओं की मोलभाव करने की शक्ति समान नहीं होती है।

अध्याय - 9

लोक चुनाव तथा राजकोषीय निर्माण प्रक्रिया; चुनाव प्रक्रिया तथा बहुमत वोट

(Public Choice and Fiscal Decision Making Voting Systems and Majority Voting)

निजी-पदार्थों के उत्पादन का निर्णय बाजार की शक्तियों के अनुसार लिया जाता है परंतु सार्वजनिक वस्तु के उत्पादन से संबंधित निर्णय लेने में कठिनाई आती है। इसके लिए सामाजिक-अधिमानों की आवश्यकता होती है। आजकल यह वोट के माध्यम से जानी जाती है। परंतु अधिमान जानने में कुछ कठिनाईयाँ आती हैं। अतः मुख्यतया निर्णय राजनीतिज्ञों द्वारा लिए जाते हैं। इन सब बातों का अध्ययन Public Choice Theory में किया जाता है। इस सिद्धांत में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि अर्थव्यवस्था के विषय में राजनीतिक स्तर पर लिया गया कोई भी निर्णय आर्थिक-द ष्टि से कितना उचित है। इस प्रकार यह सिद्धांत Fiscal Decision Making में भी सहायता देता है।

अतः लोक-चयन सिद्धांत राजनीतिक-निर्णय निर्माण का अर्थशास्त्र है।

J.A. Schumpeter: लोक-चयन सिद्धांत का मार्गदर्शक था। उन्होंने इस सिद्धांत में यह व्याख्या की कि जिस तरह निजी क्षेत्र में उपभोक्ता उपयोगिता को अधिकतम करते हैं तथा उत्पादन-कर्त्ता लाभ को। उसी तरह राजनीतिज्ञ उन्हीं आर्थिक-नीतियों को लागू करते हैं जिससे उनके पुनः चुने जाने की संभावना अधिकतम होती है। उन्होंने बताया कि राजनीतिज्ञ-दल, राजनीतिक-रंगमंच के केंद्र में आने का प्रचार करते हैं। मतदात-विरोधाभास की अवधारणा का परिचय भी उन्होंने ही करवाया यह विरोधाभास यह है कि लोगों के लिए मतदान करना विवेकपूर्ण नहीं है। क्योंकि अकेला एक के परिणाम व्यक्ति मतदान शायद ही प्रभावित कर सकता है।

राजनीतिक खेल के खिलाड़ी

राजनीतिक निर्णय कुछ नियमों की सीमाओं के अंदर लिए जाते हैं। राजनीति खेल के खिलाड़ी भी होते हैं। सविधान एवं मतदान-प्रणाली के नियमों के अंतर्गत् ही चुने हुए प्रतिनिधि निर्णय लेते हैं। इस खेल के निम्न-खिलाड़ी हैं:

1. मतदाता जो बाजार-अर्थव्यवस्था के उपभोक्ता की तरह हैं।

2. राजनीतिज्ञ या चुने हुए प्रतिनिधि जो बाजार-व्यवस्था के फर्म की तरह हैं। वे ही उद्यमी हैं। जो सामूहिक वस्तुओं के लिए लोगों की मांग की व्याख्या करते हैं। जिस प्रकार फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहती है उसी प्रकार राजनीतिज्ञ वोट को अधिकतम करने वाले होते हैं।
3. मतदाता एवंम् राजनीतिज्ञों के मध्य अनेक स्वार्थदल होते हैं। जो संगठित होकर किसी स्वार्थ या हित के लिए काम करते हैं। जैसे किसान सभा, जो कृषकों के हित में कार्य करती है।
4. नौकरशाही एक अन्य महत्वपूर्ण खिलाड़ी है। यह सरकार की कार्यकारिणी है।

बाजार-अर्थव्यवस्था के खेल की ही तरह राजनीति के खेल में सार्वजनिक वस्तुओं की मांग और पूर्ति को बराबर करने का प्रयास किया जाता है। इसमें मुख्य अंतर यह है कि राजनीति के प्रमुख खिलाड़ी चुनाव जीतने का प्रयास करते हैं। जबकि बाजार के प्रमुख खिलाड़ी लाभ प्राप्त करना चाहते हैं।

लोक-चयन की यान्त्रिकी

प्रत्येक देश में एक राजनीतिक व्यवस्था होती है जो सामूहिक निर्णय लेती है। उस राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत् मतदान-प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाता है। जिसे प्रजातंत्र कहा जाता है।

लोक-निर्णय वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तिगत अधिमानों को सामूहिक-निर्णय में बदला जाता है। प्रजातांत्रिक समाज मे व्यक्तिगत रुचियो एवं मूल्यों का एकत्रीकरण करने का भी महत्व रहता है। व्यक्ति के इसी महत्व के कारण ही एक व्यक्ति, एक मत की व्यवस्था को अपनाया जाता है। लोक-चयन की प्रमुख समस्या यही है कि किस प्रकार लाखों करोड़ों विचारों को एक विचार में, संकलित किया जाए। उदाहरण के लिए भारत में आणविक अस्त्र बनाने के विषय में लाखों-करोड़ों विचार हैं। इन विचारों को सिर्फ एक सामूहिक विचार में परिवर्तित करना है। हथियार बनाना या नहीं बनाना।

सामूहिक-निर्णय

प्रजातांत्रिक देश में सार्वजानिक-वस्तु के स्तर का निर्धारण देश के निवासियों के व्यक्तिगत अधिमान के आधार पर होता है। सार्वजनिक और नीजि वस्तु में अंतर यही है। कि निजी वस्तु का उत्पादन तथा उपभोग बाजार यंत्र होता है। जबकि सार्वजनिक वस्तु का उपभोग सभी व्यक्तियों द्वारा समान मात्रा में होता है। इस कारण ऐसी वस्तुओं के व्यक्तिगत अधिमान बाजार में प्रकट नहीं होते। निजी वस्तुओं के मामले में बाजार-नीलामी यंत्र की तरह कार्य करता है। तथा व्यक्ति को अपनी सही अधिमान व्यक्त करने के लिए बाध्य करता है। सार्वजनिक वस्तु के मामले में यह यंत्र कारगर नहीं होता। सार्वजनिक वस्तु के लाभ सभी व्यक्तियों को मिलते हैं। चाहे वो कीमत दें या नहीं। इन वस्तुओं के उपभोक्ता अपने अधिमान स्वेच्छा से प्रकट नहीं करते। सार्वजनिक-वस्तुओं के लिए उपभोक्ता के अधिमान की जानकारी जरूरी है। लेकिन यह रास्ता व्यवहारिक नहीं है। व्यवहार में राजनीतिक-प्रक्रिया को अपनाने की आवश्यकता है ताकिः

1. व्यक्तियों के अधिमान को जाना जा सके। अर्थात् लोग सरकार को बता सके कि किस सामाजिक वस्तु का प्रावधान किया जाए।
2. इसके लिए कर के रूप में वित्त भी प्रदान करे। यह कार्य कर तथा व्यय संबंधी निर्णय पर मतदान द्वारा होता है। क्योंकि व्यक्तियों को इसका पता होता है कि बहुमत से लिया गया निर्णय ही सभी पर लागू होगा। वे वैसे ही समाधान के लिए अपना मत दे जो उनकी इच्छा के अधिक निकट हो। इसका परिणाम यह होगा कि मतदाताओं के समाने बजट-संबंधी ऐसे चयन आयेंगे जिनके साथ उनके खुद का कर योगदान कीमत के रूप में प्रकट होगा। किसी व्यक्ति को कितना कर देना है यह दो बातों पर निर्भर करता है :

   (1) सामाजिक-वस्तु की कुल-लागत जो समाज को वहन करनी है।

   (2) तथा अन्य करदाताओं का कर के रूप के में योगदान। क्योंकि बजट सम्बन्धी निर्णय सभी पर अनिवार्य रूप से लागू होते हैं।

   अतः लोगों को अपना निर्णय प्रकट करना ही पड़ता है। इसी से सामाजिक-वस्तु की मात्रा का निर्धारण होता है। उपरोक्त समस्या को ही Theory of Public Choice कहा जाता है।

मतदान व्यवस्था एवं व्यक्तिगत रुचि

सामाजिक वस्तुओं का लाभ व्यक्तिगत उपभोक्ता को ही मिलता है लेकिन प्रश्न यह होता है कि सामाजिक वस्तु के लिए व्यक्तिगत अधिमान किस प्रकार अभिव्यक्त एवं कार्यान्वित होते हैं। छोटे समूह जैसे - राज्य, पंचायत, नगरपालिका आदि की सेवाओं के विषय में निर्णय सौदेबाजी तथा बातचीत द्वारा तय हो सकते हैं। क्योंकि ऐसे समूह में प्रत्येक व्यक्ति का अंशदान उसके लिए तथा अन्य लोगों के लिए महत्व रखता है।

लेकिन जब निर्णय बड़े-समूह से होता है तो यह व्यवस्था व्यवहारिक नहीं रह जाती है। क्योंकि वहाँ प्रत्येक व्यक्ति का अंशदान अत्यधिक नगन्य होता है। तथा लोगों की संख्या बहुत अधिक रहने के कारण आपसी बातचीत भी संभव नहीं रह जाती है। इस स्थिति में व्यक्तिगत अधिमान को राजनीतिक-प्रक्रिया द्वारा बजट-संबंधी निर्णय मे परिणत करना होता है। इस विधि के द्वारा व्यक्तिगत अधिमान को मतदान record किया जाता है। सर्वप्रथम यह ध्यान देना है कि प्रजातांत्रिक देशों में सार्वजनिक वस्तु के समन्वय में निर्णय चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा लिया जाता हैं यह निर्णय उपभोक्ताओं के अधिमान के अनुरूप लेना होता है। द्वितीय-चुने हुए प्रतिनिधी ही उधमी है। जो लोगों की रुचि एवं Technology को ध्यान में रखते हुए प्रोग्राम सोच निकालते हैं। त तीय बाजार-अर्थव्यवस्था में उद्यमी अधिकतम लाभ के उद्देश्य से प्रेरित होते हैं राजनीतिज्ञ के विषय में यह मान लिया जाता है कि वे फिर से चुने जाने के Chance को अधिकतम करना वाहते हैं। अतः उनका उद्देश्य होता है अधिकतम मत प्राप्त करना।

पैरेटो कार्यकुशलता एवं मतदान

सामाजिक वस्तु की विशेषता है कि इसका उपभोग प्रत्येक व्यक्ति द्वारा समान मात्रा में होता है। किंतु सभी के लिए इसका महत्व एवं बराबर नहीं होता। यह मानकर चले कि किसी भी व्यक्ति के लिए इससे प्राप्त लाभ ऋणात्मक नहीं होते हैं। मान लो कि तीन उपरोक्त A, B, C है तथा सार्वजानिक वस्तु G है। जिसकी उत्पादन-लागत 600 रु. है। इस वस्तु से प्राप्त लाभ इस प्रकार हैं A को शून्य, B को तथा C को 400 रु.। अब इनका G के विषय में क्या फैसला होगा। यह मान ले कि तीनों उपभोक्ता G वस्तु की लागत को समान मात्रा में वहन करेंगे। अतः प्रत्येक को 200 रु. देने होंगे।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति इस स्थिति में है कि वह जान सके कि उसे उस वस्तु की प्राप्ति से लाभ होगा या हानि। B तथा C इस वस्तु के पक्ष में निर्णय देंगे जब कि A इसका विरोध करेगा। यदि निर्णय बहुमत से लिया जाए तो वस्तु के उत्पादन के पक्ष में फैसला किया जाएगा। किंतु यह निर्णय पैरेटो कार्यकुशलता के अनूरूप भी नहीं हो सकता है। क्योंकि जहाँ B तथा C की स्थिति सुधर जाती हैं वहाँ A की स्थिति पहले की तुलना में खराब हो जाती है। किन्तु वे A की क्षति-पूर्ति के बाद भी वह अधिक अच्छी स्थिति में पहुँच जाते हैं तो Kaldor, Hicks के अनुसार बहुमत से लिया गया निर्णय कार्यकुशल समझा जाएगा।

1896 में विक्सेल ने बताया कि ऐसे कर-वितरण व्यवस्था की कल्पना करें जिसमें सभी करदाता सामाजिक वस्तु के पक्ष में मत देते हैं। ऐसा उस समय संभव है। जब A को कुछ भी ना देने को कहा जाए तथा B तथा C को ही देना पड़े। इसे रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।

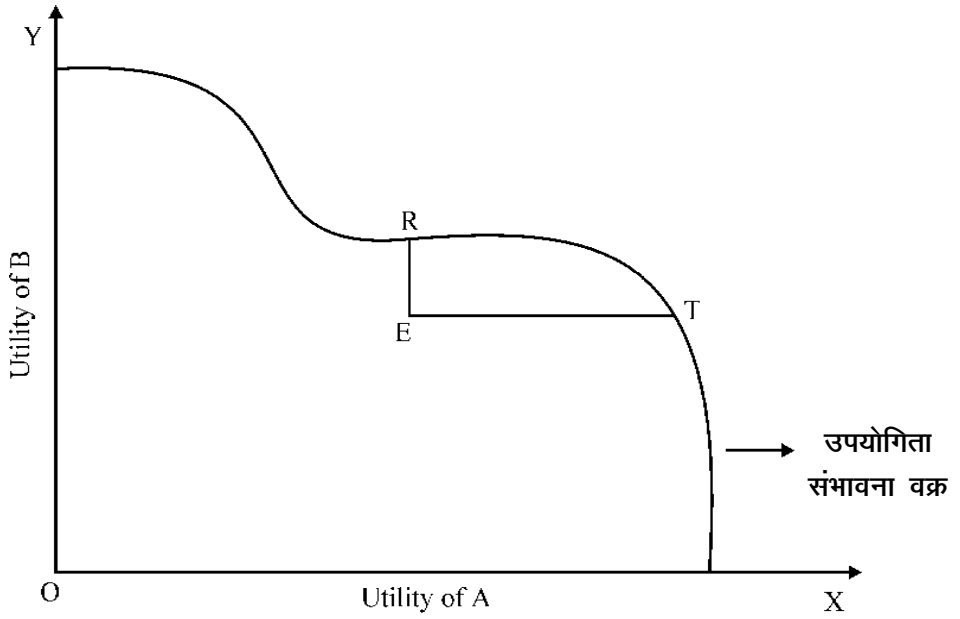

इस चित्र द्वारा स्पष्ट है कि A तथा B दोनों को संतुष्टि E बिंदु पर हो रही है। यदि किसी सर्वसम्मत मतदान की स्थिति में A तथा B दोनों दलों की स्थिति में सुधार होता है। और किसी को नुकसान नहीं होता है। यह इस मतदान व्यवस्था के अंतर्गत E R T क्षेत्र के अंदर ही संभव है। यदि उपभोक्ता E बिंदु पर ही रहता है। तो उसकी उपयोगिता अधिकतम हो

रही है। और यदि इस क्षेत्र में पहुँच जाता है तो उसकी उपयोगिता में कुछ ना कुछ व द्धि होती हैं यही मतदान-प्रक्रिया पैरेटो कार्यकुशलता होती है।

आलोचनाएँ

1. यह निर्णय केवल कुछ मतदाताओं की संख्या पर तो निर्भर करता है। ज्यों-ज्यों ये संख्या बढ़ती जाएगी, त्यों-त्यों कठिनाइयाँ बढ़ती जाएगी।
2. ऐसे कर-वितरण की व्यवस्था की खोज करना जो सभी को मान्य हो इससे फिर सचमुच की बरबादी होती है।
3. यह विधि काफी बढ़ेगी है।
4. इस-विधि को अव्यवहारिक माना गया है। बच्चों कि यह समाज को यथार्थ पूर्ण स्थिति में ही छोड़ देती है। जैसा कि Fig. में E बिंदु पर है।

2. Majority Voting (बहुमत मतदान)

सामुहिक चयन मतदान द्वारा हाता है। ऐसे मतदान में सामान्यतया एक व्यक्ति को एक मत प्राप्त होता है अधिक लाभ प्राप्त करने वाला व्यक्ति किसी विषय के पक्ष में अपना मत तभी देगा यदि ऐसा करने से उनकी आर्थिक-स्थिति पहले की तुलना मे अधिक अच्छी हो जाती है। अतः एक विवेकशील मतदाता ऐसे विषय की लागत की तुलना उससे मिलने वाले लाभ के साथ करता हैं। मान ले सार्वजानिक वस्तु G की उत्पत्ति के परिणाम स्वरूप इस घटित को t के बराबर कर देना पड़ता है। जबकि इस वस्तु से उसे B के बराबर सीमांत-लाभ मिलता है तो प्रत्येक मतदाता का आचरण निम्न होगा।

$ti < MBi \Rightarrow$ मतदान के पक्ष में

$ti > MBi \Rightarrow$ मतदान के विपक्ष में

$ti = MBi \Rightarrow$ तटस्थता की स्थिति।

Here $i \Rightarrow$ मतदान, Mg = Marginal Benefit

तटस्थता कि स्थिति में मतदाता मत का उपयोग नहीं भी कर सकता है। मतदान का परिणाम अशत विभिन्न व्यक्तियों के बीच कर के अंशदान के वितरण पर भी निर्भर करता है। कर भार के वितरण की एक व्यवस्था के अंतर्गत जिस सामाजिक वस्तुओं के पक्ष में मतदान नहीं पढ़ता है वही मत पक्ष में दूसरे प्रकार की वितरण व्यवस्था के अंतर्गत पड़ सकता हैं। राजनीतिक-संतुलन व्यक्तियों के बीच लाभ के वितरण पर भी निर्भर करता है यदि किसी-सार्वजनिक परियोजना के लाभ वितरण की व्यवस्था बदल जाए तो संभव है कि लोग इसके पक्ष में ना रहें। सार्वजानिक क्षेत्र में निर्णय अक्सर बहुमत द्वारा लिया जाता है।

मान ले Group A को बहुमत प्राप्त है। यह दल किसी भी सामाजिक वस्तु के पक्ष में मत देगा जो निम्न चित्र में E के दायीं ओर RST क्षेत्र के अंदर है। क्योंकि इससे सभी की उपयोगिता में व द्धि होगा। जैसे C बिंदु पर कुछ परिणाम असमान एवं असंगत होंगे। क्योंकि इससे बहुमत Group की उपयोगिता में कोई ठोस व द्धि नहीं होती है।

लेकिन अल्पमत Group B की उपयोगिता काफी घट जाती है जैसे N बिंदु पर। M बिंदु पर बहुमत की उपयोगिता मे व द्धि अवश्य होती है। लेकिन अल्प Group की उपयोगिता घट जाती है।

बहुमत-मतदान प्रणाली में कुछ महत्वपूर्ण परिणाम ध्यान देने योग्य है :

1. यह मत व्यवस्था पैरेटो सर्वोत्तम की गारन्टी नहीं देती। (जैसे M, N points पर)
2. यह मत-व्यवस्था बहुमत के अत्याचार को जन्म दे सकती है। ऐसा होना सर्वसम्मत मत-व्यवस्था में संभव नहीं है।

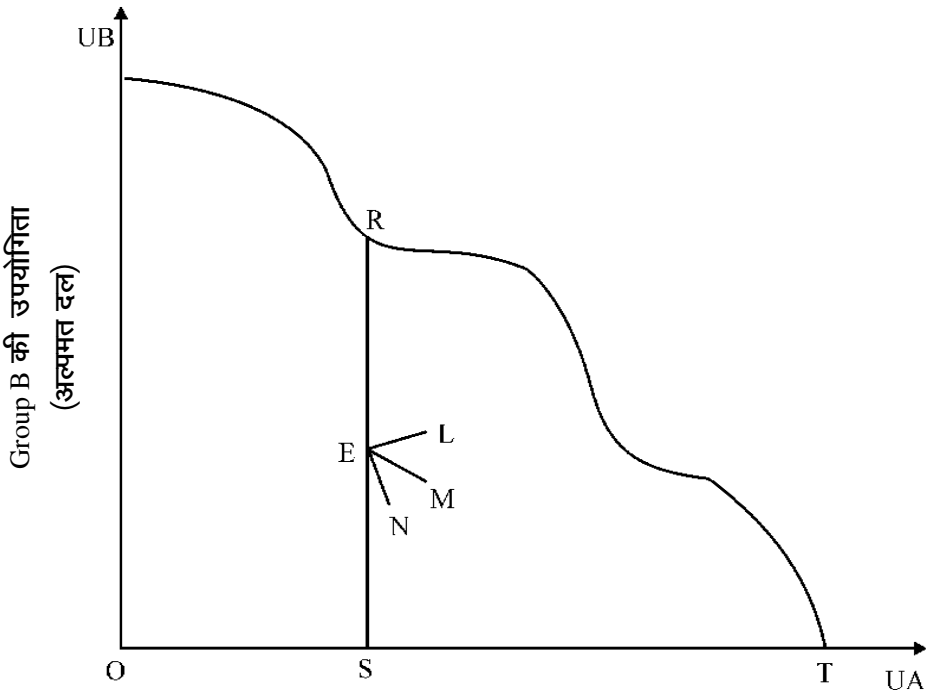

राजनीतिक साम्य के निर्धारक तत्व

किसी सार्वजनिक वस्तु के उत्पादन के पक्ष में लोग अपने मत देंगे या नहीं। तथा इस वस्तु का उत्पादन कितनी मात्रा में होगा। ये सभी निर्णय निम्न बातों पर निर्भर करेंगे।

1. कितने लोग पक्ष में मतदान करते हैं। इसे सामूहिक चयन का नियम कहा जाता है।
2. सार्वजनिक-वस्तु की औसत एवं सीमांत-लागत।
3. सार्वजनिक-वस्तु के लाभ तथा लागत के विषय में मतदाता को उपलब्ध सूचना।
4. मतदाताओं के बीच कर के रूप में लागत का वितरण।
5. मतदाताओं के बीच लाभ का वितरण।
6. मतदाताओं के बीच आज का वितरण तथा व्यक्तिगत भागों को प्रभावित करने वाले अन्य कारक।

किसी एक सार्वजनिक वस्तु के विषय में राजनीतिक-संतुलन वह स्थिति है जहाँ बहुमत द्वारा इसकी एक निश्चित मात्रा का उत्पादन के पक्ष में निर्णय लिया जाता है जबकि इस वस्तु

की उत्पादन लागत मतदाता से उपलब्ध सूचना तथा कर के रूप में अंशदान लाभ तथा आय का कवतरण दिया हुआ है। यदि इनमें से किसी एक में भी परिवर्तन हो जाए तो संतुलन में भी बदलाव आएगा।

बहुमत-व्यवस्था के अंतर्गत मतदान के परिणाम : बोवेन मॉडल

बहुमत द्वारा सार्वजनिक वस्तु के पक्ष में निर्णय लेने के पश्चात अब यह देखा जाए कि इस वस्तु की उत्पत्ति कितनी मात्रा में होगी। तथा उसका निर्धारण बहुमत द्वारा किस प्रकार होता है।

मान ले के मतदाताओं से उनकी यह इच्छा जानना कि सार्वजनिक वस्तु G का उत्पादन कितनी मात्र में हो। इसे निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है।

चुनाव G की उत्पत्ति में सार्वजनिक वस्तु G की मात्रा का निर्धारण

वद्धि मतदाता	X_1	X_2	X_3	X_4	X_5	X_6	X_7
1.	हाँ	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
2.	हाँ	हाँ	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
3.	हाँ	हाँ	हाँ	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
4.	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	नहीं	नहीं	नहीं
5.	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	नहीं	नहीं
6.	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	नहीं
7.	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
	7 पक्ष	6 पक्ष	5 पक्ष	4 पक्ष	3 पक्ष	2 पक्ष	1 पक्ष
	0 विपक्ष	1 विपक्ष	2 विपक्ष	3 विपक्ष	4 विपक्ष	5 विपक्ष	6 विपक्ष
	पारित	पारित	पारित	पारित	पारित नहीं	पारित नहीं	पारित नहीं।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि G वस्तु का उत्पादन X_4 मात्रा से अधिक संभव नहीं है। क्योंकि इससे आगे बहुमत नहीं रह जाता है। यहाँ यह मान लिया गया है। कि सभी मतदाता समान मात्रा में कर का भुगतान करते हैं। सभी मतदाताओं के बराबर कर भाग की स्थिति में बहुमत द्वारा प्राप्त परिणाम में केवल मध्यिका मतदाता ही ऐसा है जो सर्वोत्तम लाभ प्राप्त करता है। अर्थात् वह सार्वजनिक वस्तु की उतनी मात्रा का उपयोग करता है जितना वह चाहता है अतः इसके लिए उसका कर भार (t) सीमांत लाभ MB के बराबर रहता है। अन्य सभी मतदाताओं द्वारा उपभोग उनकी स्वतंत्र इच्छा से कम या अधिक किया जा रहा है।

अध्याय - 10

बजटिंग : बजट की धारणाऐं

(Budgeting : Concepts of Budgets)

बजट का अर्थ

"साधारण शब्दों में, बजट किसी विशेष अवधि के लिए, जो प्रायः एक वर्ष की होती है, वित्त का विवरण होता है। जिसमें राजस्व तथा खर्च दिए गए होते हैं। बजट वित्तीय विवरण के साथ-साथ सरकार की वित्तीय नीति, महत्वाकांक्षाओं तथा विचारों को भी प्रतिबिंबित करता है"।

बजट के अर्थ को देखते हुए कहा जा सकता है कि बजट किसी अवधि के वित्तीय प्रबंध से संबंध रखता है। बजट में बताया जाता है कि सरकारी उपयोग के लिए दुर्लभ-साधनों को किस प्रकार प्राप्त किया जाता है। बजट में केवल किसी वर्ष में सरकार की आय एवं व्यय का व्योरा ही रहता है। यह एक प्रक्रिया का परिणाम है। जिसमें वित्तीय योजना की तैयारी, विधान सभा द्वारा योजना की समीक्षा, परिणामों की मूल्यांकन और उनकी सार्वजनिक रिर्पोटिंग शामिल की जाती है।

जी. जेज के अनुसारः "बजट-संपूर्ण सरकारी प्राप्तियों तथा खर्चों का एक पूर्वानुमान तथा अनुमान है। और कुछ प्राप्तियों के संग्रह करने तथा कुछ खर्चों को करने का एक आदेश या प्राधिकरण है"।

अर्थात् जी. एस. लाल के बजट का अर्थ व्यक्त करते हुए कहा है कि "विशेष रूप से बजट शब्द से हमारा अभिप्राय निम्न प्रलेखों का समूह है जो कि इस प्रकार है" -

1. गत-वर्ष में किए गए व्यय, एकत्रित किए गए राजस्व तथा अन्य वित्तीय मामलों की समीक्षा।
2. आगामी वित्त वर्ष में होने वाले व्ययों का अनुमान करना तथा जिस सीमा तक उन्हें वर्तमान करों की दर पर एकत्रित किया जा सकता है।
3. व्यय को संतुलित करने के लिए करों में परिवर्तन, दूर अथवा नये करों को लगाने के लिए प्रस्ताव।

बजट के गुण

बजट की परिभाषा तब तक स्पष्ट अर्थात पूरी नहीं हो सकती जब तक हम जी. एस. लाल द्वारा स्पष्ट किए हुए बजट के निम्न गुणों की व्याख्या न कर लें –

1. बजट एक देश की योजना अथवा कार्यक्रम होता है। इसे पिछले अनुभवों के आधार पर सुव्यवस्थित ढंग से क्रियान्वयन के लिए बनाया जाता है। यह योजना अथवा कार्यक्रम देश के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक ढाँचे पर आधारित होता है।
2. बजट मद केवल अनुमान होते हैं; वास्तविक नहीं।
3. बजट कार्यक्रम की एक व्यापक योजना होती है। व्यापकता से अभिप्राय है कि सरकार की सभी आवश्यकताओं, आय अथवा व्यय को एकत्रित करके देश की आर्थिक-स्थिति का पूर्ण वर्णन करता है।
4. बजट साधारणतया वार्षिक ही होता हैं। आवश्यकता पढ़ने पर अनुपूरक बजट की व्यवस्था की जाती है।
5. बजट निश्चय ही कार्यपालिका द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। कोई भी गैर-सरकारी बजट को विधानपालिका में प्रस्तुत नहीं कर सकता।
6. बजट केवल प्रारंभिक प्रस्ताव नहीं है बल्कि क्रिया करने की योजना है। कभी-कभार इसमें कुछ संशोधन भी अवश्य कर लिए जाते हैं।

इन गुणों को ध्यान में रखते हुए हम जी. एस. नाल के शब्दों में बजट की परिभाषा निम्न प्रकार से कर सकते हैं। "यह व्यापक योजना अथवा कार्यक्रम होता है, यह क्रियान्वयन के लिए तैयार किया जाता है, इसमें एक निश्चित अवधि के लिए जो प्रायः एक वर्ष दी हाती है, व्यय तथा राजस्व के अनुमान होते हैं, जिन्हें कार्यपालिका द्वारा विधान पालिका के मत के लिए तैयार तथा प्रस्तुत किया जाता है।"

Principles of Budgeting

अनुभव के आधार पर अच्छे बजट के निम्न सिद्धांतों का वर्णन किया गया है :

1. **कार्यपालिका का दायित्वः** कार्यपालिका प्रशासन का कार्य करती है। देश की वित्तीय-स्थिति का पूरा ज्ञान कार्यपालिका को ही संभव हो सकता है। इसलिए बजट-निर्माण का कार्यभार कार्य-पालिका को ही सौंपा गया है। कार्यपालिका इस कार्यभार को निभाने के लिए विशेषज्ञ-निकायों से परामर्श लेती है।

   उदाहरण के लिए भारत में वित्त-विभाग आय तथा व्यय के प्राक्कलन बनाने में कार्यपालिका को परामर्श देते हैं। तथा सहायता करते हैं। इस प्रकार बजट निर्माण के लिए कार्य-पालिका ही उत्तरदायी होती है।
2. **बजट संतुलित होना चाहिएः** इसका अर्थ है कि बजट में आय तथा व्यय की राशि बराबर होनी चाहिए। यदि आय तथा व्यय की राशि बराबर होनी चाहिए। यदि आय, व्यय से अधिक हो तो इसे लाभ का बजट कहा जाता है। और यदि इसके विपरीत हो तो इसे हानि का बजट कहा जाता है।
3. **प्राक्कलन नकद आधार पर तैयार किए जाएः** इसका अर्थ है कि बजट जिस वित्तीय वर्ष के लिए बनाया जाता है उसी की वास्तविक आय तथा व्यय के आधार पर उसे तैयार किया जाना चाहिए जिस आय की प्राप्ति किसी और वर्ष होनी हो उसका व्योरा इस वित्तीय-वर्ष में नहीं होना चाहिए।

4. **बजट वार्षिक आधार पर बनाया जाना चाहिए:** अर्थात् कार्यपालिका केवल एक वर्ष के लिए ही प्राक्कलन प्रस्तुत करे। क्योंकि एक वर्ष का समय वित्तीय कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए उचित माना गया है। क्योंकि लंबी अवधि के लिए तो योजनाएँ बनाई जाती है। बजट नहीं।

5. **बजट व्ययगमन (Lapse) के नियमानुसार होना चहिए:** इससे अभिप्राय है कि एक वर्ष के लिए जितना वित्त स्वीकार किया गया हो उसे उसी वर्ष में खर्च किया जाना चाहिए और जो वित्त खर्च न हो सके उसका व्ययगमन होना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो पुनः अगले वर्ष के लिए प्राक्कलन बनाए जाने चाहिए। और उस वित्त का प्राक्कलनों में उल्लेख किया जाना चाहिए तथा वित्तपलिका द्वारा उसकी पुनः स्वीकृति ली जानी चाहिए।

6. **बजट एकता पर आधारित होना चाहिए:** बजट एकता पर आधारित होना चाहिए क्योंकि बजट से सारे देश की वित्तीय-स्थिति का पता चल जाता है। यदि प्रत्येक विभाग अपना बजट अपने-2 ढंग से बनाये तो किसी विभाग का बजट घाटे का तो किसी का लाभ का बजट होगा। इससे फिर वित्तीय अराजकता फैल जाएगी। और कर लगाने में भी असविधा होगी। इसलिए सामूहिक रूप से तैयार किया गया बजट देश की आर्थिक स्थिति को स्वस्थ रखने के लिए बहुत आवश्यक होता है।

7. **बजट का प्रचार किया जाना चाहिए:** बजट पूरे वर्ष के सार्वजानिक आय-व्यय का ब्योरा देता है अतः इसका जनता में प्रचार किया जाना चाहिए। और जनता बजट के विषय में यदि अपने विचार देना चाहती हो तो विभिन्न माध्यमों द्वारा विधान-जनभावना के अनुकूल बजट में परिवर्तन कर सकती है।

बजट के कार्य

बजट की भूमिका को देखते हुए बजट बहुत से उद्देश्यों की पूर्ति करता है। अर्थिक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करने के लिए, आय तथा व्यय का वर्णन करने के साथ-साथ और भी बहुत से कार्य करता है। इसलिए बजट की भूमिका, उद्देश्यों तथा कार्यों का निम्न प्रकार से वर्णन किया जा सकता है।

1. **उत्तर-दायित्व तथा नियंत्रण के उपकरण के रूप में:** बाजार उत्तरदायित्व तथा नियंत्रण के क्षेत्र में एक शक्तिशाली उपकरण का कार्य करता है। इसके अंतर्गत प्रत्येक विभाग अपने विभाग के प्राक्कलन बनाता है वित्त-विभाग अपने विभाग के प्राक्कलन बनाता है। वित्त-विभाग इन प्राप्त प्राक्कलनों को समेकित करता है। फिर इन्हें विधानपालिका के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

   विधान पालिका बजट के माध्यम से और भी कई प्रकार नियंत्रण करती है। अतः यह बजट पास करते समय यह जाँच कर सकती है कि बजट कार्यक्रमों तथा नीतियों के अनुसार है या नहीं। क्योंकि इसके सदस्यों का यह कर्त्तव्य है कि वे जिन लोगों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। उनके हितों की रक्षा करें।

यह कार्य दो प्रकार से कर सकते हैं।

पहला: वे जनता पर कम से कम करों का बोझ डालें। ये दोनों कार्य बजट के द्वारा आसानी से कर सकते हैं।

विधान-पालिका की विभिन्न समितियाँ भी हैं। जो बजट द्वारा देश के वित्त पर नियंत्रण करती है जैसे लेखा-परीक्षा द्वारा भी वित्त पर नियंत्रण किया जाता है।

2. **प्रबंध के उपकरण के रूप में:** बजट-निर्माण तथा क्रियान्वयन के समय बहुत सी प्रक्रियाओं तथा गतिविधियों को अपनाना पड़ता है। जो सभी प्रबंध का एक सशक्त माध्यम बनती है। जो किस इस प्रकार हैं–

   (1) यह प्रबंध के रूप में विभाग में कार्य करने वाले अधिकारियों तथा कर्मचारियों की संख्या तथा वेतन को निर्धारित करता है।

   (2) कर्मचारियों द्वारा पूरे किए गए जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों तथा उन पर व्यय होने वाले वित्त का उल्लेख करता है।

   (3) इन विभिन्न कार्यक्रमों की अवधि तथा वित्त-वितरण की पद्धति का भी ब्योरा देता है।

   (4) बजट से प्रशासन के उद्देश्य लक्षित होते हैं।

   (5) यह अपव्यय संबंधी द्विगणक दोष को भी कम करता है।

   (6) वित्त का लेखा रखना बजट की एक संबंधित क्रिया है यह लेखा किसी भी संख्या के प्रबंधकों के हाल में एक शक्तिशाली माध्यम है। जिससे वे संस्था का उचित प्रबंध करते हैं।

3. **आर्थिक-विकास के उपकरण के रूप में:** बजट राष्ट्र के विकास में बहुत महत्वूपर्ण भूमिका निभाता है। बजट नियोजन का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके द्वारा सभी विकसित तथा विकासशील देश अपना विकास कर रहे हैं। बजट को बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि यह पंचवर्षीय योजना से मेल खाए तथा पंचवर्षीय उद्देश्यों को पूरा करने में योगदान करे।

   इस प्रकार बजट एक संगठित तथा सुव्यवस्थित आर्थिक-विकास के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। अतः कह सकते है कि आर्थिक-विकास के उपकरण के रूप मे बजट आर्थिक-विकास में सहायता करता है। और देश की राजस्व संबंधी नीतियों को निर्धारित करता है तथा राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को सुद ढ़ बनता है।

अध्याय - 11

खर्च बजट एवं शून्य-आधार बजट में सुधार

(Reforms in Expenditure Budgeting and Zero Based-budgeting)

जिस प्रकार हमने बजट की धारणा में क्रियात्मक वर्गीकरण, संगठनात्मक वर्गीकरण, विषय-संबंधी वर्गीकरण तथा आर्थिक-वर्गीकरण का अध्ययन किया है। उसी प्रकार राष्ट्रीय-अर्थव्यवस्था में बजट के महत्व को देखते हुए यह जरूरी है कि बजट-संबंधी लोक-व्यय एवं राजस्व के आंकड़ों को ऐसे व्यवस्थित ढंग से किया जाए कि उनका समस्त आर्थिक महत्व स्पष्ट हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रारंभिक-बजट की त्रुटियों को देखते हुए प्रोग्राम तथा निष्पादन-वर्गीकरण को बजट की जगह अपनाया जाए।

बजट-नवप्रवर्तन को समझने के लिए यह जरूरी है कि पारम्परिक बजट के दोषों को जान लें।

1. नियंत्रण तथा उत्तरदायित्व की प्रमुखता

इस बजट में राष्ट्रीय आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने वाले प्रोग्रामों तथा प्रोजेक्टों पर सार्वजनिक क्षेत्र में सीमित-साधनों के आबंटन पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। नियंत्रण तथा उत्तरदायित्व पर बल देने के निम्न-परिणाम हुए हैं।

(i) बजट का ढांचा इस प्रकार तैयार किया जाता है कि इससे वेतन, यात्रा, फर्नीचर जैसे व्यय के विषय के संबंध में जानकारी के अभाव में अर्थव्यवस्था पर बजट के प्रभाव का विश्लेषण संभव नहीं है।

(ii) प्रोग्राम-समन्वय जैसे महत्वपूर्ण मामले की भी अवहेलना की जाती है। यह एक ऐसा तत्व है, जो साधनों के उचित आबंटन के लिए हानिकारक समझा जाता है।

(iii) व्यय के मूल्यांकन की उपेक्षा की जाती है।

(iv) पारम्परिक-बजट में परिवर्तनों का विरोध किया जाता है।

(v) प्रोग्राम के निष्पादन की जांच केवल मौखिक रूप में की जाती है। इसलिए व्यय के परिणाम तथा लाभों का निर्धारण कठिन हो जाता है।

(vi) चालू-व्यय-संबंधी निर्णयों के भावी वर्षों में पड़ने वाले प्रभावों के अनुमान लगाने की कोशिश नहीं की जाती है।

2. बजट अपखंडन

बजट, विशेषकर विकासशील देशों में, सार्वजनिक क्षेत्र के न तो सभी व्ययों को शामिल करता है न ही सभी सार्वजनिक-क्रियायों को तथा इसके अंतर्गत वैकल्पिक प्रोग्रामों के बीच चयन के अवसर कम हो जाते हैं।

3. निष्पादन माप का अभाव

पारम्परिक बजट में केवल वित्तीय रूप में ही निष्पादन की माप होती है। भौतिक रूप में शायद ही इसकी माप होती है। ये बजट भौतिक-लक्ष्यों के विषय में चुप रहता है।

4. प्रोग्राम, विश्लेषण की अनुपस्थिति

पारम्परिक-बजट में बजट अनुमानों को कार्य के भौतिक प्रोग्राम के रूप में नहीं दिखाया जाता।

पारम्परिक-बजट के उपरोक्त दोषों की विवेचना करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि इसमें नव-प्रवर्तन की आवश्यकता है। जॉन बेयर का कहना है कि पारम्परिक बजट में नव-प्रवर्तन का निर्माण तीन आधारों पर होना चाहिए।

(i) व्यवहार में बजट सरकार के विकास प्रोग्राम तथा नीति-संबंधी निर्णयों की मूल-अभिव्यक्ति है।

(ii) आर्थिक-योजना की सफलता एक ऐसी बजट व्यवस्था पर निर्भर करती है जो योजना-संबंधी निर्णयों को प्रभावी ढंग से वास्तविकता में बदल दें।

(iii) बजट यंत्र ऐसा संभाव्य अवसर प्रदान करता है जिससे दीर्घकालीन व्यापक योजना की प्रभावकारिता को सीमित करने वाले अवरोधों को हटाया जा सकता है।

परंतु इन परिणामों को पारम्परिक बजट द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसलिए बजट-प्रक्रिया के लिए एक नये द ष्टिकोण की आवश्यकता है और इसी को प्रोग्राम एवं निष्पादन बजट-व्यवस्था को लिया गया।

प्रोग्राम एवं निष्पादन बजट-व्यवस्था (PPBS):

1949 में प्रथम हूवर-आयोग ने अमरीका में निष्पादन बजट शब्द का इस्तेमाल किया। जब इसने यह सिफारिश की कि कार्यों, प्रोग्रामों तथा क्रियाओं पर आधारित बजट पद्धति को अपनाना चाहिए। इस पद्धति में निम्न दो प्रमुख बातें थीं।

1. व्यय के विषय में स्थान पर बजट को कार्यों के आधार पर तैयार करना।
2. क्रियाओं के कुशल-निष्पादन के लिए कार्यों की लागत की माप करना।

PPBS की मूल-धारणा यह है कि बजट में व्यय के विषय के स्थान पर कार्यों, प्रोग्रामों, क्रियाओं तथा परियोजनाओं पर बल देना है। सरकारी बजट-प्रक्रिया में यह प्रबंधकीय द ष्टिकोण को अपनाता है।

1950 के दशक के बीच में द्वितीय हूवर-आयोग ने प्रोग्राम बजेटिंग शब्द का उपयोग किया। इस

नये द ष्टिकोण को योजनाकरण, प्रोग्रामिंग तथा बजैटिंग-व्यवस्था के रूप में अपनाया गया। और इसे अमेरिकी प्रतिरक्षा विभाग ने अपनाया। PPBS का प्रमुख उद्देश्य नीति-निर्धारण को विवेकपूर्ण बनाना है। सरल शब्दों में प्रोग्राम-बजेटिंग दीर्घकालीन उद्देश्यों के प्रकाश में समस्त प्रोग्राम प्रबंध की आवश्यकता पर बल देती है। दूसरी ओर, निष्पादन बजेटिंग का मूल तत्व है किसी वर्ष सम्पादित कार्य की माया तथा इसकी लागत के आधार पर आंतरिक प्रबंध में सुधार।

इन धारणाओं के उपयोग के संबंध में लेखकों में अंतर पाया जाता है। जैसी बर्कहेड का कहना है निष्पादन बजेटिंग की कोई सुनिश्चित परिभाषा नहीं है। तथा अलग-अलग क्षेत्रों में इसका अलग-अलग अर्थ किया गया है।

K.L. Handa ने निष्पादन तथा प्रोग्राम बजेटिंग के अंतर को स्पष्ट करने के लिए निम्न चित्र का उपयोग किया है।

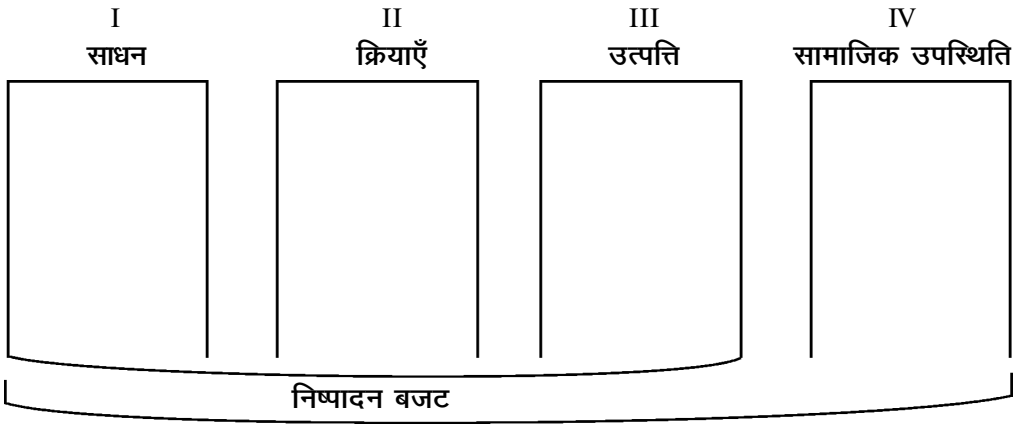

प्रोग्राम बजट

चित्र में यह दिखाया गया है कि वेक्टर-I (साधनों) उपयोग से क्रियाओं का स जन वेक्टर-II में होता है। और इन्हीं क्रियाओं का परिणाम है वेक्टर रूप में प्राप्त उत्पत्ति। साधन-क्रिया-उत्पत्ति क्रम ही निष्पादन बजट का विषय है। प्रोग्राम बजट में इन तीनों के अतिरिक्त एक और तत्व शामिल होता है और वह है सामाजिक स्थिति जो प्रथम तीनों चरणों का अंतिम उद्देश्य है। सामाजिक स्थिति के अंतर्गत आर्थिक विकास, वितरण की समानता, आदि विषय आते हैं। जिन्हें बजट के तथा योजना के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र के बुलेटिन के अनुसार प्रोग्राम वर्गीकरण की प्रमुख विशेषता यह है कि समग्र कार्य को बड़े एवं छोटे एक रूप तथा संगत इकाइयों में विभाजित कर दिया जाता है। ताकि प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर निर्णय-लेने तथा बजट के कार्यान्वयन में सुविधा हो। प्रोग्राम-वर्गीकरण का ढांचा ऐसा होता है जिसमें कार्य, प्रोग्राम तथा परियोजना और क्रियाएँ शामिल होती है। कार्य को प्रोग्रामों में विभाजित किया जाता है। प्रोग्राम को परियोजनाओं में तथा परियोजनाओं को क्रियाओं में विभाजित किया जाता है। ये फिर बजट के निर्माण, प्रबंध तथा विश्लेषण के लिए सुविधाजनक परिचालन इकाइयाँ प्रदान करता है। इस व्यवस्था द्वारा आसानी से कार्यभार के आंकड़े, मानवीय एवं भौतिक-साधनों के इस्तेमाल के Pattern तथा वित्तीय व्यय के मध्य संबंध

स्थापित करता है। जब इन सभी तत्वों के साथ परिचालन को जोड़ा जाता है तब निष्पादन वर्गीकरण प्राप्त होता है। निष्पादन वर्गीकरण आर्थिक कार्यक्षमता के निर्धारण में सहायता पहुंचाता है। और इसी से सार्वजनिक परियोजनाओं के क्रियान्वयन की कार्यक्षमता का पता लगाया जा सकता है।

प्रोग्राम बजट के लिए निष्पादन बजट अनिवार्य है।

(PPBS) निम्न मान्यताओं पर आधारित है

1. निर्णय उस समय अच्छी तरह से लिए जाते हैं जब कि यह जानकारी उपलब्ध रहती है कि क्या प्राप्त करना है।
2. निर्णय उस समय अच्छी तरह से लिए जायेंगे जब यह जानकारी रहती है कि मौजूदा स्थिति में साधनों का उपयोग किस तरह होता है।
3. यदि वर्तमान प्रोग्राम की प्रभावकारिता का मूल्यांकन किया जाए तो निर्णय ठीक एवं सही होंगे।
4. निर्णय तब भी सही होंगे जब उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए वैकल्पिक तरीकों पर विचार किया जाता है तथा उनका विश्लेषण होता है।
5. पहले यह निश्चित कर लेना चाहिए कि विभाग द्वारा भविष्य में क्या किया जाए।
6. निर्णय लेने के संबंध में क्रमबद्ध होना उचित है। योजना किए जाने वाले परिवर्तनों के अनुरूप बजट तथा अधिमानों में परिवर्तन करना भी जरूरी है।

निष्पादन बजट के निम्न पांच-चरण हैं

1. **उद्देश्यः** व्यक्तिगत प्रोग्रामों के उद्देश्यों को साफ-साफ परिमाणात्मक एवं मानवीय रूप में बताना चाहिए। इन्हें सरकार के दीर्घकालीन लक्ष्यों के संदर्भ में देखना चाहिए।
2. **विश्लेषणः** इस पर विचार करना चाहिए कि किस प्रकार दीर्घकालीन व्यूह रचना तथा अल्पकालिक युक्ति के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। सभी संभव वैकल्पिक प्रोग्रामों की पहचान होनी चाहिए। प्रोग्रामों के चयन में वैकल्पिक प्रोग्रामों की लागत-लाभ विश्लेषण करना चाहिए।
3. **बजट-वर्गीकरणः** जिन प्रोग्रामों को क्रियान्वयन के लिए चुना जाए, उनका उचित वर्गीकरण होना चाहिए। ताकि साधनों के आबंटन में सुविधा हो।
4. **संगठनः** विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने में विभिन्न संगठनों की भूमिका निर्धारित रहती है। तथा वित्तीय नियमों एवं लेखा व्यवस्था को प्रोग्राम के प्रभावी क्रियान्वयन के अनुरूप ढालना होता है।
5. **मूल्यांकनः** उद्देश्यों के अनुरूप प्रोग्रामों के क्रियान्वयन एवं पूरा होने पर मूल्यांकन को मोनिटर करने के लिए आवश्यक वित्तीय, भौतिक तथा आर्थिक आंकड़ों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक कदम उठाना पड़ता है।

PPBS में निष्पादन-बजट की कुछ **विशेषताओं** को लिया जाता है। **जो कि इस प्रकार से हैं।**

(i) उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रोग्रामों पर बल दिया जाता है। ना कि साधनों पर।

(ii) अनेक वैकल्पिक प्रोग्रामों के मध्य तुलना की जाती है।

(iii) लंबी दूरी तथा मध्यम दूरी के प्रक्षेपण किए जाते हैं।

(iv) निष्पादन की माप तथा

(v) निष्पादन पर पूरक रिपोर्टिंग।

अनेक देशों में किसी न किसी रूप में PPBS को अपनाया गया है। अमरीकी सरकार द्वारा PPBS को अपनाने से यह क्रांति नहीं आ सकी जिसका वायदा किया गया था। 1965 में इसे लागू करते समय राष्ट्रपति ने दावा किया था कि यह एक अत्यधिक नया तथा बहुत क्रांतिकारी System है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि PPBS के अनुभव निराशाजनक रहे।

इसके निम्न कारण इस प्रकार से हैं:

1. प्रोग्राम को परिभाषित कर उसे राष्ट्रीय उद्देश्यों के साथ जोड़ना कठिन प्रमाणित हुआ है।
2. कानून और व्यवस्था, प्रतिरक्षा, विदेशी संबंध जैसे पारम्परिक कार्यों की उत्पत्ति की माप प्रायः असंभव है।
3. वैकल्पिक तरीकों के विस्त त क्षेत्र पर विचार करना संभव नहीं है।

विफलताओं के बावजूद इस System को लागू करने के प्रयास से विकासशील देशों में निष्पादन माप और लेखा-परीक्षा में सुधार हुआ है। लेकिन फिर हाल ही के वर्षों में योजना और बजट की प्रक्रिया में अनेक विकासशील देशों में ह्रास हुआ है। इस पतन के कई कारण जैसे - आर्थिक ढांचे का अभाव, अपर्याप्त मूल लेखा, असमन्वित निर्णय, बजट पर मुद्रा-स्फीति के प्रभाव का अनुमान नहीं लगाना आदि थे। इस प्रकार इन समस्याओं पर विचार किए बिना सुधार संभव नहीं है। फिर इसके बाद शून्य-आधार बजट को व्यवहार में लाया गया।

शून्य-आधार बजट (ZBB)

यद्यपि शून्य आधार की धारणा काफी पुरानी है। तथापि शब्द नये हैं। शून्य-आधार बजट की मुख्य बात यह है कि बजट का निर्माण करते समय व्यय के मौजूदा स्तर को मानकर नहीं चलना चाहिए। बल्कि इसकी जांच करनी चाहिए। अतः यह देखना होता है कि इस प्रोग्राम को जारी रखना चाहिए या नहीं अर्थात् इसके औचित्य पर नये ढंग से विचार करना चाहिए।

ZBB का संकेत प्रसिद्ध ब्रिटिश लेखक हिल्टन चंग के लेखन में मिलता है। उन्होंने बजट प्रोग्रामों के वार्षिक औचित्य पर बल दिया। पीटर-पायर को ZBB के जनक के नाम से जाना जाता है। दो महत्वपूर्ण तत्वों ने ZBB के कार्यान्वयन की कठिनाइयों को कम कर दिया था। एक था - PPBS को लागू करने में प्राप्त अनुभव दूसरा था - सभी देशों के सरकारी व्यय पर नियंत्रण रखना जरूरी है। ZBB में यह ध्यान दिया जाता है कि प्रत्येक प्रोग्राम के न्यूनतम स्तर को निर्धारित

किया जाए। यह स्तर सामान्यतः शून्य से अधिक, किंतु मौजूदा-स्तर से कम होगा। शून्य-आधार बजट-प्रक्रिया में व्यय के प्रत्येक मद का मूल्यांकन उसके गुण तथा वांछनीयता के आधार पर किया जाए।

(ZBB) की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं :

1. साधनों के आबंटन तथा निष्पादन के विभिन्न स्तरों पर प्रोग्रामों की जांच करना।
2. प्रत्येक एजेन्सी के लिए उद्देश्यों का निर्धारण।
3. प्रत्येक एजेन्सी की क्रियाओं को निर्णय पैकेज में रूपान्तरित करना।
4. निर्णय-पैकेज का मूल्यांकन तथा योग्यतानुसार प्रबंध के प्रत्येक-स्तर को क्रमबद्ध करना। ताकि यह बताया जा सके कि प्रत्येक प्रोग्राम के लिए न्यूनतम स्तर से कितने अधिक की जरूरत है।

शून्य आधार-बजट उस समय अधिक उपयोगी होता है जब इसे छोटे-पैमाने पर लागू किया जाता है। व्यय-संबंधी कुछ प्रोग्रामों में व द्धि या कमी करने तथा इनके मध्य प्राथमिकता निर्धारण करने की धारणा में कुछ गुण अवश्य है।

कायडेन तथा विल्डेवस्की का कहना है कि विकासशील देशों के लिए ''लगातार बजेटिंग'' की धारणा उपयुक्त है। इन देशों को बड़े पैमाने पर अनिश्चितता का सामना करना पड़ता है। वार्षिक बजटों में विश्वसनीय भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इसलिए वार्षिक बजट-अभ्यास को अधिक महत्व नहीं देना चाहिए। इसके विपरीत, विभागों को यह अनुमति होनी चाहिए कि वे वर्ष में किसी समय अधिकृत व्यय में व द्धि के लिए अनुरोध कर सकते हैं। वित्त-मंत्रालयों को ऐसे अनुरोधों का मूल्यांकन करना चाहिए। ऐसे मूल्यांकन के आधार पर व्यय में व द्धि या कटौती का प्रस्ताव किया जा सकता है। और ऐसा करने से प्रत्येक प्रोग्राम के लिए बजट की अवधि छोटी हो जाएगी।

ZBB तथा निष्पादन बजेटिंग एवं PPBS के मध्य Common विशेषताएँ हैं। किंतु, इसके अपने भी कुछ गुण हैं। जिन पर बल देना चाहिए। ZBB बजट के आधार पर इस आधार में व द्धि पर बराबर जोर देता है। इस बजट प्रक्रिया से साधनों की बदलती हुई स्थिति के साथ समायोजना करना संभव है। लेकिन कुछ आलोचकों का कहना है कि ZBB संस्थागत व द्धि का ही एक रूप है। इसका कारण यह है कि बजट में व द्धि नहीं करने पर जोर देने की वजह से सरकारी विभाग-वित्तीय सुरक्षा की कोशिश कर सकते हैं। साथ ही यह भी ध्यान में रखना है कि हस्तांतरण भुगतान को रोकने में ZBB की कोई देन नहीं हो सकती। इसलिए पारस्परिक बजेटिंग के दोषों को समाप्त करने के लिए यह कारगर नहीं है।

भारत में शून्य-आधार बजट

भारत के आर्थिक सर्वेक्षण में कहा गया कि सरकार के सिद्धांत रूप में स्वीकार कर लिया है कि केंद्रीय सरकार के विभाग शून्य आधार बजट को अपनायें। इसके लिए निम्न कार्य जरूरी हैं।

(i) उद्देश्यों की पहचान।

(ii) एक तरह के कार्यों को करने के लिए विभिन्न विकल्पों की जांच।

(iii) लागत-लाभ-विश्लेषण।

(iv) उद्देश्यों एवं क्रियाओं की प्राथमिकता निर्धारित करना।

(v) फालतू क्रियाओं की पहचान एवं त्याग।

(vi) निर्णय-संबंधी पैकेज का डिजाइन तैयार करना तथा क्रमबद्ध करना।

यह प्रस्ताव किया गया है कि विभिन्न विभागों में शून्य-आधार बजट को कई चरणों में अपनाया जाएगा। इस बजट पद्धति को अपनाने का मुख्य उद्देश्य था लोक-व्यय को नियंत्रित करना। शून्य आधार बजट के पूरक के रूप में वचनबद्धता बजट व्यवस्था को विकसित करने की कोशिश हुई है। इसका उद्देश्य यह है कि जिन परियोजनाओं पर कार्य प्रारंभ हो गया है उन्हें Fund के अभाव में बंद नहीं करना है। भारत सरकार के वित्त-मंत्रालय के वार्षिक-प्रतिवेदन में बताया गया है कि शून्य-आधार बजट तकनीक अपना कर सभी मंत्रालयों/विभागों को अपनी क्रियाओं पर पुनर्विचार करना है। तथा प्राथमिकता निर्धारित करनी है। इसे चरणों में किया जा रहा है।

केंद्रीय बजट 2001-02 में, लोक व्यय की गुणवत्ता में सुधार के लिए, इस बात पर बल दिया गया है कि सभी मौजूदा कार्यक्रम पर शून्य आधारित बजट व्यवस्था लागू होगी तथा केवल उन्हीं कार्यक्रमों को रहने दिया जाएगा जो स्पष्टतः कार्यक्रम तथा अनिवार्य माने जाएंगे।

अध्याय - 12

भारत में बजट बनाने की प्रक्रिया

(Budget-Making Process in India)

बजट संबंधित वर्ष के आय-व्यय के विवरण के अतिरिक्त एक राजनैतिक दस्तावेज भी होता है, जो कि सरकार की नीतियों, योजनाओं, प्रबंधकीय-क्रियाओं, सामाजिक विचारधारा तथा देश की अर्थव्यवस्था का चित्रण करता है।

भारत में बजट-व्यवस्था का प्रारंभ सन् 1860 ई. में हुआ था। जब वायसरॉय की परिषद् के पहले वित्त-सदस्य सर-जेम्स बिलसन ने पहला बजट प्रस्तुत किया था। आधुनिक भारत में बजट-निर्माण एक वैधानिक आवश्यकता के रूप में संविधान के बहुत से अनुच्छेदों तथा उनके अंतर्गत बनाई गई कार्य-संचालक नियमावलियों के अनुसार होता है। इन सबका उल्लेख भारतीय संविधान के अनुच्छेद 102 से 117, 202 से 206 तथा 266 व 267 में मिलता है। राष्ट्रपति बजट को संसद में प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी होता है। केंद्रीय-बजट को दो भागों में प्रस्तुत किया गया है। 1. सामान्य-बजट 2. रेलवे-बजट।

बजट की तैयारी

भारत में बजट-निर्माण का उत्तरदायित्व वित्त-मंत्रालय का होता है। वित्तमंत्री राष्ट्रीय कोष का संरक्षक तथा देश की वित्तीय नीति का कर्णधार माना जाता है। राष्ट्रीय वित्त का उपयोग समझदारी तथा कुशलता से करना उसका कर्त्तव्य है। प्रत्येक आगामी वित्तीय वर्ष भारत में 1 April को आरंभ होता है। तथा 31 March को समाप्त होता है। भारत में बजट-अनुमानों की तैयार में वित्त-मंत्रालय, प्रशासकीय मंत्रालय, योजना-आयोग तथा लेखा-नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भारत में बजट-निर्माण प्रक्रिया की निम्न अवस्थाएँ हैं

1. अनुमानों की तैयारी

बजट-अनुमानों की तैयार का काम आगामी वित्तीय वर्ष के आरंभ होने के कुछ महीने पहले जुलाई-अगस्त के महीने में शुरू होता है। अनुमानों की तैयारी निश्चित रूप-रेखा फार्म या प्रपत्र वितरण-अधिकारियों अथवा स्थानीय कार्यालयों के अध्यक्ष के पास भेजते हैं। जो प्रारंभिक प्राक्कलन तैयार करते हैं।

प्रत्येक प्रपत्र के निम्न स्तब्ध होते हैं।

(i) पिछले वर्ष के यथार्थ अंक।

(ii) चालू वर्ष के लिए स्वीकृत अनुमान।

(iii) चालू वर्ष के लिए संशोधित अनमान।

(iv) आगामी वर्ष के बजट प्राक्कलन।

(v) घटी-बढ़ी का विस्तार।

प्राक्कलन दो भागों में तैयार किए जाते हैं। पहले भाग में राजस्व तथा स्थाई प्रभारों (Charges) का उल्लेख होता है। दूसरे भाग को दो प्रवर्गों में विभाजित किया जाता है। पहले प्रवर्ग में वे विषय होते हैं जो प्रतिवर्ष निरंतर चलते रहते हैं। दूसरे प्रवर्ग में पूर्णतः नवीन विषय होते हैं। ये प्राक्कलन अब फिर विभाग के अध्यक्ष के पास भेज दिए जाते हैं।

2. विभागों द्वारा छानबीन

विभागों के अध्यक्ष इन प्राक्कलनों की समीक्षा करते हैं। प्रत्येक-विभाग के वित्तीय सलाहकार इस छानबीन में उनकी सहायता करते हैं। आवश्यकतानुसार इनमें संसोधन करते हैं। तथा पूरे विभाग के लिए प्राक्कलनों का समेकलन करते हैं। विभिन्न विभागों से प्राप्त अनुमानों को संबंधित प्रशासकीय मंत्रालयों को भेजा जाता है। यहाँ फिर उस मंत्रालय की सामान्त नीति के संदर्भ में निरीक्षण किया जाता है। अब इन अनुमानों को बजट में रखने के लिए प्रशासकीय स्वीकृति मिल जाती है। इसके पश्चात् अनमानों की एक पत्रिका महालेखाकार को भी भेज जाती है।

3. वित्त-मंत्रालय द्वारा कांट-छांट

वित्त मंत्रालय का बजट-सम्भाग विभागाध्यक्षों द्वारा प्रस्तुत प्राक्कलनों की सूक्ष्मता से समीक्षा करते हैं। परंतु वित्त-मंत्रालय को मुख्यतयः मितव्ययता की द ष्टि से अनुमानों का निरीक्षण करता है। वित्त-विभाग सामान्यतः नये व्ययों के संबंध में निम्न प्रश्न पूछता है।

— क्या प्रस्तावित व्यय वास्तव में आवश्यक है।

— यदि आवश्यक है तो अब तक इसके बिना कैसे काम चलता था?

— अब इसकी क्या आवश्यकता हुई है?

— इसमें कितना व्यय होगा और धन-राशि कहाँ से प्राप्त होगी?

— इस व्यय के परिणाम स्वरूप किसको धन की कमी अनुभव होगी?

— क्या नवीन विकास इसको आवश्यक बनाते हैं?

किसी भी विभाग के बढ़े हुए अथवा नये व्यय-संबंधी प्रस्ताव वित्त-मंत्रालय की सहमति के बिना बजट में शामिल नहीं किए जा सकते। वास्तव में वित्त-मंत्रालय व्ययों के औचित्य की समीक्षा करता है और प्रत्येक मंत्रालय अथवा विभाग के लिए एक राशि निश्चित करता है। नई योजनाओं को बजट में शामिल करने के लिए वित्त-मंत्रालय ने 10 August, 1956 को व्यय-वित्त समिति का गठन किया व्यय सचिव इस समिति का अध्यक्ष होता

है। व्यय वित्त समिति वित्त मंत्रालय के 2 करोड़ से लेकर 10 करोड़ तक के व्यय के प्रस्तावों के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने का सुअवसर प्रदान करती है। इस विचार-विमर्श के बाद ही इन परियोजनाओं को औपचारिक स्वीकृति दी जाती है।

वित्त विभाग निर्माण में बहुत से महत्वपूर्ण निर्णय लेता है। सबसे पहले बजट के आकार को निर्धारित करना होता है। अर्थात् बजट में कुल कितनी आय तथा व्यय का निर्धारण हो, तय किया जाता है। यह निर्णय भी देश की वर्तमान अर्थव्यवस्था को देखकर किया जाता है। दूसरे-निर्णय स्रोतों को विभिन्न उद्देश्यों के लिए सही आबंटन से संबंधित है। यह आबंटन भी देश की स्वीकृत आर्थिक-नीति के अनुसार ही किया जाता है। ऋण की अदायगी, ब्याज की अदायगी, सुरक्षा, वेतन, खाद्य-सहायताएँ, निर्यात-सहायताएँ आदि कुछ ऐसे व्यय हैं जिनमें परिवर्तन की गुंजाइश कम ही होती है। कुछ ऐसी चालू योजनाएँ होती हैं जिन्हें बंद नहीं किया जा सकता। बजट की इन राशियों पर खर्च करने के लिए सरकार वचनबद्ध होती है। यह वचनबद्ध व्यय एक वर्ष के बजट का लगभग 75 फीसदी भाग होता है। अतः वित्त विभाग केवल 25% भाग जो कि नए खर्चे से संबंधित होता है, इस पर ही अपना विवेक प्रयोग में ला सकता है।

4. महालेखा पाल केंद्रीय राजस्व द्वारा छानबीन

विभागीय प्राक्कलनों की एक प्रति महालेखापाल को भेज जाती है। महालेखापाल हिसाब-किताब की द ष्टि से जांच करता है कि केवल वही व्यय प्राक्कलन में शामिल किए गए हैं जो स्वीकृत हैं। कहीं कोई अस्वीकृत व्यय इनमें शामिल तो नहीं किए गए हैं। यह विभिन्न मदों के सही लेखा-वर्गीकरण की भी जांच करता है। इसके अलावा महालेखापाल के पास पेंशन, ऋण या अन्य इसी प्रकार की सत्ता से संबंधित सरकारी प्राक्कलन करने में एक अच्छी स्थिति है। क्योंकि इस संबंध में उसके पास सभी सूचनाएँ होती हैं। यदि महालेखापाल परिवर्तन का सुझाव दें तो इसे स्वीकार करने से पहले संबंधित प्रशासकीय मंत्रालय/विभाग की राय ली जाती है। तब वह अपनी टिप्पणियों वित्त-मंत्रालय को भेजता है। और इन टिप्पणियों को स्वीकार कर लिया जाता है। क्योंकि सरकार इन प्रभारों का उत्तरदायित्व पहले ही स्वीकार कर चुकी होती है।

5. राजस्व का प्राक्कलन

वित्त-मंत्रालय राजस्व के प्राक्कलन के लिए भी उत्तरदायित्व होता है। इस कार्य को प्रत्यक्ष करों के केंद्रीय-बोर्ड, अप्रत्यक्ष करों के केंद्रीय-बोर्ड, आयकर तथा केंद्रीय आबकारी एवं शुल्क-विभागों की सहायता से किया जाता है। वर्तमान करों की दर के अनुसार पूर्वानुमान लगाए जाते हैं। करों की दरों में कमी अथवा बढ़ोत्तरी की जाती है। नये-कर लगाए जाते हैं। पुराने कर समाप्त किए जाते हैं। इन परिवर्तनों के प्रस्ताव एक विधेयक के रूप में संसद के सामने प्रस्तुत करने पड़ते हैं। जब तक इन्हें संसद के सामने पेश नहीं किया जाता, इन्हें गुप्त रखना पड़ता है। ताकि राजस्व पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। इस तरह बजट-निर्माण की पूरी तैयारी की जाती है। इसके बाद वित्तमंत्री द्वारा संसद में प्रस्तुत किया जाता है।

रक्षा-बजट का निर्माण

रक्षा-मंत्रालय का वित्त खंड, रक्षा-संबंधी वित्त पर नियंत्रक रखता है। वित्त-खंड की बहुत सी शाखाएँ होती हैं। हर शाखा प्रधान स्टॉफ अधिकारी के अधीन होती है। ये शाखाएँ अनुमान तैयार करती है। जिन्हें रक्षा-मंत्रालय को भेजा जाता है। रक्षा-मंत्रालय इनकी छानबीन करता है। तब इन अनुमानों को वित्तीय सलाहकार तथा उसके बाद सचिव के पास भेजा जाता है। इस स्तर पर भी नीति-संबंधी निर्णय लिए जाते हैं। इसके बाद बजट कैबिनेट की रक्षा-समिति के पास स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। इस स्वीकृति के बाद इन अनुमानों को वित्त-मंत्रालय के पास अपने अनुमानों में सम्मिलित करने के लिए भेज दिया जाता है।

रेलवे-बजट का निर्माण

रेलवे भारत सरकार के विभागीय व्यापारिक उद्योग के रूप में कार्य करता है। इसलिए बजट-निर्माण में भी ये भिन्न पद्धति को अपनाता है।

रेलवे-बजट के व्यय को पाँच भागों में बांटा जा सकता है। **पहले भाग में -** प्रशासकीय अधिकारियों, लेखा भंडार आदि पर व्यय की जाने वाली राशि, **दूसरे भाग में -** मरम्मत तथा भरण-पोषण, **तीसरे भाग में -** परिचालन व्यय, जिनमें परिचालन से संबंधित कर्मचारियों, ईंधन, उपभोग योग्य भंडार आदि की कीमत शामिल होती है। **चौथे भाग में -** सेवा-निव त्त के लाभ, चिकित्सा सहायता, स्टॉफ कोष में अंशदान आदि शामिल है। **पाँचवें भाग में -** छोटे-छोटे कार्य होते हैं। जिनका खर्च राजस्व से निकाला जाता है। रेल-विभाग के सभी मंडल अपने-अपने अनुमान बनाते हैं। इन अनुमानों को रेलवे-बोर्ड को भेजा जाता है। रेलवे बोर्ड इन अनुमानों को रेलवे-बजट में समेकित करता है।

Criticism

कुछ विद्वानों ने भारत में बजट-निर्माण के बारे में अपनी प्रतिक्रिया दी है। इनमें अमरीकी विद्वान पॉल. एच. एपलबी ने भारत में बजट बनाने की पद्धति पर अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार की है -

(i) **वर्तमान प्रणाली के अधीन पूरे वर्ष की विभिन्न परियोजनाएँ तथा योजनाएँ:** वित्त-मंत्रालय के सामने प्रस्तुत की जाती हैं। इनमें से कुछ तो शीघ्र ही तय करने तथा निधियों के बंटवारे संबंधी होती हैं। और कुछ बाद के बजटों के बंधक के रूप में होती हैं। ऐसी योजनाएँ प्रायः नीति संबंधी विचारों से अधिक नहीं होती हैं। इसलिए इनकी आलोचनाएँ की गई हैं और कहा गया है कि उनके द्वारा ऐसे प्रशासकीय तथा व्यय संबंधी परिवर्तन तो कभी नहीं किए जा सकते जिन पर गंभीरता से विचार किया जा सके। इनका मुख्य दोष विलंब तथा भ्रम संबंधी होना है। इसके लिए वित्त-मंत्रालय को ही दोषी ठहराया जाता है।

(ii) जैसे-जैसे बजट बनाने का समय निकट आता है, इन सभी योजनाओं की जांच की जाती है। तथा इनमें से कुछ को चुन लिया जाता है। जो योजनाएँ वास्तव में बजट में शामिल नहीं की जाती हैं। उन पर विचार नहीं किया जाता। लेकिन किसी आगामी वर्ष में या

वर्ष के भीतर किसी भी समय उन पर विचार किया जा सकता है। ऐसा करने पर इसकी आलोचना की गई है कि भले ही उस पर व्यय के प्रारंभिक सामान्य अनुमान या योजना के महत्वपूर्ण तत्व पूर्णतः अनुपयोगी हो गए हों। ऐसी योजना के अनुपयोगी होने के कारण यह कम व्यय वाले अनुमानों तथा घटिया बजट रचना का एक नमूना उपस्थित करती है।

(iii) वित्त-विभाग द्वारा एक मुश्त कटौतियों (Lum-Sum Cuts) की पद्धति ब्रिटिशकाल से चली आ रही है। वित्त-विभाग विभिन्न विभागों की बजट में कांट-छांट करते समय एक-मुश्त कटौती कर देता है। लेकिन इसके ऐसा करने में तर्क दिया गया है कि इस कटौती के लिए वित्त-विभाग कोई तक-संगत योजना अथवा प्रबंधकीय तकनीकों को नहीं अपनाता। और ऐसा न करने से वित्तीय छानबीन में वैज्ञानिक मापदंडों तथा स्तरों की कमी के कारण प्रशासनिक विभाग अधिक से अधिक धन लेने के लिए तरह-तरह के दांव-पेचों का सहारा लेते हैं।

(iv) अशोक-चंदा ने कहा है कि जब योजनाएँ परिपक्व हो जाएँ तथा क्रियान्वयन के लिए तैयार हो जाएँ, तब अनुपूरक मांगें प्रस्तुत करनी चाहिए और इनको पूरा करने के लिए धन भी अनुपूरक मांगों द्वारा सोच-समझकर मांगा जाना चाहिए।

लेकिन कुछ विद्वान अनुपूरक मांगों का विरोध करते हैं। इनका कहना है कि अनुपूरक मांगों से देश की आर्थिक-स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अध्याय - 13

वैगनर का सिद्धान्त

(Wagner's Law of Increasing State Activities)

सार्वजनिक क्षेत्र के विकास से सम्बन्धित विभिन्न परिकल्पनाओं में वैगनर द्वारा विकसित परिकल्पना का विशेष महत्व है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी के पूर्वाध में पश्चिमी दुनिया के अधिकतर राष्ट्रों का एक यह अनुभव रहा है कि उनके सार्वजनिक क्षेत्रों का निरन्तर विकास होता रहा है। यह विकास केवल निरपेक्ष अर्थ (Absolute Sense) में ही नहीं हुआ, जो कि साधारण तौर पर एक बढ़ती हुई जनसंख्या, उत्पादन एवं आर्थिक कार्यकलापों से अपेक्षित है, वरन् सापेक्ष अर्थ (Relative Sense) में व द्धि हुई, वही कुल साधनों का अधिक भाग सरकारी हस्तक्षेप द्वारा आबंटित किया जाता है। इस प्रव ति को सवैधानिक रूप से व्यक्त करने का एवं इस बदलती हुई दिशा को स्पष्ट करने का प्रयास विभिन्न विद्वानों ने किया है, जिनमें प्रमुख रूप से वैगनर तथा पिकाकं-वजिमैन हैं।

सार्वजनिक व्यय के निरन्तर बढ़ने के सन्दर्भ में अडोलाभ वगैनर (1835-1917) जो एक जर्मन अर्थशास्त्री था, ने अपनी पुस्तक 'Finanwissenechaft' में सरकार के बढ़ते हुए कार्यों से सम्बन्धित सिद्धान्त दिया है जो मुख्यतः जर्मनी के ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। वैगनर ने ज्यादातर आँकड़े अपने देश जर्मनी के सरकारी कार्यों से लिए हैं।

According to Wagner, "there are inherent tendencies for the activities of different layers of a Govt. (Such as central and state Govts.) to increase both intensively and extensively.

''सरकार के कार्य विभिन्न स्तरों पर (अर्थात् केन्द्रीय और राज्य स्तर पर) न केवल मात्रात्मक बढ़ते जा रहे हैं अपितु इसके कार्यों की गहनता में भी व द्धि होने की प्रव ति पाई जाती है।''

वैगनर का विश्वास था कि अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास और सरकारी कार्यों के बीच कारण एवं परिणात्मक (Cause and Effect) सम्बन्ध है अर्थात् जितनी तेजी से किसी देश का आर्थिक विकास होगा उतनी ही तेजी से उस देश के सरकारी कार्यों और सार्वजनिक व्यय में व द्धि होगी। आर्थिक विकास के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र का विकास भी होता है। F.S. Nitti ने भी वैगनर के इस नियम का समर्थन किया है उसका कहना है कि यह नियम न केवल जर्मनी में लागू होता है अपितु सभी देशों में लागू होता है, चाहे उस देश में संघीय सरकार हो या एकात्मक सरकार हो, औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं के सार्वजनिक क्षेत्र का विकास एक स्वाभाविक विशिष्ट

गुण है। प्रो. वैगनर ने अपने अनुभव के आधार पर इस परिकल्पना का विकास किया है, यह परिकल्पना सिद्ध करती है कि औद्योगिक राष्ट्रों में जैसे-जैसे प्रतिव्यक्ति शुद्ध आय एवं उत्पादन बढ़ता है, वैसे-वैसे इन राष्ट्रों के सार्वजनिक क्षेत्र में आवश्यक रूप से कुल आर्थिक प्रक्रिया की तुलना में व द्धि होती है, इसे निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता हैः

$$\frac{RPCOPG_{to}}{RPCI_{to}} < \frac{RPCOPG_{t_1}}{RPCI_{t1}}$$

Where : RPCOPG = Real Per Capita Output of Public Goods.

RPCI = Real Per Capita Income.

to ⇒ time period Zero

t1 ⇒ time period one.

वैगनर का विश्वास था कि औद्योगिक देशों के सार्वजनिक क्षेत्र में विकास का प्रारम्भिक कारण सामाजिक उन्नति है। इससे सरकार के कार्यों में व द्धि होती है। जिसके परिणामस्वरूप सरकार की आर्थिक प्रक्रिया में व द्धि होती जाती है निश्चित रूप से यह परिकल्पना लम्बी अवधि से सम्बन्धित है।

प्रो. वैगनर ने सार्वजनिक व्यय में व द्धि के निम्न कारण बताए हैंः

1. सरकार के परम्परावादी कार्यों में व द्धि

परम्परावादी अर्थशास्त्री ये मानते थे कि सरकार का कार्य केवल विदेशी सुरक्षा प्रदान करना व प्रशासन तथा शान्ति बनाए रखना है। अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास के साथ-साथ प्रशासनिक कार्यों में व द्धि होती है तथा उनमें विभिन्नता भी आती है तथा अधिक कुशलता के कारण सामाजिक व्यय तथा प्रशासन का व्यय निरन्तर बढ़ता जाता है।

2. कार्यों की गहनता तथा संघनता में व द्धि

समाज के अधिक जागरूक होने के कारण जनता सरकार से अधिक कार्यों की अपेक्षा करने लगती है जिससे विभिन्न कल्याणकारी कार्यों में व द्धि होती है। समय के साथ-साथ समानता का विकास होता है तथा धन और आय का समान वितरण होना शुरू हो जाता है जिससे सरकार का कार्यक्षेत्र बढ़ जाता है।

3. सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश में व द्धि

वैगनर के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र की वस्तुओं का क्षेत्र बढ़ता जाता है अर्थात् उन वस्तुओं व सेवाओं की मांग में व द्धि होती है जिनका उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र में किया जाता है जैसे - Social Overhead Capital परिवहन, नहरें, पुल, स्वास्थ्य सेवाएं, मुद्रा नीति, शिक्षा इत्यादि इसलिए सरकार को अपने देश के आर्थिक विकास के लिए अधिक मात्रा में निवेश करने की आवश्यकता बढ़ती जाती है और इस कारण सार्वजनिक व्यय बढ़ता जाता है।

वैगनर ने अपनी परिकल्पना से सम्बन्धित कुछ ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत किए हैं। वैगनर

यह नहीं मानता कि सरकार सार्वजनिक कार्यों तथा व्यय में व द्धि किसी दबाव में करती है, उसके अनुसार सरकारी क्षेत्र में इसलिए व द्धि होती है कि आधुनिक प्रगतिशील सरकारें अर्थव्यवस्था के सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार में अधिक रुचि रखते हैं वो सार्वजनिक कल्याण में व द्धि करना चाहते हैं। संस्कारों को इस प्रकार की प्रव ति दीर्घकालीन (Secular) है क्योंकि अल्पकाल में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं परन्तु दीर्घकाल में वित्तीय कठिनाइयाँ दूर की जा सकती हैं।

Graphic Presentation of Wagner's Hypothesis

वैगनर के बढ़ती सरकारी कार्यों की व्याख्या निम्न रेखाचित्र द्वारा भी दर्शायी गई है।

Wagner's Hypothesis: The relative expansion of public sector economic activity over time.

रेखाचित्र-1 में Y-अक्षीस पर 'सार्वजनिक क्षेत्र में प्रति व्यक्ति शुद्ध उत्पादन' (PG) तथा X-अक्षीस पर 'प्रति व्यक्ति शुद्ध आय' (Y) मापी गई है। तीसरा चर समयावधि है जो ग्राफ में निहित है क्योंकि यह मानकर चल रहे हैं सार्वजनिक क्षेत्र में शुद्ध उत्पादन एवं अर्थव्यवस्था में प्रति व्यक्ति शुद्ध आय में संव द्धि एक लम्बी अवधि में ऐतिहासिक आधार पर होती है।

PG_1 रेखा उन हालातों को प्रदर्शित करती है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र एक लम्बे समय के दौरान समाज के कुल आर्थिक उत्पादन के निश्चित भाग (Constant Proportions) को बनाए रखता है अर्थात् समाज के आर्थिक विकास के साथ-साथ जैसे-जैसे प्रति व्यक्ति शुद्ध आय (Y) में व द्धि होती है, सार्वजनिक क्षेत्र में प्रति व्यक्ति शुद्ध उत्पादन (PG) कुल आर्थिक प्रक्रियाओं की तुलना में उसी अनुपात में रहता है अतः -

Figure - 1

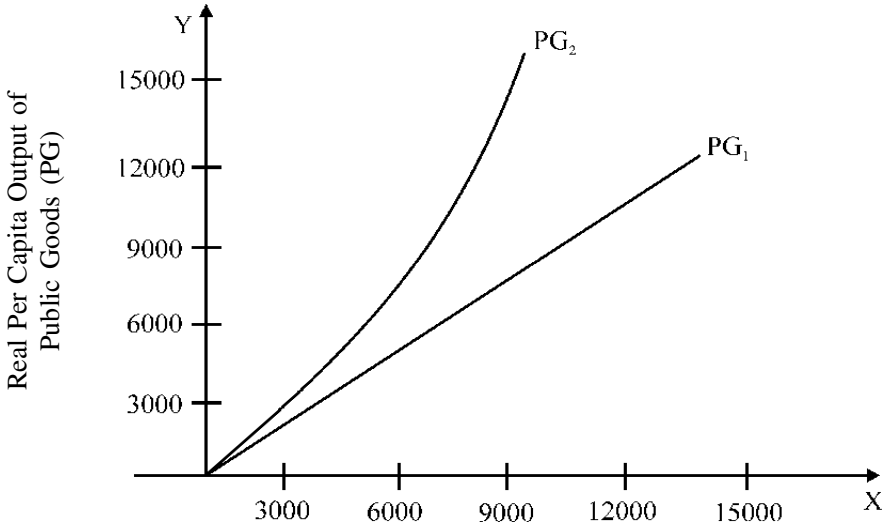

$$\frac{PG_o}{Y_o} = \frac{PG_1}{Y_1}$$

0 तथा 1 समयावधि को दर्शाते हैं।

स्थिर-अनुपात रेखा PG_1 को वैगनर परिकल्पना की प्रस्तुति रेखाचित्र में आधार मानकर PG_2 रेखा प्रदर्शित की गई है। PG_2 रेखा से स्पष्ट है कि समय के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र में शुद्ध प्रति व्यक्ति उत्पादन (PG_1) निरन्तर बढ़ रहा है। PG_2 रेखा के ढलान से स्पष्ट है अर्थात् -

$$\frac{PG_1}{Y_1} > \frac{PG_0}{Y_0}$$

अन्य शब्दों में, सार्वजनिक वस्तुओं पर खर्च की आय की लोच (Ey) लोचशील (Elastic) है।

वैगनर के अनुसार संसार के लगभग सभी विकसित देशों में सार्वजनिक क्षेत्र में साधनों की उपलब्धता बढ़ती जाती है जिसे निम्न रेखाचित्र-2 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

Figure - 2

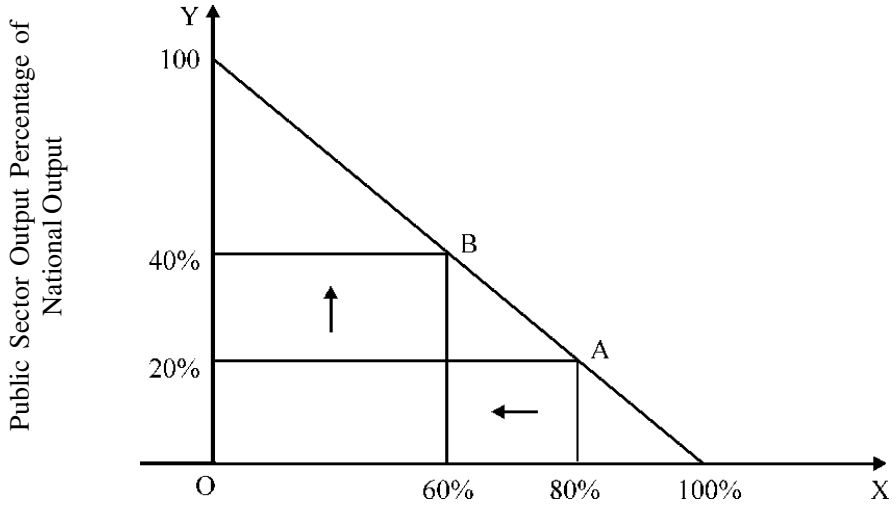

समयानुसार सामाजिक सन्तुलन A बिन्दु से B बिन्दु पर जा सकता है जो कि विकसित राष्ट्रों की प्रव ति पाई जाती है।

तटस्थता वक्रों तथा सामाजिक कल्याण वक्रों द्वारा व्याख्या:

निम्न दो रेखाचित्रों 3 तथा 4 द्वारा यह व्याख्या की गई है।

रेखाचित्र में PP_1 उत्पादन संभावना वक्र है जिसके बिन्दु e पर सामाजिक कल्याण वक्र S_2 पर स्पर्श करता है तथा कुल राष्ट्रीय उत्पादन $100 + 300 = 400$ करोड़ रुपये है जिसका 25% भाग सार्वजनिक क्षेत्र में उत्पन्न होता है। परन्तु ज्यों-ज्यों समयानुसार आर्थिक विकास बढ़ता है, PP_1 वक्र (उत्पादन संभावना वक्र) ऊपर की ओर खिसक जाता है तथा जिसके फलस्वरूप सरकारी क्षेत्र में भागीदारी बढ़ती जाती है, इसको रेखाचित्र-4 में दर्शाया गया है।

Figure - 3

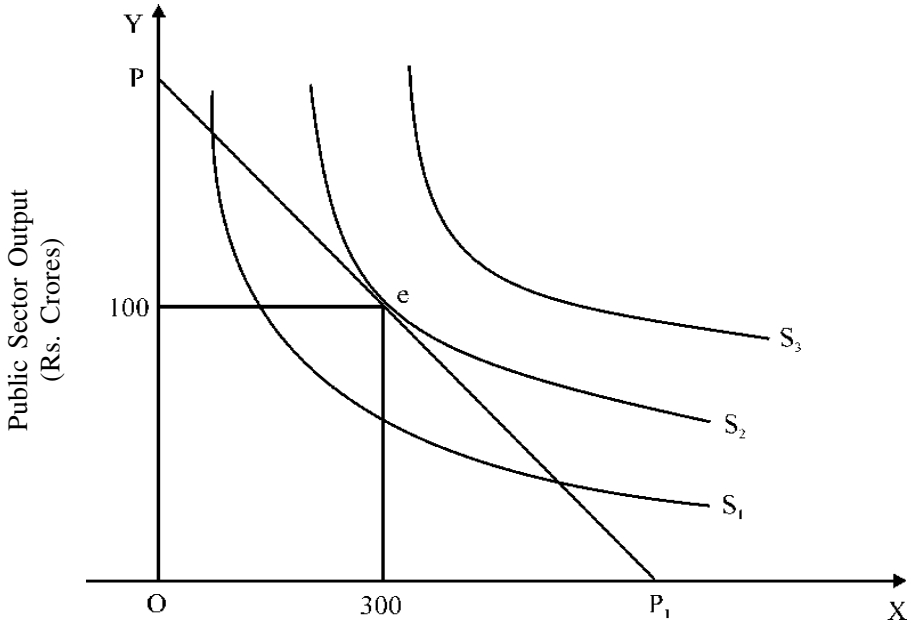

Figure - 4

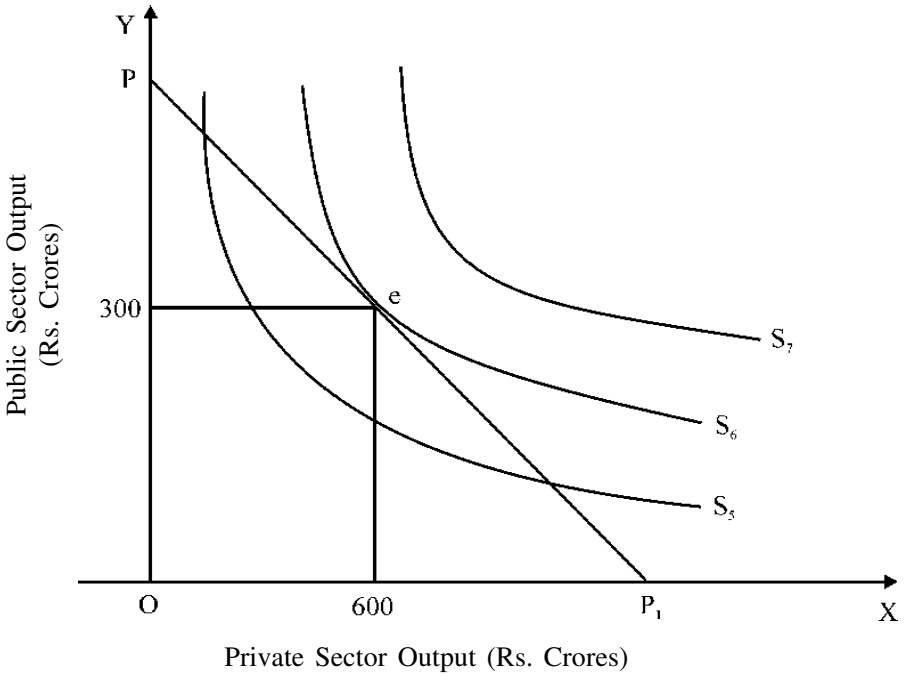

जब राष्ट्रीय उत्पादन 400 **करोड़ रुपये से बढ़कर** 900 **करोड़ रुपये होता है तो सार्वजनिक क्षेत्र का भाग** 100 **करोड़ रुपये बढ़कर** 300 **करोड़ रुपये हो जाता है जो** G.N.P. **के** 25% **भाग से बढ़कर** 33.3% **भाग** G.N.P. **का हो जाता है, इसमें महत्वपूर्ण बात यह है कि आर्थिक विकास ने समाज की प्राथमिकताओं में, सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में उत्पादित पदार्थों**

के मध्य भिन्नता (Change) ला दी है तथा सार्वजनिक क्षेत्र अधिक उत्पादन का हिस्सा उत्पादित कर रहा है।

वैगनर परिकल्पनाः आर्थिक विकास की प्रक्रिया में औद्योगीकरण से पूर्व तथा औद्योगीकरण के बाद की अवस्थाएँ

चूँकि वैगनर की परिकल्पना का विश्लेषण औद्योगिक राष्ट्रों के विकास की प्रक्रिया पर आधारित है, अतः इस प्रक्रिया से सम्बन्धित बहस को किसी एक राष्ट्र के इतिहास में 'औद्योगीकरण काल' (Industrialization Era) तक ही सीमित न रखकर उस राष्ट्र के सम्भावित 'पूर्ण औद्योगीकरण निपुणता' तक भी बढ़ाना उपयुक्त होगा। जबकि उस राष्ट्र के नागरिकों का जीवन-स्तर न केवल औसत आधार पर वरन् वितरणात्मक (Distributional) आधार पर भी समृद्ध हो जाता है। रेखाचित्र-5 मुख्यतः रेखाचित्र-1 पर आधारित है। PG_2 रेखा एक उदाहरण पेश करती है कि प्रति व्यक्ति शुद्ध आय में सार्वजनिक वस्तुओं का शुद्ध उत्पादन (RPICOPG) का भाग किसी एक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में विकास की अवस्था के आधार पर कैसे बदलता है। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज के आर्थिक उत्थान में आय का अनुपात 'पूर्व औद्योगीकरण' या 'औद्योगीकरण के बाद' की अवस्थाओं में से किसी एक में भी स्थिति इस प्रकार होगी।

Figure - 5

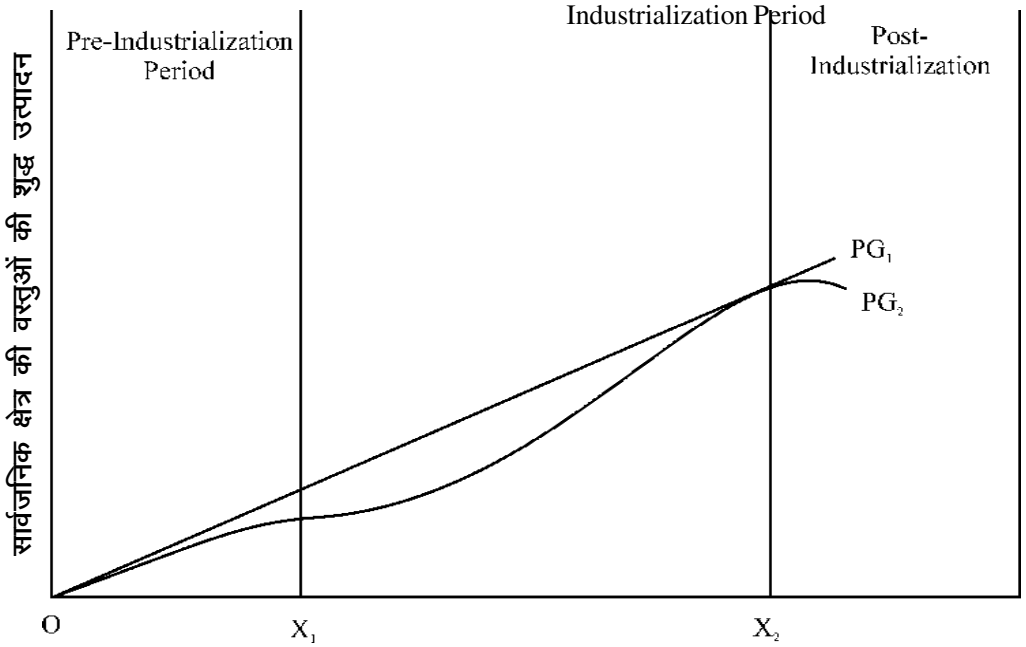

चूँकि प्रति व्यक्ति आय में लगातार वृद्धि होती है, अतः प्रत्येक क्षेत्र के तुलनात्मक महत्व में बदलाव की अपेक्षा की जाती है। उदाहरण के तौर पर सामाजिक महत्व के कार्यों पर जिन पर अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ती है जैसे संचार, परिवहन, शिक्षा आदि पर अधिक निवेश आर्थिक विकास के साथ आवश्यक है क्योंकि इन वस्तुओं/सेवाओं पर अधिक निवेश की आवश्यकता पड़ती

है तथा इनकी प्रकृति एक समान उपभोग की होती हैं अतः इनका उत्पादन प्रायः सरकारी क्षेत्र द्वारा किया जाता है। रेखाचित्र-5 में प्रति व्यक्ति शुद्ध आय OX_1 से अधिक होती है तो अर्थव्यवस्था औद्योगिकरण अवस्था में आ जाती है और सार्वजनिक क्षेत्र की वस्तुओं का प्रति व्यक्ति शुद्ध उत्पादन का भाग प्रति व्यक्ति शुद्ध आय की तुलना में समय के साथ अधिक होने लगता है। इस अवस्था की, जो कि वैगनर की परिकल्पना का प्रतिनिधित्व करती है व्याख्या मुख्य रूप से इस आधार पर की जा सकती है कि महत्वपूर्ण सामाजिक पूँजीयुक्त वस्तुएँ जिनका उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा होता है भी अब अर्थव्यवस्था के कुल माँग का हिस्सा बन गई हैं। अन्ततः इन वस्तुओं का उत्पादन अधिक मात्रा में होने लगता है तथा अर्थव्यवस्था 'औद्योगीकरण के बाद' की अवस्था को प्राप्त कर जाती है, रेखाचित्र-5 में OX_2 प्रति व्यक्ति शुद्ध आय स्तर पर इस अवस्था को दर्शाया गया है।

अब औद्योगीकरण के बाद की अवस्था में सभी व्यय करने वाली इकाईयाँ पर्याप्त जीवन-स्तर प्राप्त कर चुकी हैं इस अवस्था में सरकार इन वस्तुओं/सेवाओं का उत्पादन घटती हुई दर से कर रही हैं, अतः समाज अब निजी क्षेत्र की वस्तुओं की ओर अधिक झुकने लगता है। इसके अतिरिक्त समाज, अब अधिक बड़े सार्वजनिक क्षेत्र के पक्ष में नहीं रहना चाहता और अधिक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की इच्छा करता है, तथा अनिवार्य कर-व्यवस्था की समाप्ती चाहता है। इसलिए एक बार फिर निजी वस्तुओं का प्रति व्यक्ति शुद्ध उत्पादन, प्रति व्यक्ति शुद्ध आय की तुलना में बढ़ने लगता है अर्थात् सार्वजनिक क्षेत्र की सापेक्ष महत्ता घटने की अपेक्षा की जाती है।

आलोचना

1. इस परिकल्पना में अन्तः विषय सम्बन्धों की कमी पाई जाती है अर्थात् अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र तथा समाजशास्त्र आपस में सम्बन्धों की अवहेलना की गई है।
2. इस परिकल्पना में सही विश्लेषण नहीं किया गया है तथा यह व्यापक नहीं है।
3. यह परिकल्पना पश्चिमी देशों को मान्य नहीं है।
4. इस परिकल्पना में युद्ध के प्रभावों की अवहेलना की गई है।

अध्याय - 14

पीकाक तथा वाइजमैन परिकल्पना

(Peacock and Wiseman Hypothesis)

सार्वजनिक व्यय से सम्बन्धित सिद्धान्तों द्वारा विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। पीकाक तथा वाइजमैन का सिद्धान्त सार्वजनिक व्यय का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। उन्होंने संयुक्त रूप से लिखी अपनी पुस्तक "The Growth of Public Expenditure in United Kingdom" जिसका प्रकाशन 1961 में हुआ में सार्वजनिक व्यय के झुकाव के समयावधि आकार (Time Pattern) पर बल दिया है। उनकी सामान्य विचारधारा तीन अलग-अलग किन्तु आपस में एक दूसरे से सम्बन्धित धारणाओं पर आधारित है। जो कि इस प्रकार है -

1. अपने स्थान से हटना (Displacement)
2. निरीक्षण या जाँच (Inspection)
3. केन्द्रित होना (Concentration)

1. विस्थापित प्रभाव (Displacement Effect):

पीकाक तथा वाईजमैन के अनुसार ब्रिटिश अर्थव्यवस्था में कुछ ऐसे सार्वजनिक क्षेत्र हैं जिनका विकास का स्वरूप 'सीढ़ीनुमा' (Step Like) हुआ है न कि एक निरन्तर गति से। अर्थात् जिस अवधि में आँकड़ों को उन्होंने अध्ययन किया उसके आधार पर उन्होंने पाया कि ब्रिटिश राजकोषीय प्रक्रिया एक सीढ़ी के बाद दूसरी सीढ़ी की तरह विकसित हुई है। ब्रिटिश सरकार द्वारा सार्वजनिक आय और व्यय में जितनी भी सापेक्ष और निरपेक्ष व द्धि हुई है वह व द्धि या तो सामाजिक उतार-चढ़ाव के समय या फिर मन्दी अथवा युद्ध काल के समय हुई है जो एक पुर्नस्थापना प्रभाव को दर्शाती है। यह प्रभाव उस समय लागू होता है जब ऊँची करों की दर या ऊँची व्यय की दर पहले वाली कम करों की दर व व्यय की दरों को बदल देती हैं। इस प्रकार की पिछली (निम्न) कर एवं सार्वजनिक व्यय की सीमा एक नये और अधिक (बढ़े हुए) बजटीय सीमा में परिवर्तित हो जाती है। जब बाद में सामाजिक उथल-पुथल समाप्त हो जाती है तो कर देय क्षमता का यह नया स्तर जो इस दौरान बन गया था, बना रहता है और समाज इस नये स्तर के सार्वजनिक व्यय को बनाए रखने के लिए समहत हो जाता है। अतः कर स्तर

निम्न रेखाचित्र-1 में इस प्रभाव को दर्शाया गया है।

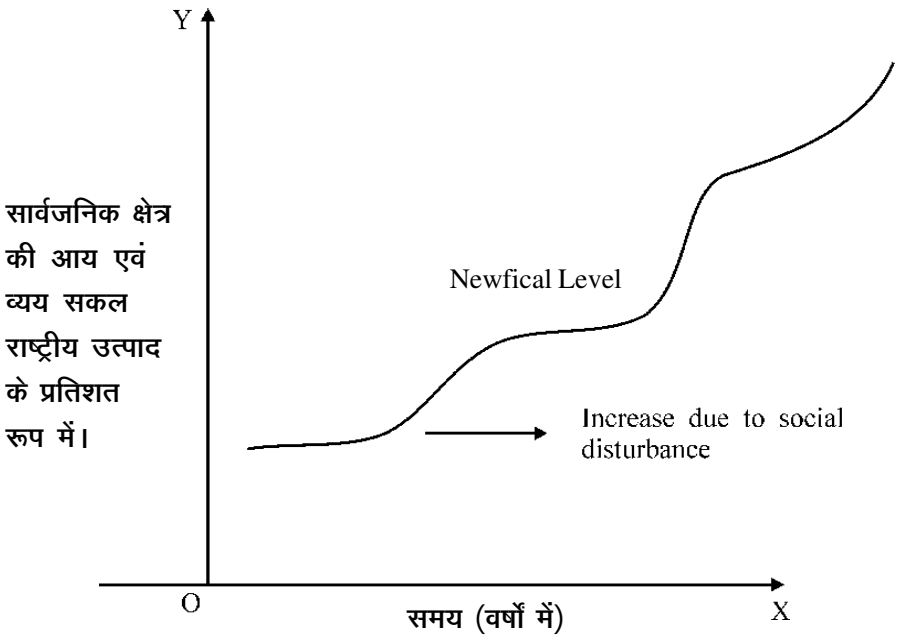

पुनः उथल-पुथल से पहले वाली स्थिति में नहीं लाया जाता है बल्कि इस बढ़े हुए सार्वजनिक क्षेत्र के आबंटन को पूरा करने के लिए अधिक सरकारी आय को प्रयोग में लाया जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र में किया गया उचित बंटवारा निजी क्षेत्र के साधनों के बंटवारे को, कुछ सीमा तक, कम कर सकते हैं इस तरह का कार्य ग्रेट ब्रिटेन में 1890-1960 के मध्य की समयावधि के बीच कई बार हुआ है और इसे Threshold Effect का नाम दिया है।

समयावधि (वर्षों में) को X-अक्ष पर तथा सार्वजनिक क्षेत्र की आय व व्यय सकल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में Y-अक्ष पर दर्शाये गए हैं। समय की पहली अवधि में जब सार्वजनिक आय और व्यय न्यूनतम होते हैं उस समय समाज में आर्थिक क्षेत्र में गतिशीलता का अभाव पाया जाता है फिर धीरे-धीरे सरकार अपनी आय को करों को बढ़ाकर बढ़ाती है और उसे लोगों के कल्याण पर खर्च कर देती है तथा साथ ही आर्थिक सुधारों पर व्यय करने आर्थिक विकास की ऊँची दर प्राप्त करना चाहती है, इन प्रक्रियाओं को पूरा करने के लिए सरकार को नई कर प्रणाली अपनानी पड़ती है तथा समय की अगली अवधि में सरकार अपनी आय बढ़ाती है और इसे सार्वजनिक कल्याण के कार्यों पर व्यय कर देती है। अतः सरकार को नई राजकोषीय नीति अपनानी पड़ती है, यह पद्धति कालान्तर चालू रहती है अर्थात् वह सीढ़ियों की तरह से चलन पद्धति अपनाती है। इस प्रकार पीकाक एवं वाजमैन का सिद्धान्त का सिद्धान्त आर्थिक विकास के लक्ष्य को 'सीढ़ीनुमा' (Step Like) प्राप्त करता है।

2. निरीक्षण प्रभाव (Inspection Effect):

सामाजिक क्रियाकलापों के परिणामस्वरूप सरकार के क्रियाकलापों का विस्तार आर्थिक

गतिविधियों के नये क्षेत्रों से हुआ है जिसमें कुछ क्षेत्र ऐसे थे जो या तो निजी क्षेत्र द्वारा चलाए जाते थे या फिर वे किसी तकनीकी विकास का परिणाम थे। सामाजिक उतार चढ़ावों ने लोगों को मजबूर किया कि उन समस्याओं का भी हल प्राप्त किया जाए जिन्हें पहले उपेक्षित (Neglect) किया गया है या जिनके उत्पादन के लिए पहले से कोई भी बजटीय आबंटन नहीं किया जाता रहा है। इसके अतिरिक्त युद्ध या अन्य सामाजिक उथल-पुथल समाज में लोगों को तथा सरकार को लगातार यह सोचने पर मजबूर कर देता है कि उन महत्वपूर्ण समस्याओं का हल ढूंढा जाए जिन्हें नकारा गया है। इस अवस्था को 'निरीक्षण अथवा जांच' प्रभाव कहते हैं।

3. एकाग्रता प्रभाव (Concentration Effect):

यह प्रभाव इस धारणा को दर्शाता है कि जब आर्थिक व द्धि के परिणामस्वरूप केन्द्रिय सरकार की आर्थिक गतिविधियाँ पहले के मुकाबले प्रतिशत के रूप में अधिक बढ़ती है इसका अर्थ यह है कि पूरे सार्वजनिक क्षेत्र के मुकाबले निम्न स्तर की सरकारों की आर्थिक गतिविधियों में कम व द्धि होती है। यह धारणा 20वीं शताब्दी में ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के लिए सत्य है जबकि अमेरिकन अर्थव्यवस्था को देखें तो इसका प्रमाव युद्ध अथवा मन्दी के समय ही दिखाई पड़ता है।

पीकाक तथा वाईजमैन की विचारधारा के अनुसार समाज की आर्थिक प्रगति के दौर में केन्द्र सरकार की आर्थिक प्रक्रिया का रूझान स्पष्ट रूप से सार्वजनिक क्षेत्र की पूर्ण आर्थिक प्रक्रिया की तुलना में बढ़ने लगता है। निसन्देहः इसका अभिप्राय यह है कि निचले स्तर की सरकारों का भाग सार्वजनिक क्षेत्र में आवश्यक तौर पर गिरेगा। पीकाक वाईजमैन ने इस प्रभाव को Concentration Effect कहा है।

इस परिकल्पना से भिन्न निष्कर्ष निकलता है कि ग्रेट ब्रिटेन में :

1. सार्वजनिक क्षेत्र की सापेक्ष संव द्धि सीढ़ीनुमा आधार पर विकसित होती हैं।
2. निरीक्षण की प्रक्रिया तब शुरू होती है जब घटित समस्याओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाता है और उनके समाधान के तरीके खोजने का प्रयास होता है।
3. एकाग्रता प्रभाव (Concentratin Effect) तब पाया जाता है जब केन्द्र सरकार के पास कुल सार्वजनिक क्षेत्र का एक बहुत बड़ा हिस्सा उपलब्ध हो जाता है।

हम यह कह सकते हैं कि पीकाक तथा वाईजमैन ने जो सिद्धान्त दिया है यह सार्वजनिक क्षेत्र के उतार-चढ़ाव को सीढ़ियों की तरह से प्रदर्शित करता है।

अध्याय - 15

सार्वजनिक व्यय का आर्थिक प्रभाव

(Economic Effect of Public Expenditure)

करों को लागत के रूप में देखा जाता है और इसका लोगों पर भार पड़ता है। लेकिन इसके विपरीत लोक-व्यय से लोगों को लाभ प्राप्त होता है। इसलिए लोक-व्यय के आर्थिक-प्रभाव की विवेचना की गई है।

1922 में प्रकाशित अपनी पुस्तक Public-Finance में डाल्टन ने लोक-व्यय के दो प्रमुख प्रभावों का अध्ययन किया जैसे उत्पादन पर प्रभाव, तथा वितरण पर प्रभाव। इन प्रभावों के विश्लेषण मैं डाल्टन ने मुख्य रूप से श्रम, बचत तथा निवेश करने की योग्यता तथा इच्छा के रूप में विभिन्न प्रेरणाओं पर ध्यान दिया। आर्थिक विकास के संदर्भ में भी लोक-व्यय के प्रभाव का विश्लेषण किया गया। आर्थिक विकास के संदर्भ में भी लोक-व्यय के प्रभाव का विश्लेषण किया गया। आर्थिक प्रभाव के अध्ययन के लिए यह जरूरी है कि हम लोक-व्यय का वर्गीकरण कर लें। डाल्टन ने लोक-व्यय को अनुदान (Grants) तथा क्रय-कीमत के बीच विभाजित किया है। इनके बीच विभाजन ठीक उसी प्रकार किया गया है जिस प्रकार लोक आय को कर तथा बिक्री-कीमत के बीच बांटा जाता है। अब हम लोक-व्यय का अलग-अलग तत्वों पर प्रभाव देखते हैं।

उत्पादन पर लोक-व्यय का प्रभाव (Effect of Public Expenditure on Production)

उत्पादन पर लोक-व्यय के प्रभाव की विवेचना के लिए मुख्य बात यह है कि लोक-व्यय तथा करारोपण द्वारा बड़ी मात्रा में आर्थिक संसाधनों का स्थानांतरण सरकारी नीति द्वारा निर्धारित स्रोतों में होता है। इस क्रिया की अनुपस्थिति में ये साधन अन्य कार्यों में लगते हैं। या बेकार पड़े रहते हैं। **उत्पादन पर लोक व्यय के प्रभाव को जानने के लिए निम्न बातें जानना जरूरी है।**

1. श्रम, बचत एवं विनियोग करने की योग्यता पर प्रभाव।
2. श्रम, बचत एवं विनियोग करने की इच्छा पर प्रभाव।
3. आर्थिक-संसाधनों के स्थानांतरण का विभिन्न उपयोगों पर प्रभाव।

शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर व्यय, व द्धावस्था पेंशन, पारिवारिक भत्ता आदि लोक-व्यय के ऐसे

मद हैं जिनसे कार्यक्षमता बढ़ती है। श्रम करने की योग्यता बढ़ती है। और लोगों की वास्तविक आय बढ़ती है। इससे बचत करने की योग्यता भी बढ़ेगी। यदि लोक-व्यय द्वारा निवेश योग्य Fund ऐसे लोगों के हाथ में दे दी जाती है, जो पूंजीगत व्यय करते हैं तो विनियोग में व द्धि होगी।

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि पुलिस एवं सेना पर अत्यधिक व्यय न किया जाए तो लोक-व्यय द्वारा ऐसी स्थिति का स जन होता है। जिसमें उत्पादन की क्रिया में प्रसार होगा। ये प्रसार तीन तरह से होता है।

1. श्रम, बचत एवं विनियोग करने की योग्यता बढ़ती है।
2. लोक-व्यय द्वारा श्रम, बचत एवं विनियोग की इच्छा को प्रेरणा भी मिल सकती है।
3. विभिन्न उपयोगों के मध्य आर्थिक-संसाधनों के स्थानांतरण का भी महत्व है।

उदाहरण के तौर पर शिक्षा, स्वास्थ्य, तकनीक आदि के विकास पर सरकार अधिक खर्च करती है। ऐसे व्यय द्वारा परोक्ष रूप में श्रम बचत एवं विनियोग करने की न केवल योग्यता बढ़ती है। बल्कि इच्छा भी बढ़ती है।

वितरण पर प्रभाव (Effect on Distribution)

डी. वुल्फ के अनुसार लोक-व्यय के वितरण-संबंधी प्रभाव को चार प्रकार से देखा जा सकता है।

1. भौद्रिक प्रवाह
2. किनके लिए व्यय किया गया
3. व्यय भार तथा
4. लाभ भार

1. मौद्रिक प्रवाह के अंतर्गत भुगतान पाने वालों के द ष्टिकोण को देखा जाता है। इसमें हस्तांतरण भुगतान की स्थिति में भुगतान पाने वालों को भुगतान की गई रकम के बराबर लाभ मिलता है। किंतु वेतन एवं मजदूरी के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वे सरकारी कर्मचारियों के लाभ हैं।
2. किनके के लिए व्यय किया जाए इस संबंध में डी. वुल्फ कहते हैं कि जिनके लिए व्यय किया गया है उन्हीं को इसका लाभ भी मिलता है। जैसे शिक्षा पर व्यय के विषय में यह माना गया है कि इससे लाभ छात्रों के परिवार को मिलता है। लेकिन वुल्फ की इस विचारधारा के विरुद्ध आपत्ति उठाई गई है। क्योंकि आबंटन जिस वस्तु का होता है वह लाभ नहीं लागत है। लाभ की प थक् माप मुश्किल कार्य है। क्योंकि लाभ लागत से अधिक या कम भी हो सकता है। इसकी आपत्ति यह है कि शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य अनेक क्रियाओं से संबंधित बाह्यताओं पर विचार नहीं किया जाता।
3. व्यय भार का संबंध कीमत, मजदूरी, लाभ, मूल्य आदि पर लोक-व्यय के प्रभाव से है। जैसे सरकारी वेतनमान सभी विश्वविद्यालीय स्नातकों के लिए एक Standard का काम कर

सकता है। और जहाँ पर ऐसा नहीं है वहाँ सरकारी मांग, शिक्षकों, इंजीनियरों तथा अर्थशास्त्रियों आदि के सापेक्ष वेतन को प्रभावित कर सकती है।

4. लाभ भार को जानने का तरीका यह है कि सरकारी-सेवाओं से लाभ प्राप्त करने वालों से यह पूछा जाए कि यदि उन्हें इन सेवाओं को खरीदना पड़ता जो कि सरकार की तरफ से उन्हें मिल रही हैं तो फिर वे इन मिलने वाली सेवाओं की कितनी कीमत देते। इससे लाभ भार को जाना जा सकता हैं। लेकिन इस विधि को व्यवहार में लाना कठिन है। क्योंकि अधिकांश सेवाएँ ऐसी हैं जिनसे सामूहिक लाभ मिलते हैं।

रोजगार पर प्रभाव (Effect on Employment)

केंजीयन अर्थशास्त्र के विकास के फलस्वरूप लोक-व्यय का प्रत्यक्ष प्रभाव रोजगार पर पड़ सकता है। इनका कहना है कि रोजगार समग्र मांग द्वारा निर्धारित होता है। समग्र मांग में व द्धि द्वारा बेरोजगारी समाप्त की जा सकती है। और लोक-व्यय में व द्धि के द्वारा समग्र मांग में व द्धि की जा सकती है। मुद्रावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार केवल उस स्थिति में जिसमें वित्त की प्राप्ति नई मुद्रा की स ष्टि द्वारा होती है। तब लोक-व्यय का पूरा प्रभाव रोजगार पर पड़ता है। लेकिन यह केवल मौद्रिक नीति है। राजकोषीय नहीं। और यदि राजकीय विनियोग में व द्धि के कारण निजी-निवेश में कमी होती है तो इस प्रभाव के कारण लोक-व्यय का गुणक प्रभाव काफी घट जाता है।

आर्थिक-विकास पर प्रभाव (Effect on Economic Development)

आर्थिक-विकास के लिए जरूरी है कि भौतिक तथा मानवीय पूँजी का निर्माण किया जाए। और इसके लिए सामाजिक ऊपरी निवेश राज्य द्वारा ही संभव है। राज्य पूँजी का निर्माण दो कारणों से करता है। 1. आर्थिक-विकास के प्रत्यक्ष यंत्र के रूप में। 2. विकास-प्रक्रिया में निजी-पूँजी के सहयोग को बढ़ावा देने के लिए। विकास के सभी चरणों में कुछ ऐसी परियोजनाएँ होती हैं जिनकी ओर निजी-निवेश आकृष्ट नहीं होता है। ऐसे क्षेत्र में निजी निवेश की अनिच्छा को देखते हुए विकास के लिए राज्य को निवेश करना होता है। क्योंकि शिक्षा, स्वास्थ्य आदि मानवीय पूँजी तथा परिवहन, भूमि-सुधार, नदी विकास, सिंचाई आदि कार्य ऐसे हैं जिनमें निजी व्यक्ति निवेश करने की अनिच्छा व्यक्त करता है क्योंकि इन कार्यों में निजी एवं सामाजिक लाभों के अवसरों में भारी अंतर पड़ता है।

इसके विपरीत विद्युत स्थापना, नदी विकास आदि कार्यों को करने के लिए भारी मात्रा में पूँजी व्यय की आवश्यकता होती है और एक निजी-व्यक्ति ये कार्य नहीं कर सकता क्योंकि इनसे प्रतिफल काफी लंबे समय बाद मिलता है। इसके लिए भी राज्य (सरकार) को ही पूँजी व्यय को करना पड़ता है। जो कि आर्थिक विकास करने के लिए राज्य का कर्त्तव्य भी है। लोक-व्यय आर्थिक-विकास में अनेक कारणों से सहायक होता है। किंतु 1980 के दशक से अर्थशास्त्रियों के विचार में बदलाव आया है। इसका कारण है कि लोक-व्यय में आशातीत व द्धि तथा दूसरे सरकारी बजट में लगातार भारी घाटा। लेकिन अब देश के आर्थिक-विकास में बाजार की भूमिका

का महत्व बढ़ा है। इसका कारण यह है कि विकासशील देशों में अब पूँजी-बाजार काफी विकसित हो गया है। तथा निजी उद्यमी भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

निष्कर्ष

लोक-व्यय किसी देश की अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा आर्थिक-क्षेत्र हैं। अतः यह उपभोग, विनियोग तथा लाभ के Pattern को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लोक-व्यय के फलस्वरूप सरकारी समर्थन ने नए-नए उद्योगों को विकसित करने में सहायता मिली है। लोक-व्यय से ही सरकार शोध एवं विकास को सहायता देकर औद्योगिक विकास में मदद देने के साथ-साथ अनेक वस्तुओं के लिए सुरक्षित बाजार की व्यवस्था सुलभ हुई है। लोक-व्यय के Pattern का प्रभाव व्यक्तियों के स्थानातंरण निर्णयों पर भी पड़ता है। अंतर्राज्यीय पथों के निर्माण के कारण मोटर यात्रा की गति भी तेज हो गई। इससे नगरीय प्रसार तथा विकास में सहायता मिली है।

अध्याय - 16

निवेश कराइटेरिया

(Investment Criteria)

अल्पविकसित देशों में पूंजी की समस्या बहुत बड़ी समस्या है। अगर इस समस्या को सुलझाया भी जाए अर्थात पूंजी उपलब्ध कराई जाए तो एक समस्या उत्पन्न होती है कि इस उपलब्ध पूजी का निवेश कहाँ किया जाए। ऐसी प्रणाली या सिद्धांत जो ऐसे नीतिगत फैसले तय करवाने में सहायक हो कि किस क्षेत्र में निवेश किया जाए। निवेश प्रणाली या सिद्धांत कहलाते है।

1950-60 के देश में एक आवाज उठी कि निवेश प्रणाली कैसी होनी चाहिए। या निवेश पहले कहाँ किया जाना चहिए। जिससे एक देश का आर्थिक सुधार हो सके। क्योंकि अल्पविकसित देश में पूंजी कम होती है। इसलिए ये देश सोचते हैं कि निवेश किसी ऐसे क्षेत्र में किया जाए, जिससे कि देश का तीव्र विकास हो सके। इसलिए इन देशों को Investment Criteria की आवश्यकता पड़ी।

निवेश प्रणाली से संबंधित विचारों में अर्थशास्त्रियों में मतभेद पाया जाता है। भिन्न-भिन्न अर्थशास्त्रियों ने भिन्न विचार व्यक्त किया है।

Investment Criteria से संबंधित मुख्य धारणाएं निम्नलिखित हैं।

1. Marginal Rule for Resourse Allocation.
2. The Marginal per Capita Reinvestment-Quation Criterce.
3. The Marginal per Capita Reinvestment Criterian
4. Time Series Criterian

1. Marginal Rule for investment

निवेश से संबंधित यह सिद्धांत नव-परम्परावादियों ने दिया है। नव-परम्परावादियों के अनुसार उन क्षेत्रों में निवेश करना चाहिए जहाँ पर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता अधिक तय हो तथा सभी निवेश इकाइयों में पूंजी की अंतिम इकाई से मिलने वाली सीमात उत्पादकता बराबर हो।

निवेश की उत्पादकता = $\frac{\Delta Q}{K}$

Δ Q $\Rightarrow$ Change in output

K $\Rightarrow$ Capital

सीमांतवादी सिद्धांत के अनुसार जब निवेश एक से अधिक इकाइयों में किया जाता है तो धन को इस प्रकार से निवेश करना चाहिए कि सभी क्षेत्रों की पूंजी की अंतिम इकाई से मिलने वाली सीमांत उत्पादकता बराबर हो। अर्थात–

$$\frac{\Delta QA}{KA} = \frac{\Delta QB}{KB} = \frac{\Delta QC}{KC} = \text{------} \quad \frac{\Delta Qn}{Kn}$$

$MP_A = Mp_B = MP_C =$ ------- Mp_n

यदि 2000 रु. का निवेश करने पर उत्पादन की 500 इकाईयों का अधिक उत्पादन होता है तो निवेश की सीमांत उत्पादकता होगी –

$$MP = \frac{\Delta Q}{K} = \frac{500}{2000} = \frac{1}{4}$$

Criticism

(i) मुद्रा के रूप में उत्पादन का अनुमान लगाया जा सकता है लेकिन सिद्धांत में उत्पादन से होने वाले या न होने वाली सामाजिक कल्याण की व्याख्या नहीं करता।

(ii) यह पैमाना केवल स्थिर अवस्था में ही लागू होता है जबकि प्रत्येक निवेश गत्यात्मक अवस्था में नहीं होता है।

(iii) बाजार में प्रचलित कीमत सामाजिक कीमत नहीं होती। क्योंकि कीमत तो मांग और पूर्ति पर निर्भर करती है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि निवेश का यह सिद्धांत सैद्धांतिक रूप से तो सही है लेकिन व्यावहारिक रूप से सही नहीं है।

2. Rate of Capital Turnover

यह सिद्धांत S- Buknan और J.J Polk नामक अर्थशास्त्रियों ने दिया है। बकनन और पोलक के अनुसार चूँकि अल्पविकसित देशों में धन की कमी होती है। इसलिए उनकों निवेश वहाँ पर करना चाहिए जहाँ पर कम से कम धन लगाकर ज्यादा उत्पादन संभव हो सके क्योंकि ऐसा करने से उत्पादन अधिक होगा। जिससे वे देश में और अधिक निवेश कर सकेंगे। तथा इसी प्रकार यह प्रक्रिया चलती रहेगी। क्योंकि इससे पूंजी उत्पादन-अनुपात न्यूनतम होगा। बैकनन तथा पोलक के अनुसार अल्पविकसित देशों में श्रम प्रधान-तकनीक का प्रयोग करना चाहिए इससे पूंजी की बचत तथा अधिक रोजगार लोगों को उपलब्ध होगा।

Criticism

(i) अल्पकाल में तो श्रमप्रधान तकनीक ठीक है लेकिन दीर्घकाल में इसमें विकास संभव नहीं है क्योंकि श्रमिकों के पास तकनीक की कमी होती है।

(ii) पूंजी का विकास कम होना या पूंजी प्रधान-तकनीक का प्रयोग न करना, भविष्य में मजदूरी की सीमांत उत्पादकता को कम करना है। जिससे उत्पादन भी कम होगा।

संक्षेप में कह सकते है इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार बताई गई श्रम प्रधान-तकनीक अल्पकाल के लिए तो उपयोगी है लेकिन दीर्घकाल के लिए ठीक नहीं है।

3. Social Marginal Productivity Criterion

यह सिद्धांत A. E. Kathan तथा H.B. Chenesy अर्थशास्त्रियों के अनुसार "सामाजिक कल्याण में सबसे ज्यादा व द्धि करने वाले Project में ही सबसे पहले निवेश करना चाहिए।"

$$SMP = \frac{V - C}{K}$$

Here ⇒ V = 1 Project द्वारा मिलने वाला शुद्ध सामाजिक उत्पादन है।

C ⇒ Project लगाने से कुल सामाजिक लागत (अवसर लागत)

K ⇒ Project पर लगाने वाला निवेश (कुल पूंजी)

सामाजिक कल्याण (V): हम जानते है कि सामाजिक-कल्याण आम, भुगतान सन्तुलन तथा आम वितरण का फलन है।

अर्थात् V = f (Y, B, D)

√ ⇒ सामाजिक कल्याण।

Y ⇒ देश के कुल उत्पादन में व द्धि पर प्रभाव

B ⇒ Project से B.O.P पर प्रभाव।

D ⇒ आय प्रभाव पर क्या प्रभाव पड़ता है।

सामाजिक लागत (C) =

(i) उस Project पर आने वाली लागत।

(ii) उस Project की अवसर लागत।

(iii) यह Project वातावरण पर कैसा प्रभाव डालता।

सामाजिक-सीमांत उत्पादकता ⇒ (SMP)

$$SMP = \frac{V - C}{K}$$

अतः निवेश वहाँ पर करना चाहिए जहाँ पर SMP सबसे अधिक हो क्योंकि वहाँ पर फायदे अधिक होंगे तथा लागत सबसे कम होगी।

Criticism

(i) किसी Project का सामाजिक कल्याण मापना वास्तव में संभव नहीं है।

(ii) सामाजिक-लागत को किन कीमतों से मापा जाए, इसके बारे में भी कोई नियम नहीं है।

(iii) किसी Project का कुल उत्पादन कितना होगा, यह जांचना आसान नहीं है। क्योंकि उस Project पर किया गया।

निवेश गुणक प्रभाव भी छोड़ता है। जिससे दूसरे Project को प्रोत्साहन मिले।

4. The Marginal Per Capital Re-investment Quetion Criterion

यह सिद्धांत V. Galwston और Henery Lieberstion नामक अर्थशास्त्रियों ने दिया है। इनके अनुसार निवेश वहाँ करना चाहिए जहाँ पर अधिकतम उत्पादन को प्राप्त करके पुर्ननिवेश किया जा सके अथार्त्

$$r = \frac{P - ew}{K}$$

Here r ⇒ Reinvestment

p ⇒ कुल शुद्ध उत्पादन

e ⇒ मजदूरों की संख्या

W ⇒ Real Wage

K ⇒ उस पूंजी ईकाई पर निवेश

इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार पूंजी-प्रधान तकनीक का प्रयोग करना चाहिए, जिससे मजदूरी लागत कम हो। उनका मानना है कि जब तक लाभ का Reinvestment प्रति पूंजी इकाई अधिक नहीं होगा तब तक देश का आर्थिक विकास नहीं होगा।

⇒ Reinvestment अधिक होने पर लोगों को रोजगार अधिक मिलेगा। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार पूंजी प्रधान तकनीक श्रम प्रधान से अधिक उपयुक्त है। इसको रेखाचित्र से स्पष्ट किया जा सकता है :

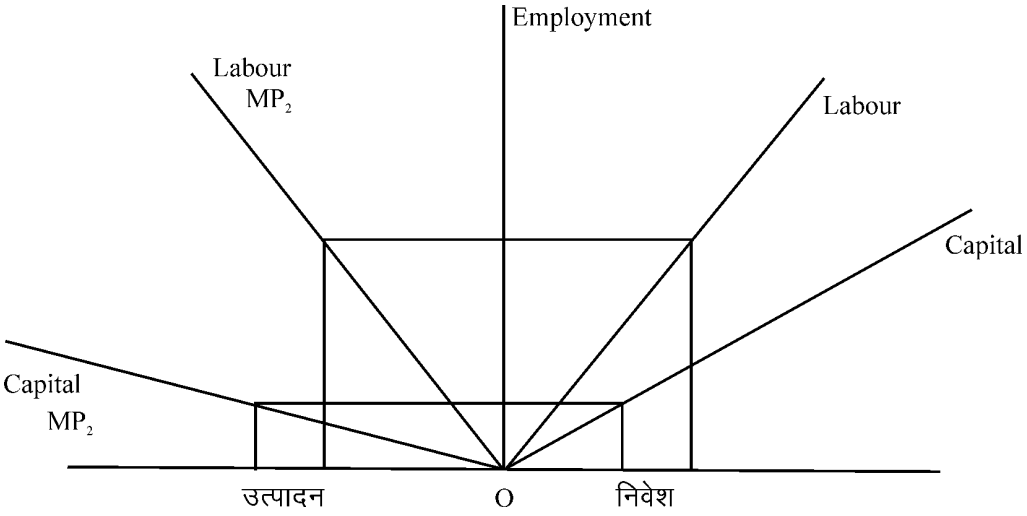

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि श्रम-प्रधान तकनीक की अपेक्षा पूंजी प्रधान तकनीक से अधिक निवेश, अधिक उत्पादन तथा अधिक रोजगार प्राप्त कर सकते हैं।

Criticism

(i) जिस देश में धन नहीं है पूंजी प्रधान की तकनीक की बात हास्यप्रद लगती है।

(ii) पूंजी-प्रधान तकनीक अपनाने के लिए मशीनें विदेशों से आयात करनी पड़ती है। लेकिन विकास के लिए ऐसा Project चुनना चाहिए जिससे आयात की अपेक्षा निर्यात बढ़े।

(iii) आम वितरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

संक्षेप में यह कह सकते है कि यह सिद्धांत तभी उपयोगी हो सकता है जब देश में पूंजी की कमी न हो। लेकिन अल्पविकसित देशों में इसकी कमी पाई जाती है। इसलिए यह इन देशों के लिए उपयुक्त नहीं है।

5. Time-Series Criterion

यह विचार प्रसिद्ध भारतीय अर्थशास्त्री A.K. Sen ने दिया है। Sen के अनुसार निवेश के लिए Project को समयानुसार चुनना चाहिए। Sen द्वारा व्यक्त सिद्धांत को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि Project को समय के अनुसार चुनना चाहिए। अगर आपको दीर्घकाल के लिए Project को चुनना है तो ऐसा Project चुनना चाहिए जिससे भविष्य में

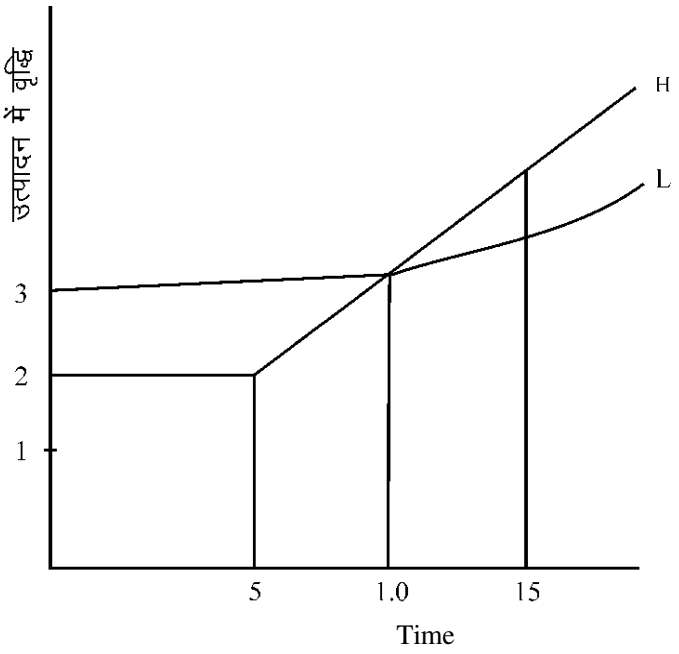

बहुत अधिक लाभ हो। चाहे इसके लिए शुरुआत में हानि ही क्यों न हो। अल्पकाल के लिए ऐसे Project को चुनाव करना, जिससे तत्काल में भारी फायदे हो। अतः A.K. Sen के अनुसार Project का चुनाव समय के अनुसार ही किया जाना चाहिए।

Criticism

(i) अल्पकाल में तो श्रम प्रधान तकनीक ठीक है लेकिन दीर्घकाल में इसमें विकास संभव नहीं है क्योंकि श्रमिकों के पास तकनीक की कमी होती है।

(ii) पूंजी का विकास कम होना या पूंजी प्रधान-तकनीक का प्रयोग ना करना, भविष्य में मजदूरी की सीमांत उत्पादकता को क्रम करना है। जिससे उत्पादन भी कम होगा।

संक्षेप में कह सकते है इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार बताई गई श्रम प्रधान-तकनीक अल्पकाल के लिए तो उपयोगी है लेकिन दीर्घकाल के लिए ठीक नहीं है।

अध्याय - 17

सार्वजनिक लागत-लाभ विश्लेषण

(Social-Cost Benefit Analysis : Valuation of Benefits & Costs)

लागत-लाभ विश्लेषण एक ऐसी विधि एवं तकनीक है जिसका उपयोग सार्वजनिक परियोजनाओं एवं प्रोग्रामों के सापेक्ष आकर्षण के मूल्यांकन के लिए किया जाता है। किसी परियोजना का लागत-लाभ मूल्यांकन करते समय अर्थशास्त्री वस्तुतः ऐसे प्रश्न नहीं पूछता जो किसी निजी फर्म का उद्यमी पूछता है। इसमें इसी प्रकार के प्रश्नों को विस्त त दायरे में पूछा जाता है जैसे कि समाज के संदर्भ में।

किसी निजी फर्म का स्वामी यह जानना चाहेगा कि किसी विशेष क्रिया में विनियोग करने से अधिक लाभ मिलेगा या दूसरी क्रिया में। लागत-लाभ विश्लेषण करते समय अर्थशास्त्री यह प्रश्न पूछता है कि क्या किसी विशेष विनियोग परियोजना पर व्यय करने से संपूर्ण समाज को लाभ पहुँचेगा ? अतः निजी फर्म के राजस्व के स्थान पर अर्थशास्त्री सामाजिक लाभ की धारणा का उपयोग करते हैं। निजी फर्म की लागत के स्थान पर अवसर-लागत की धारणा का प्रयोग किया जाता है। और निजी फर्म के लाभ की जगह सामाजिक लागत की तुलना में सामाजिक लाभ के अतिरेक पर विचार किया जाता है।

लागत-लाभ विश्लेषण में तीन चरण अनिवार्य रूप से शामिल होते हैं।

(i). प्रस्ताविक परियोजना की सभी लागतों तथा लाभों की गणना करना।
(ii) सभी लागतों एवं लाभों का मूल्यांकन मुद्रा के रूप में करना।
(iii) भाविष्य में मिलने वाले लाभों की कटौती करना।

Cost-Benefit-Analysis

लागत-लाभ विशलेषण द्वारा उन परियोजनाओं को चुनना होता है जिनसे समाज को अधिक शुद्ध लाभ मिलते हैं। अधिकतम शुद्ध लाभ का अर्थ है सामाजिक उपयोगिता या सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना। 1844 में फ्रांसीसी इन्जीनियर (ड्यूपिट) Dupit ने सर्वप्रथम इस समस्या की जांच अपने उस लेख मे की जिसका शीर्षक "लोक-कार्यों की उपयोगिता की माप" था। Dupit के तर्कों को निम्न चित्र की सहायता से समझा जा सकता है।

उपरोक्त चित्र को पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता के आधार पर बनाया गया है ऐसा मान लिया गया है कि परियोजना के निर्माण के कारण सीमांत लागत MC_1 से घटकर MC_2 हो जाती है। BQ परियोजना का मांग-वक्र है MC_2 द्वारा BQ के काटने से D बिंदु पर संतुलित कीमत OH का निर्धारण होता है इस नई कीमत पर उपभोक्ता OE मात्रा के लिए OBDE कीमत का भुगतान करने के लिए तैयार है OBDE क्षेत्र के दो भाग हैं। OHDE वह भाग है जिसका उपभोक्ता भुगतान करता है। तथा HDB वह भाग है जो वह देने के लिए तैयार है। परियोजना की अनुपस्थिति में C बिंदु पर संतुलन है। जहाँ वस्तु की OK मात्रा OJ कीमत पर बिकती है। C बिंदु पर उपभोक्ता OBCK कीमत देने को तैयार था। जब कि परियोजना के निर्माण होने पर घटी हुई कीमत OH पर OBDE कीमत देने को तैयार है।

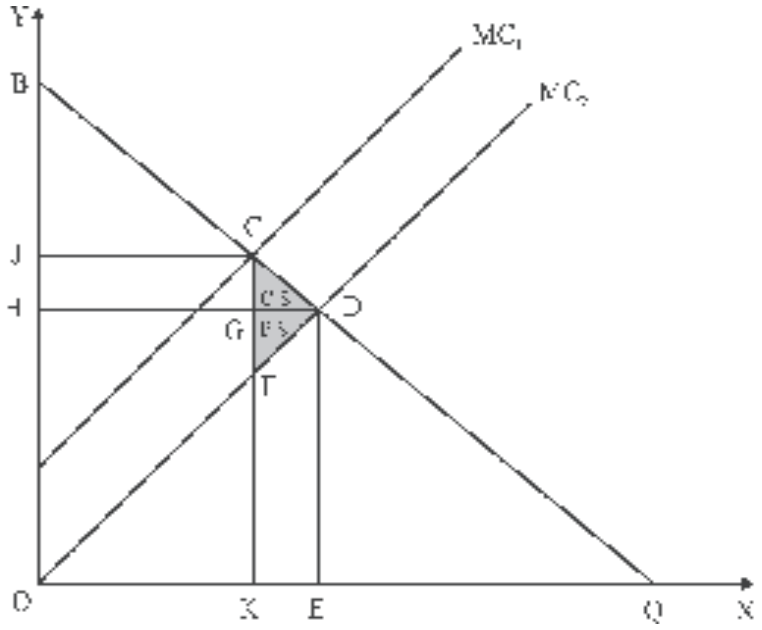

इस प्रकार कीमत के घटने पर उपभोक्ता KEDC = OBDE – OBCK भाग के बराबर अधिक कीमत देने को तैयार हो जाता है दूसरे शब्दो में कम कीमत के कारण कुल लाभ में KEDF भाग की बढ़ोतरी होती है लाभ में यह व द्धि लागत में KEDF के द्वारा ही संभव होती है। इसलिए लाभ में शुद्ध व द्धि FDC = KEDC – KEDF ही है। FDC त्रिभुज के दो भाग है- GCD तथा GFD। जहाँ GCD भाग उपभोक्ता का अतिरेक है तथा GFD भाग उत्पादन कर्त्ता का अतिरेक है।

बाजार-सिद्धांत का उपयोग

लागत-लाभ विश्लेषण में बाजार सिद्धांत का उपयोग किस प्रकार होता है इसकी व्याख्या हम कल्याण के अर्थशास्त्र के आदर्शवादी जगत को छोड़कर कर सकते हैं। इसमें माना है कि बजट निवेशक एक दी हुई रकम का आबंटन परियोजनाओं के मध्य ठीक उसी प्रकार करता है जिस प्रकार उपभोक्ता, परिवार का मुखिया, परिवारिक बजट में आबंटन करता है। निवेशक को प्रत्येक परियोजना की लागत की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। और यह भी पता करना है कि उससे कितना लाभ मिलेगा।

मान लो कि X तथा Y दो परियोजनाऐं हैं जिसमें C लागत और B लाभ को दिखाता हो निवेशक को ऐसा प्रयत्न करना है कि उसे अपने बजट से अधिकतम लाभ मिले। इसका अर्थ है कि शुद्ध सामाजिक लाभ को अधिकतम करना जो $\sum B$ तथा $\sum C$ का अंतर हो अर्थात् -

$$NSB = \sum B - \sum C$$

लंबी आयु वाली परियोजनाओं से लाभ वर्षों तक मिलते रहते हैं। अतः यहाँ दोनों धारणाओं के संक्षेपण की आवश्यकता है। इसके लिए भावी लाभों एवं लागतों की कसौटी करने वर्तमान मूल्य निकाला जाता है। इस स्थिति में, शुद्ध सामाजिक लागत को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है।

$$NSB = PV\ (B - C) = \sum_{t=o}^{H} \frac{Bt}{(1+r)^t} - \sum_{t=o}^{H} \frac{Ct}{(1+r)^t}$$

Here – PV ⇒ वर्तमान मूल्य C ⇒ लागत t ⇒ वर्ष

B ⇒ लाभ r ⇒ कटौती H ⇒ समच अवधि

$\sum C$ की जानकारी बजट के आकार से मिलती है अतः आवश्यकता सिर्फ इतनी है कि $\sum B$ को अधिकतम किया जाए। इसकी विवेचना हम दो मान्यताओं के आधार पर करेंगे।

⇒ पहली तो यह कि बजट-स्थिर है।

⇒ दूसरी यह कि परिवर्तनशील बजट की बात की जाएगी।

1. अधितम कुल लाभ (स्थिर बजट)

स्थिर बजट का विश्लेषण करते समय परियोजनाओं के दो भागों में बांट दिया हो।

(i) विभाज्य-परियोजना

(ii) पिण्डित-परियोजना

(i) **विभाज्य-परियोजनाएँ:** परियोजनाओं को विभाज्य मान लेने पर कार्य सरल हो जाता हो बजट की एक निश्चित स्थिर राशि को परियोजनाओं पर व्यय किया जाता है कुल बजट को मान लो दो परियोजनाओं X तथा Y पर खर्च किया जाना है। मुद्रा की एक इकाई को X परियोजना पर खर्च करने की अवसर लागत वह लाभ है। जिससे समाज वंचित रह जाता है। जब इसे Y परियोजना पर खर्च किया जाता है। शुद्ध लाभ उस समय अधिकतम होता है। जब कुल लाभ तथा लागत का अंतर अधिकतम होता है। यह उस समय होगा। जब ये बराबर हो जैसे -

$$= \frac{MB_x}{MB_y} = \frac{MC_x}{MC_y}$$

Here ⇒ MB = सीमांत लाभ।

MC = सीमांत लागत।

अब मान लें कि कुछ रकम जिसे X तथा Y पर खर्च करना है वह G है। उपरोक्त चित्र में दिखाया गया है कि यदि G का विभाजन इस प्रकार किया जाए कि X

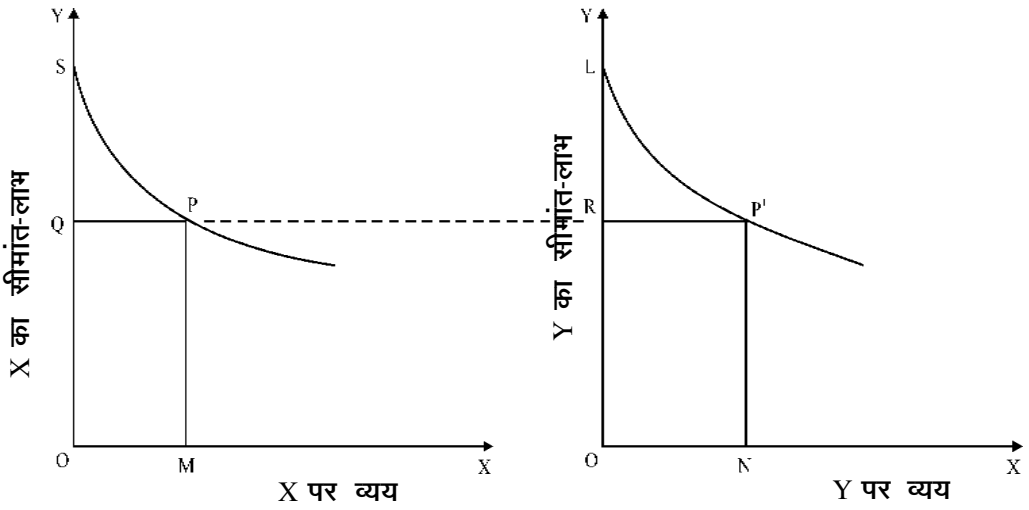

पर OM तथा Y पर ON खर्च किया जाता है। तो कुल लाभ अधिकतम होगा। क्योंकि OM से प्राप्त सीमांत लाभ PM के समान होता है। और ON से प्राप्त सीमांत लाभ P^1N के समान होता है। यहाँ यह मान लिया गया है कि दोनों परियोजनाओं की सीमांत लागत एक रुपया है। अतः MB_x को MB_y के बराबर करने की जरूरत है चित्र में G = OM + ON तथा X का कुल लाभ OMPS तथा Y का कुल लाभ ONP^1L के बराबर है। यहाँ X से PM सीमांत लाभ तथा Y से P^1N सीमांत लाभ मिलता है। और दोनों ही बराबर हैं।

अर्थात् - $MB_x = PM$

$MB_y = P^1 N$

$MB_x = MB_y$ संतुलन के लिए आवश्यक है। इसलिए $PM = P^1N$ है। सीमांत लागत दोनों ही दशाओं मे एक रुपया है अतः $\Rightarrow$

$\frac{MB_x}{MB_y} = \frac{MC_x}{MC_y}$ शर्त्त पूरी हो जाती है।

पिण्डित-परियाजनाएँ

पिंडित परियोजनाओं के मध्य बजट-आबंटन में सीमांत सिद्धांत उपयोगी नहीं होता है इन परियोजनाओं की लागत अलग-अलग होती है। अतः यदि प्रत्येक परियोजनाओं के लाभ की तुलना के आधार पर सर्वाधिक लाभदायक परियोजनाओं को चुना जाए, या कुल लाभ तथा कुल लागत की तुलना कर उस परियोजना को चुना जाए जिससे सर्वाधिक शुद्ध लाभ मिलता है वो सही परिणाम नहीं मिलेंगे अर्थात यह प्रक्रिया सही नहीं है। हमें सही परिणाम उस सयम मिलेंगे जब परियोजनाओं का चयन लाभ/लागत (B/C) अनुपात के आधार पर किया जाए।

या फिर $\frac{\psi\kappa H\kappa\&\backslash}{\psi\kappa\xi\rho}$ अनुपात के आधार पर किया जाए।

दोनों ही परिस्थितियों में क्रम व्यवस्था समान ही रहती है। निम्न तालिका में 9 परियोजनाओं पर खर्च और लाभ को रुपये में दिखाया गया है।

⇒ लाभ से तात्पर्य, प्रत्येक परियोजना के कुल लाभ से है।

मान लेते हैं कि सरकार को 27 करोड़ रुपये खर्च करने हैं तो फिर इसके लिए अर्थात् समझने के लिए हम एक तालिका को लेते हैं।

दी हुई तालिका में स्पष्ट है कि क्रम-व्यवस्था के आधार पर परियोजना VI, I, II, IV, VIII को चुना जाएगा। इस चयन से कुल खर्च पर अधिकतम कुल लाभ प्राप्त होगा। निजी क्षेत्र में (B/C) लाभ/लागत अनुपात का मूल्य।

परियोजना से प्राप्त कुल लाभ एवं लागत

परियोजना	लागत (रु.) (लाख)	लाभ (लाभ) (लाख)	B – C	B/C	अनुपात B – C	क्रम-व्यवस्था
Ist	400	1000	700	2.5	1.5	2
IInd	500	1200	700	2.4	1.4	3
IIIrd	300	200	–100	0.6	–0.3	8
VIth	150	300	150	2.6	2.0	4
Vth	100	500	–50	0.5	–0.5	9
VIth	50	250	200	5.0	4.0	1
VIIth	900	1200	300	1.3	0.3	7
VIIIth	100	1400	400	1.4	0.4	6
IXth	600	950	350	1.6	0.6	5

एक होता है। अतः यदि इस अनुपात का मूल्य सार्वजनिक क्षेत्र में एक से अधिक हो तो इसका तात्पर्य यह होगा कि इस क्षेत्र में प्रतिफल की दर निजी क्षेत्र की तुलना में अधिक है।

2. अधिकतम कुल लाभ (परिवर्तनशील बजट)

परिवर्तनशील बजट की स्थिति में दो परियोजनाओं के समाधान की जरूरत है -

(i) कुल बजट का निर्धारण

(ii) लोक परियोजनाओं का चयन

इस विवेचना में लोक-परियोजनाओं की अवसर लागत वे निजी परियोजनाएँ हैं जिनका निर्माण नहीं हो सका है। क्योंकि संसाधनों का उपयोग लोक क्षेत्र में होता है। परिवर्तनशील बजट के अंतर्गत भी हम दो प्रकार की परियोजनाओं को लेकर चलेंगे।

1. विभाज्य परियोजनाएँ
2. पिडिंत परियोजनाएँ

(i) **विभाज्य परियोजनाएँ:** विभाज्य-परियोजनाओं की स्थिति में शुद्ध लाभ ($\sum B - \sum C$) को अधिकतम करने की जरूरत होती है। ऐसा तभी होगा तब लोक परियोजनाओं पर व्यय किए गए अंतिम रुपये का सीमांत लाभ निजी परियोजना के सीमांत लाभ के बारबर हो जाता हैं अर्थात् -

$MB = MB$ Here MB ⇒ परियोजना से सीमांत लाभ

Public Private

विभाज्य परियोजना की स्थिति में हम मान लेते हैं कि निजी परियोजना का सीमांत लाभ एक रुपया है। अतः लोक परियोजना का सीमांत लाभ भी एक रुपया ही हो।

(ii) **पिंडित-परियोजनाएँ:** इन परियोजनाओं को तभी चुना जाएगा जब निजी-परियोजनाओं की अपेक्षा सार्वजनिक क्षेत्र में लाभ/लागत (B/C) एक से अधिक हो। पिंडित परियोजनाओं में यदि स्थिर बजट द्वारा परियोजनाओं का निर्माण किया जाता है। तो हम परियोजनाओं को उनके शुद्ध लाभ द्वारा चुनते हैं।

दीर्घकालीन परियोजनाएँ तथा कटौती की समस्याएँ

जो परियोजनाएँ दीर्घकालीन होती है उनका मूल्यांकन करना आवश्यक होता है। क्योंकि समाज को दीर्घकालीन लाभ होते हैं तो परियोजना का निर्माण लाभदायक होता है।

परियोजना-मूल्यांकन का एक महत्वपूर्ण मानदंड है। इस विधि के द्वारा परियोजना की लाभदायकता का मूल्यांकन किया जाता है।

इसमें परियोजना के जीवनकाल के प्रत्येक वर्ष के लाभों में से लागतें घटा दी जाती हैं और बट्टा दर जो निवेश-निधियों की कीमतों को व्यक्त करती है का प्रयोग एक निश्चित समय पर लाभों और लागतों को जानने और तुलना करने के लिए किया जाता है। परियोजना मूल्यांकन बट्टा काटना (Discounting) आवश्यक समझा जाता है।

Discounting इस प्रकार होगी -

$$D = \frac{1}{(1+i)^t}$$

Here $i \Rightarrow$ सामाजिक बट्टा दर है।

$t \Rightarrow$ समय अवधि है।

इस प्रकार शुरु वर्तमान मूल्य (NPV) के लिए सीमकरण होगा -

$$NPV = \frac{\sum_{t=1}^{h} B}{(1+i)^t} - \frac{\sum_{+=1}^{h} C}{(1+i)^t}$$

उन सभी परियोजनओं का चुनाव करना चाहिए जहाँ लाभों के वर्तमान मूल्य का, लागतों के वर्तमान मूल्य के अनुपात एक से अधिक हैं अर्थात -

$$\frac{\frac{\sum B}{(1+i)^t}}{\frac{\sum C}{(1+i)^t}} > 1$$

यदि $NPV > O$ हो तो परियोजना सामाजिक द ष्टि से लाभदायक होगी। इसलिए परियोजना को कार्यान्वित करने का निर्णय सही होगी।

यदि $NPV < O$ होता तो परियोजना लाभदायक नहीं होगी। और उसको चालू रखना व्यर्थ होगा।

अध्याय - 18

कराधान के सिद्धांत : विभिन्न धारणाएँ व सिद्धांत

(Theory of Taxation : Various Approaches to Taxation)

Neutrality Approach

तटस्थता का सिद्धांत

इस सिद्धांत की व्याख्या अनेक प्रकार से हुई है।

1. कर इस प्रकार लगाना चाहिए ताकि करदाताओं पर न्यूनतम भार पड़े।
2. करारोपण द्वारा उच्चतम जीवन-स्तर को हासिल करने में कोई बाधा नहीं पड़नी चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि व्यक्तियों के स्वतंत्र चयन को अन्य प्रकार से प्रभावित न किया जाए। इसका अर्थ है कि बाजार-यंत्र की क्रिया में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। इस धारणा की यह मान्यता रही है कि जब व्यक्तिगत अधिमान के आधार पर बाजार यंत्र उन्मुक्त रूप से कार्य करता है तो साधनों का आदर्श आबंटन होता है। इस लिए बाजार-यंत्र की क्रिया में किसी प्रकार के हस्तक्षेप से साधनों का आबंटन निम्न कोटि का होगा।

   तटस्थता की धारणा के संबंध में कुछ गलत ख्याल भी हैं। तटस्थता का अर्थ यह नहीं होता है कि करारोपण का कोई प्रभाव व्यक्तिगत आचरण पर नहीं पड़ता। क्योंकि सरकार की अनुपस्थिति में व्यक्तिगत आचरण जिस रूप में होता है। उससे अलग आचरण उस समाज में होगा, जहाँ सरकार विद्यमान होगी। उदाहरण के लिए, सरकार विहीन, समाज में लोग अपनी सुरक्षा का प्रबंध स्वयं करेंगे तथा इसके लिए चौकीदारों की नियुक्ति कर सकते हैं। सरकार की स्थापना के बाद यह कार्य पुलिस द्वारा किया जाता है। और पुलिस एक सार्वजनिक वस्तु है।

   उपभोक्ता एवं उत्पादन साधनों के अधिमान के आधार पर बाजार-यंत्र की क्रिया द्वारा अधिकतम उत्पत्ति प्राप्त होती है। इस लिए तटस्थ कर वह व्यवस्था है जो ऐसे अधिमान

में कोई परिवर्तन नहीं लाती है। दूसरी और यदि अधिकतम उत्पत्ति प्राप्त नहीं हो रही हो तो करों के उचित चयन द्वारा अधिकतम को उपलब्ध किया जा सकता है। उदाहरण के तौर मान लें कि अधिकतम मात्रा से अधिक परिमान में शराब का उपभोग किया जा रहा है। इसका कारण यह है कि शराब के उत्पादन कर्त्ता मद्यपान की वास्तविक सामाजिक लागत को वहन नहीं करता है। इसलिए कीमत इस लागत का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। ऐसी वस्तु पर उपभोग कर लगाना उचित होगा। ताकि इसका उत्पादन एवं उपभोग अधिकतम से ज्यादा न हो।

अनेक प्रकार से करों के प्रभाव ऐसे हो सकते हैं जिन्हें तटस्थ नहीं कहा जा सकता। किसी एक वस्तु के उत्पादन या उपभोग पर मान लें कर लगाया जाता है। लेकिन अन्य वस्तुओं पर नहीं। इस स्थिति में इस कर के कारण उपभोक्ता का चयन या काम करने की इच्छा प्रभावित हो सकती है। या फिर उत्पादन विधि में परिवर्तन हो सकता है।

Neutrality Approach

समानता का सिद्धांत

समानता का सिद्धांत सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत समझा जाता है। नैतिकता की द ष्टिकोण से इससे इंकार नही किया जा सकता कि कर को समान होना चाहिए। व्यवहारिकता के द ष्टिकोण से यह आवश्यक है कि कर-प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि जो करदाता को स्वीकार्य हो।

कराभार के समान-वितरण को ही समानता कहा जाता है। सार्वजनिक कार्य के लिए किए गए व्यय को पूरा करने में सभी करदाताओं को उचित हिस्सा वहन करना चाहिए। ऐसा कहना तो आसान है, लेकिन यह निर्धारित करना अत्यंत ही कठिन है कि उचित हिस्सा क्या होना चाहिए।

समानता को साधारणतः क्षैतिक एवं ऊर्ध्व समानता (Horizontal & Vertical) में विभाजित किया जाता हैं क्षैतिज समान से तात्पर्य है कि समान परिस्थिति वाले करदाताओं के साथ समान आचरण। इसके अतिरिक्त ऊर्ध्व (Vertical) समानता का अर्थ है कि असमान परिस्थिति वाले कर-दाताओं के साथ असमान व्यवहार, दोनों प्रकार की समानता एक ही सिद्धांत अर्थात् समान आवरण के अंग हैं। कर भार के समान-वितरण के संबंध में दो सिद्धांतों का अक्सर उल्लेख होता है। एक है लाभ का सिद्धांत। और दूसरा है करदान योग्यता का सिद्धांत।

Ability to Pay Approach

इस सिद्धांत को सामान्यतः करों से प्राप्त न्याय के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह सिद्धांत दर्शाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को कर अपनी योग्यता के अनुसार अदा करने चाहिए और अपनी योग्यता के रूप में ही अर्थात् (Facility to pay) के अनुसार अदा करने चाहिए। जो कि Ability to pay का सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि जिन लोगों के पास आय या धन है उन्हें अपनी योग्यता के अनुसार आय के एक भाग को करों के रूप में सरकार को अदा करना चाहिए। या फिर आम के अनुसार करों का वितरण करना चाहिए।

Adam Smith has rightly observed, “The subject of every state ought to contribute towards

the spott of the Govt. as early as possible in proportion to their respective abilities in the observations of neglect of this many consist what is called equity of taxation."

यह सिद्धांत उतना ही पुराना है जितना कि लाभ का सिद्धांत है। बहुत ज्यादा अर्थशास्त्रियों द्वारा जैसे, Bodi, Sismondi, J.S. Mill, Wagnar, Roosue etc. ने अपने अनुसार इसमें परिवर्तन किया है। J.S. Mill ने लाभ के सिद्धांत को अस्वीकार किया है और Ability to pay के सिद्धांत को स्वीकार किया है।

जब करों का वितरण इस प्रकार से किया जाता है तो वे लोक न्यायपूर्ण और एक समान होंगे। अर्थात् जब वे समान्य वस्तुओं में एक समान योगदान करते और एक समान व्यय करते हैं तो करों का वितरण न्यायपूर्ण होगा। इस प्रकार करों की अदायगी को समाज के कुल लाभ के रूप में लेकर चलना चाहिए।

Justification for Ability to Pay, Principal of Taxation

इस सिद्धांत को हम तीन आधारों पर वर्गीकृत कर सकते हैं।

1. **समान त्याग (Equal Sacrifice)**

   इसके अंतर्गत प्रत्येक करदाता से एक समान कर (राशि) की आज्ञा की जाती है। प्रत्येक करदाता एक समान कर देकर मनोवैज्ञानिक संतुलित प्राप्त करता है।

   Prof. Dalton Says

   "Sacrifice inter pretions of ability look at the psyclogical utility tax payments upon individual tax payer".

2. **आय की धरती सीमांत उपयोगिता**

   Ability to pay principal का आय की घटती सीमांत उपयोगिता के आधार पर तर्क संगत ठहरा सकते हैं। आय की घटती सीमांत उपयोगिता की धारणा को हमने सामान्य सीमांत उपयोगिता की घटती धारणा से लिया है। आय में अतिरिक्त व द्धि आय की अतिरिक्त उपयोगिता को कम कर देती है। दूसरी तरफ यदि आय को कम कर दिया जाता है तो आय की सीमांत-उपयोगिता बढ़ जाती है। इसलिए यह कहा जाता है कि कर भार को एक समान बनाने के लिए अमीर लोगों पर अधिक मात्रा में कर लगाए जाने चाहिए और उनकी तुलना में गरीब लोगों पर कम कर लगाए जाने चाहिए। गरीब वर्ग को या तो करों से पूरी तरह से छूट दे देनी चाहिए या फिर थोड़ी ही मात्रा में कर लगाने चाहिए।

3. **Interperation of Faculty**

   Ability to pay का तीसरा आधार Faculty Interperation है। यह हमें प्रत्येक व्यक्ति की उत्पादन व उपभोग करने की क्षमता को दर्शाता है। और यह क्षमता उनकी आय या धन की क्षमता के द्वारा दर्शायी जाती है। अपनी सभी आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद जब व्यक्ति के पास विभिन्न तरह के आज के स्रोत शेष रह जाते है तो वह स्थिति उसकी दर देने की योग्यता को दर्शाती है।

According of Prof Habson

"इसे हम आर्थिक आधिक्य भी कह सकते हैं। उसके **आय आर्थिक-आधिक्य** आज का वह भाग है जो कर-भार सहन कर सकता है।"

Faculty में व द्धि के साथ-साथ आर्थिक आधिक्य बढता है। इसके साथ-साथ उसकी कर देने की क्षमता भी बढ़ती है।

Index of Ability of Pay

1. **संपत्ति कर (Property)**

   परम्परावादी अर्थशास्त्रियों में संपत्ति को Ability to pay का मुख्य संकेत माना जाता है। या किसी भी प्रकार की सम द्धि संपत्ति पर निर्भर करती है। लेकिन कुछ कारणों से संपत्ति को Index of Ability के पूरक के रूप में लेकर चलना मुश्किल है। इसके निम्नलिखित कारण हैं।

   (i) संपत्ति आय का मुख्य स्रोत है परंतु यह आय का उत्पादन नहीं करता।
   (ii) संपत्ति से आय लगातार प्राप्त नहीं होती।
   (iii) संपत्ति से आय एक स्थान से दूसरे स्थान पर अलग-अलग हो सकती है।
   (iv) संपत्ति पर कर पूंजी के मूल्य के अनुसार लगाए जाते हैं।

2. **आय**

   औद्योगिक विकास के साथ विश्व-अर्थव्यवस्था में संपत्ति के मुकाबले आय पर ज्यादा दबाव दिया जाता है। इस तरह हम आय को Index to Pay के अन्य महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में लेकर चलते हैं। कर योग्य आय को दर्शाने के लिए कुल आय का प्रयोग न करने शुद्ध आय का प्रयोग किया जाता है।

3. **परिवार का आधार**

   परिवार का आकार भी करदाता की योग्यता को प्रभावित करता है। परिवार के बड़े आकार के साथ कर अदा करने की योग्यता कम हो जाती है। परिवार के आकार को कर-निर्धारण के रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं। लेकिन इसका प्रारंभिक माप के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता।

4. **उपभोग**

   किसी व्यक्ति द्वारा उपभोग पर किया गया व्यय भी उसकी (कर देने की) योग्यता या क्षमता को मापने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

   J. S. Mill, Ining Fisher तथा Prof. Kaldor ने इस सिद्धांत का समर्थन किया है।

According to Prof Kaldor

"Consumption rather than income should be the basis of taxation".

उपभोग भी व्यक्ति के संसाधनों को दर्शाता है। जो व्यक्तिगत प्रयोग के लिए अर्थव्यवस्था को ग्रहण करता है।

Subjective Approach to Measure the ability to pay taxes

कर भार से संबंधित धारणा कर-धारकों के मनोवैज्ञानिक क्रिया पर आधारति है यदि कर भार का समान वितरण करना है तो प्रत्येक करदाता को एक-समान त्याग करना चाहिए। प्रो. J.S. Mill के विचार में प्रत्येक करदाता को कराभार समान अनुपात में वहन करना चाहिए। उन्होंने सुझाव दिया है समान आय वर्ग से संबंधित लोगों को Horizontal Equity के रूप में तथा विभिन्न आय वर्ग के लोगों को Vertical Equity के रूप में कर देना चाहिए।

There are three Interpretations of Equal Sacrifice as noted below:

1. **Equal Absolute Sacrifice**

   यह दर्शाता है कि कुल-उपयोगिता की हानि या Sacrifice अलग-अलग आय वर्ग के करदाताओं को समान रूप से वहन करना चाहिए। इसका अर्थ है कि अमीर-समुदाय से संबंधित लागों को ज्यादा मात्रा में करों का भुगतान करना चाहिए। किसी समय इस-सिद्धांत को सबसे ज्यादा समर्थन दिया जाता था। लेकिन कुछ अर्थशास्त्रियों ने इसको इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि यह कर-नीति Regressive Taxation को दर्शाती हैं वास्तव में **कर की दर** पर निर्भर करती है जब आय में बढ़ोतरी के साथ धन की सीमांत-उपयोगिता कम होती जाती हैं। लेकिन आय बढ़ोतरी के साथ धन की सीमांत-उपयोगिता में कमी को मापा नहीं जा सकता। A : C Pigou के अनुसार, ऊँची आय के साथ ऊँची कर-दर (Progressive Tax) लगाने चाहिए।

2. **Equal-Proportional Sacrifice**

   समान-आनुपातिक त्याग का सिद्धांत यह दर्शाता है कि करों के परिणाम स्वरूप उपयोगिता मैं कमी करदाता की कुल आय के अनुपात में होनी चाहिए। इसके अंतर्गत ऊँची आय वाले करदाता कम आय वाले कर दाताओं से ज्यादा कर अदा करेंगे। लेकिन दोनों पक्षों द्वारा किया गया त्याग समान अनुपात में होगा।

   इसको हम गणीतीय रूप में दर्शा सकते हैं

$$\text{Rate of tax} = \frac{\text{Sacrifice of tax payer x}}{\text{Total income of x}}$$

$$= \frac{\text{Sacrifice of tax payer y}}{\text{Total income of y}}$$

   For such type of taxes, the progressive taxation is possible.

3. **समान-सीमांत त्याग**

   इस सिद्धांत के अुनसार सभी कर-दाताओं द्वारा किया गया त्याग निम्नतम होना चाहिए।

   According to Musgrave

   It is the ultimated principal of taxation".

   यह प्रगतिशील करों की तरफ ले जाता है। Dalton के अनुसार कर दाताओं को कम से

कम नुकसान होना चाहिए। अन्य शब्दों में अलग-अलग कर दाताओं के लिए त्याग की बजाय सीमांत त्याग समान होना चाहिए।

गणितीय प्रस्तुतीकरण

Equal Absolute Sacrifice as

$U(Y) - U(Y - T)$

Equal Proportional Sacrifice as

$$\frac{U(Y) - U(Y - T)}{U(Y)}$$

Equal Marginal Sacrifice as

$U(Y - T)$

Here ⇒ Y = Income, T ⇒ Amount of tax paid

C (Y) ⇒ Total utility obtained from income Y.

इस प्रकार समान त्याग की इन संभव तीन धारणाओं के द्वारा अधिकतम कल्याण या न्यूनतम त्याग को दर्शाते हैं।

Sr. No.	Concept of Sacrifices	Nature of Tax-Structure	Burden of Taxation	
			Lower Income groups	Higher-Income groups
1.	Equal Absolute Scrifice	I as progressive	Highest	Lowest
2.	Equal proportional Sacrifice	More programine	Lower	Higher
3.	Equal Marginal Sacrifice	Highly programine taxation	Lowest	Highest

Diagramatic Representation

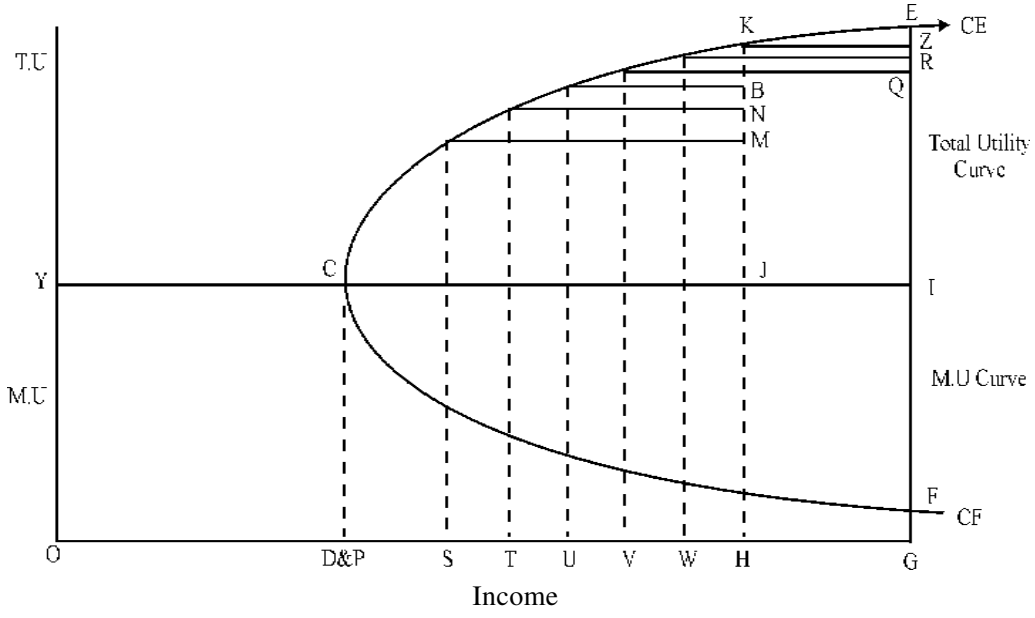

इस चित्र में OD जीवन-निर्वाह आय को दर्शाती है। जबकि D से G तक कर योग्य आय को दर्शाती है। जहाँ OG–A करदाता की आय है तथा DH–B करदाता की है।

T.U $\rightarrow$ A = I $\sum$, M.U. $\rightarrow$ GF (Where T.U. = Total Utility)

B $\rightarrow$ JK (T.U), HL (M.U) PG आयकर है। (M.U. = Marginal Utility)

निरपेक्ष-त्याग के अंतर्गत्

A का भुगतान WG, B 5 का SH और कुल भुगतान PG के बराबर होगा।

A $\Rightarrow$ WG, B $\Rightarrow$ SH, WG + SH = PG,

$\Rightarrow$ **अनुपातिक-त्याग**

A = VG, B = TH, VG + TH = PG

Share of A & B

$$\frac{\sum Q}{\sum I} = \frac{KN}{KJ}$$

$\Rightarrow$ **सीमांत-त्याग के अंतर्गत्**

A = UG, B = VH, UG + VH = PG

The aggregate sacrifice $\Rightarrow$ EQ + KB is least of the minimum.

Subjective Apprach की सीमाएँ

1. सभी लोगों के सीमांत त्याग को समान दिखाना मुश्किल हैं। क्यों कि समान-आय व संपत्ति वाले लोग शायद समान-त्याग ना करें।
2. आय में बढ़ोत्तरी के साथ घटती हुई सीमांत-उपयोगिता को मापना काफी कठिन कार्य है।
3. उपयोगिता व्यक्ति द्वारा कमाई गई आय पर निर्भर करती है। ना कि धन व संपत्ति से प्राप्त आय पर।
4. Subjective approach केवल आदर्शात्मक धारणा है, जो वास्तविकता को नहीं दर्शाती।

Objective Approach

अमेरिकन-अर्थशास्त्रियों ने Sub. approach की कमियों को देखते हुए objective धारणा में कर-निर्धारकों के रूप में लिया है। Seligman ने माना है कि मनुष्य की भावनाओं व पीड़ाओं की बजाय मनुष्य के धन व संपत्ति को कर-निर्धारण के रूप में लेना चाहिए। इसके अंतर्गत कर-उपयोग संपत्ति को कर-दाता की कर देने की क्षमता के लिए प्रयोग किया जाता है।

Index of Ability to Pay

1. Income 2. Property 3. Consumption

Objective धारणा की कमियाँ

1. सामान्यतः संपत्ति पर कर अद्योगामी होता है। जो कम संपत्ति धारकों पर ज्यादा तथा ज्यादा संपत्ति धारकों पर कम होगा।

2. मनुष्य के विभिन्न वर्गों पर कर-निर्धारण की एक-समान मापदंड की कमी है।
3. लोग वास्तविक रूप में सहयोग नहीं करते। वे अपनी आय व संपत्ति का सही वर्णन नहीं देते।

Revenue Maximization

बहुत से सिद्धांतों में अर्थव्यवस्था में Tax के बोझ को किस प्रकार व्यक्तियों पर वितरित किया जाए। इसकी व्याख्या की गई। जिसमें से एक सिद्धांत Finanical Theory है।

"Pluck the goose with as little squealing as possible"

जिसका अर्थ यह है कि सरकार को अर्थिक से अधिक आय प्राप्त करनी चाहिए। और कम से कम खर्च करना चाहिए। जहाँ कहीं से भी संभव है। इसका उद्देश्य यह नहीं था कि करों के बोझ का वितरण सभी पर समान रहें। यह सिद्वांत कालबर्ट के इस सिद्धांत से संबंधित है कि "बत्तख के पर इस प्रकार निकाले जाए कि कम से कम शोर मचाए"। अर्थात् इस सिद्धांत का उद्देश्य अधिक से अधिक आय प्राप्त करना है। तथा कर इस प्रकार से लगाए जाये कि जनता कम से कम विरोध करे।

आलोचनाएँ

यह सिद्धांत अव्यवहारिक तथा अनुचित है। इस सिद्धांत में निम्नलिखित दोष पाए जाते हैं।

(i) इस सिद्धांत के अनुसार कर भार उन व्यक्तियों को वहन करना पड़ेगा, जिसमें विरोध करने एवम् चिल्लाने की शक्ति नहीं है। जो कि असंगत है।
(ii) प्रजातांत्रिक समाज में यह अव्यवहारिक ही नहीं अपितु असंभव भी है।
(iii) वर्तमान में राज्यों का स्वरूप कल्याणकारी है। अतः इस सिद्धान्त को नहीं माना जा सकता।

Benefit-Principle

इस सिद्धांत की मुख्य विशेषता यह है कि सरकार एवं करदाताओं के बीच का संबंध विनिमय पर आधारित हो जाता है। प्रत्येक करदाता सार्वजनिक व्यय के सिलसिले में कर का भुगतान इस व्यय से प्राप्त लाभ के अनुसार करता है। अतः करदाता एवं सरकार के बीच लेन-देन संबंध रहता है। तथा कर-भुगतान ऐच्छिक हो जाता है। बाजार यन्त्र का प्रयोग सार्वजनिक क्षेत्र में भी होता है। यह सिद्धांत 17 वीं शताब्दी के अर्थशास्त्रियों के बीच लोकप्रिय था। तथा राज्य के अभ्युदय के संबंध में सामाजिक -करार (Social Contract Theory) सिद्धान्त का पूरक थां समाजिक करार का मुख्य उद्देश्य सुरक्षा था और कर को इसी सुरक्षा की कीमत समझा गया।

एड्स-स्मिथ के कर के प्रथम सिद्धांत में लाभ तथा करदान-योग्यता दोनों ही सिद्धांतों का संकेत मिलता हैं यह सिद्धांत इस प्रकार से है : "प्रत्येक राज्य की प्रजा को लोक-व्यय के लिए जहाँ तक संभव हो अपनी योग्यतानुसार कर देना चाहिए। यानि राज्य के संरक्षण में प्राप्त सुरक्षा के अनुसार कर देना चाहिए" 19 वीं सदी में इस सिद्धांत की व्याख्या अत्यंत संकुचित रूप में की गई। चूँकि सुरक्षा के बदले में कर का भुगतान किया जाता है। इसलिए लोक-व्यय को सुरक्षा तक ही सीमित रखना चाहिए। लेकिन इस सदी के अंत की ओर इस सिद्धांत के पुनर्जागरण हुआ था इस जागरण से संबंधित

अर्थशास्त्रियों में प्रमुख वे इटली के पैन्टेलियोनी, मैजोला, स्वीडेन के विकसेल एवं लिण्डल की स्वैच्छिक विनिमय धारणा के साथ इस जागरण की समाप्ति हो गई। लिण्डन की धारणा इतनी महत्वपूर्ण है कि इसका विवरण देना उचित होगा।

Lindahl Model (1919)

कर में न्याय को प्राप्त करने के लिए लिण्डल ने समस्या को दो वर्गों में विभाजित किया है।

सामाजिक राजनीतिक समस्या : इसके अन्तर्गत आय के उचित वितरण की समस्या का समाधान खोजा जाता है।

1. **सामाजिक राजनीतिक समस्या**
2. **पूर्णतः राजकोषिय समस्या :**

   आय के वर्तमान वितरण में परिवर्तन किए बिना ही सार्वजनिक आवश्यकता की संतुष्टि के प्रबन्ध की समस्या।

   लिण्डल में अपने को दूसरी समस्या के साथ ही संबंध किया। उपभोक्ता के अधिमान के आधार पर इस समस्या के समाधान के लिए निम्न तीन प्रक्रियाओं की जरूरत हैं।

   (i) लोक व्यय एवं कर की कुल मात्रा का निधारण।

   (ii) सार्वजनिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं के बीच कुल लोक व्यय का आबंटन।

विण्डल का कहना है कि जिस प्रकार बाजार मे संयुक्त उत्पत्ति की वस्तुओं का मूल्य-निर्धारण होता है। उसी प्रकार दूसरी समस्या अर्थात् पूर्णतः राजकोषीय समस्या का समाधान हो सकता हैं इन वस्तुओं के संबंध में दर्शाया कि इनका मूल्य लागत के अनुसार तय नहीं होता। बल्कि मांग के अनुसार होता है। यह मान लें कि सिर्फ एक ही प्रकार की सर्वाजिक वस्तु का उत्पादन होता है तथा दो ही करदाता A एवं B हैं। इस वस्तु की पूर्ति जितनी भी मात्रा में हो ये दोनों करदाता इसकी पूरी लागत को वहन करेंगे।

चित्र में सार्वजनिक वस्तु के लिए A का मांग वक्र aa है। जबकि B का मांग वक्र bb है। इन वक्रों के आधार पर हम यह जान सकते हैं कि कुल लागत का कितना प्रतिशत A तथा B वहन करने के लिए प्रस्तुत हैं। इस वस्तु की सीमांत उपयोगिता घटती है। यदि इस वस्तु की ON मात्रा का उत्पादन हो तो A इसकी पूरी लागत अर्थात् 100 प्रतिशत वहन करने के लिए तैयार है। दोनों संयुक्त रूप से कुल-लागत का 185% देने को तैयार हैं।

दूसरी और यदि ON^1 मात्रा में उत्पादन हो तो A 30% तथा B 27% वहन करने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार दोनों मिलकर कुल-लागत का सिर्फ 57% ही वहन करने को तैयार होते हैं। संतुलन C बिंदु पर सथापित होता है। क्योंकि इस बिंदु पर इस वस्तु करदाता मिलकर वहन करने के लिए तैयार है। (A – 48% तथा B – 52% लागत करते हैं।

लिण्डल के उपयुक्त समाधान के प्रति Musgrave ने कई आपतियाँ उठाई हैं। जो कि इस प्रकार हैं।

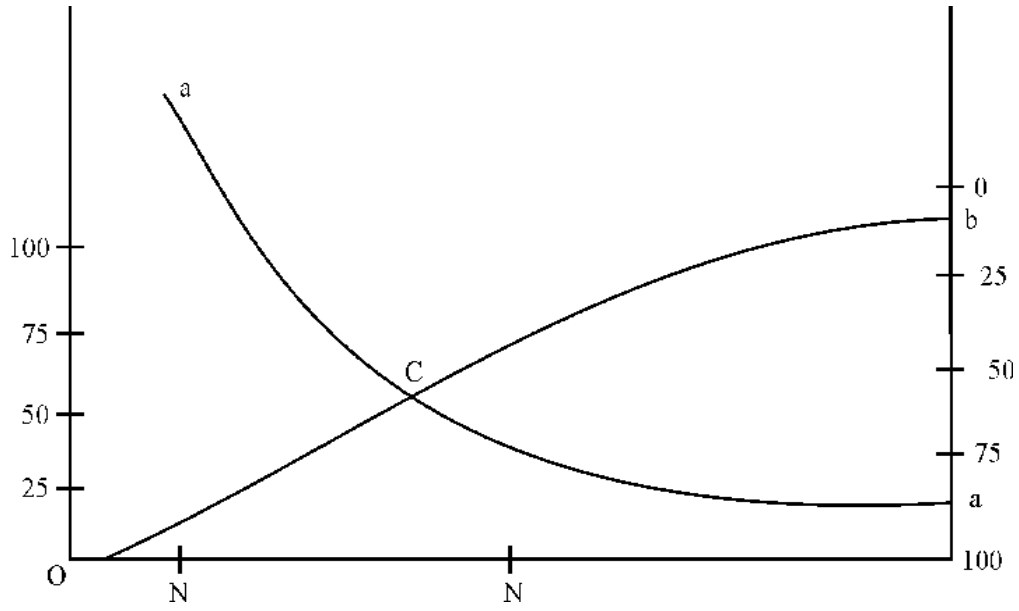

1. इस समाधान में नहीं बताया गया कि बिंदु C किस प्रकार प्राप्त होता है।
2. ऐसा मान लेना उचित नहीं है कि करदाता कीमत पर परिमाण में होने वाले परिवर्तन पर ध्यान नहीं देता है। यदि मान लिया जाए कि परिमाण का प्रभाव कीमत पर पड़ता है तो उन्नत्ति एवं लागत का बंटवारा मोलभाव द्वारा होगा और संतुलन C बिंदु पर स्थापित नहीं हो सकता।
3. जब अनेक उपभोक्ताओं के विषय में विचार किया जाता है तब कर-भुगतान एवं सार्वजानिक वस्तु के उत्पादन की समस्या पर करदाता एक साथ विचार नहीं करते। Seldon के Survey से ज्ञात होता है कि 32 से 87% ब्रिटिश करदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि मुख्य समाज-सेवाओं पर और अधिक खर्च किया जाना चाहिए। लेकिन उन्हीं में से 88% करदाताओं का विचार था कि कर का भार बहुत अधिक है।

यह ऐसी स्थिति है जहाँ उपभोक्ताओं के अधिमान स्पष्ट नहीं हैं। अतः ऐच्छिक-योगदान की मान्यता गलत प्रमाणित होती है।

Bowen Model (1948)

1948 में बोवेन ने लिण्डल के सिद्धांत को अधिक सरल रूप में रखने का प्रयत्न किया। उसको रेखाचित्र मे दिखाया गया है।

यह मानकर चलते हैं कि एक सार्वजनिक वस्तु तथा दो करदाता A और B हैं। चित्र में aa करदाता A का सार्वजनिक वस्तु के लिए मांग वक्र है। जबकि B का मांग वक्र bb है। कुल मांग वक्र a + b है। $a^1 + b^1$ पूर्ति वक्र है। सार्वजनिक वस्तु की लागत से हमें निजी वस्तुओं की मात्रा को समझ सकते हैं। जिसका उत्पादन सार्वजनिक वस्तुओं की उत्पत्ति के कारण नहीं हो सकता। इसलिए $a^1 + b^1$ एक और सार्वजनिक वस्तु का पूर्ति वक्र और दूसरी और निजी वस्तु का मांग

वक्र है। a + b और $a^1 + b^1$ के काटने से कुल-राष्ट्रीय आय OX का विभाजन सार्वजनिक और निजी वस्तु के बीच ज्ञात होता है। OE मात्रा मे सार्वजनिक वस्तु तथा EX मात्रा में निजी वस्तु का उत्पादन होता है।

रेखाचित्र से यह भी पता चलता है कि OE मात्रा में सार्वजनिक वस्तु के उत्पादन की कुल लागत

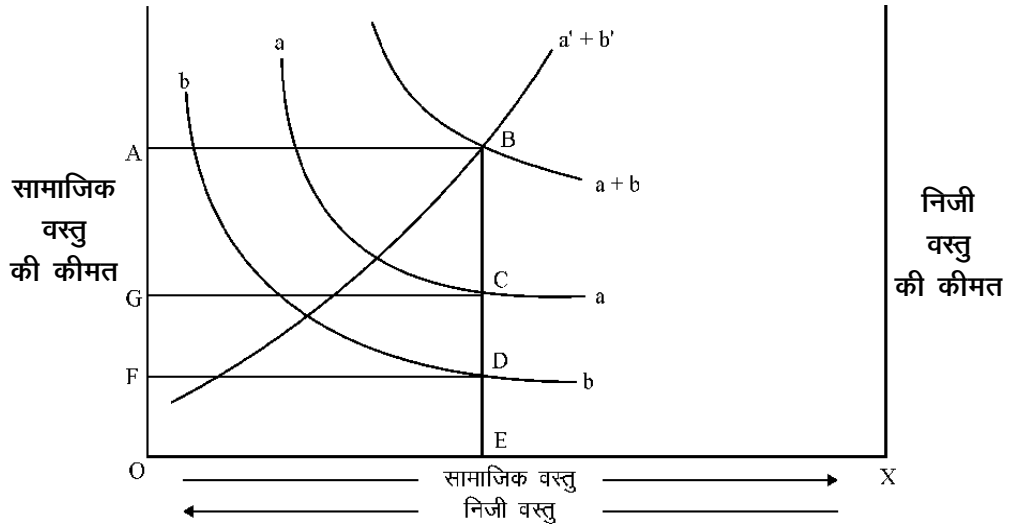

है किसी तथा इसका विभाजन A और B के बीच कैसे होता है। OE मात्रा की है उत्पत्ति के लिए ABEO क्षेत्र के बराबर राजस्व की आवश्यकता है। इसका वितरण A और B के बीच उनके मांग वक्रों के आधार पर होता है। अतः A कुल-लागत का GCEO तथा B इसका FDEO के बराबर भुगतान करने के लिए तैयार हैं। एवं ABEO = GCEO + FDEO।

Usefulness of Benefit Theory

उदारवादी अर्थशास्त्री लाभ के सिद्धांत को इस हद तक उपयोग करना चाहते हैं कि बाजार में बिकने वाली सभी वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन निजी क्षेत्र में होना चाहिए तथा राज्य का काम केवल शुद्ध-सार्वजननिक वस्तुओं (Pure Public Goods) का उत्पादन करना है। ऐसी वस्तुओं को सामाजिक-वस्तु कहा जाता है। ये Merit Goods से भिन्न हैं सामाजिक वस्तुओं का उत्पादन सिर्फ राज्य द्वारा ही होना चाहिए क्योंकि इनके उपभोग मे प्रतिद्वन्द्विता का अभाव होता है इनमें Exclusion Principle लागू नहीं होता है और इनसे प्राप्त लाभ बाह्य होते हैं। यह मानना भी ठीक नहीं हैं कि एक बड़े क्षेत्र में सामाजीकरण किया जाए। आमतौर पर यह माना जाता है कि स्वास्थ्य एवं शिक्षा राज्य को ही प्रदान करना चाहिए।

सीमाएँ

सामान्य रूप से इस सिद्धांत में कठिनाईयाँ पाई जाती हैं। जो कि इस प्रकार से है -

1. लोग हमेशा सार्वजनिक-वस्तुओं के लिए अपने अधिमान को सही-सही व्यक्त नहीं करते। उपभोक्ताओं की संख्या में व द्धि के साथ-साथ यह कठिनाई बढ़ती जाती है।

2. सार्वजनिक सेवा के लाभ में उपभोक्ता अधिमान देने में अन्नभिज्ञ होते हैं तो बाह्यताएँ मिलने के कारण यह कठिनाई और भी अधिक बढ़ जाती है।
3. Prof. Arrow का कहना है कि उपभोक्ताओं के स्वतंत्र चयन के आधार पर सामाजिक कल्याण फलन को निर्धारित करने में संक्रमकता आवश्यक है। लेकिन वास्तविक विश्व में असंक्रमकता की संभावना अधिक रहती है।
4. यदि यह मान लिया जाए कि सरकार को निर्धनों की सहायता करनी चाहिए। तो करारोपण के सामान्य सिद्धांत का निरूपण लाभ के सिद्धांत के अनुसार नहीं किया जा सकता। अर्थात् वितरण की समस्या का समाधान इस सिद्धांत द्वारा नहीं किया जा सकता है।
5. आजकल वित्तीय नीति के क्षेत्र में स्थिरता एक महत्वपूर्ण उद्देश्य हो गया है। लेकिन बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए लोक-व्यय का राजस्व से अधिक होना आवश्यक है ताकि प्रभावी मांग में व द्धि की जा सके। और प्रभावी मांग के संदर्भ में लाभ का सिद्धांत बेकार है।

अध्याय - 19

कराभार का विश्लेषण

(Analysis of Incidence of Taxes)

कराभार

कराभार के अभिप्राय कर के अंतिम भार से है। इसे मौद्रिक भार के रूप में माना जाता है। कर के अंतिम भार को ही Incidence कहते हैं। परंतु यह परम्परागत द ष्टिकोण है। क्योंकि इसमें Indcidence का संबंध केवल करों के प्रभाव से है। Musgrave ने इसे आर्थिक-करापात कहा है। जबकि कर के तुरन्त भार को Musgrave ने वैधानिक करापात बताया है।

Musgrave ने Incidence की धारणा की विस्तुत व्याख्या की है। उनके अनुसार Incidence की धारणा में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि अर्थव्यवस्था पर बजट का क्या प्रभाव पड़ता है। Budget Policy से हमारा अभिप्राय कर-नीति और व्यय-नीति से है। बजट-नीति का देश में उत्पादन साधनों के हस्तांतरण तथा वितरण पर प्रभाव पड़ता है। जब भी सरकार खर्च करती है तो Tax लगाती है। उसका उत्पादन पर, वित्त व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। परंतु Incidence of Taxation की धारणा में Musgrave के अनुसार बजट-नीति अर्थात् व्यय नीति और कर नीति में परिवर्तन का वितरण पर प्रभाव देखा जाता है। बजट नीति से अभिप्राय सार्वजनिक व्यय और करों में परिवर्तन का अर्थव्यवस्था पर तीन रूपों में प्रभाव पड़ता है। जैसे उत्पादन पर प्रभाव, वितरण पर प्रभाव।

Musgrave की धारणा से संबंधित पाँच धारणाएँ हैं:

1. **Specific-Tax-Incidence**

   सार्वजनिक व्यय को स्थिर रखते हुए यदि एक विशेष कर में परिवर्तन किया जाता है। तो उसका वितरण पर प्रभाव पड़ता है। उसे Specific Tax Incidence कहते हैं।

   उदाहरण के तौर पर-यदि आय कर में व द्धि की जाती है तो खर्च करने पर वह आय कम हो जाती है जिससे कुल मांग कम होगी और मन्दी की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। यदि आय कर कम कर दिया जाता है तो खर्च करने योग्य आय बढ़ जाएगी और कुल मांग में ज्यादा तेजी की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

अतः इसके अंतर्गत यह देखा जाता है कि कर में परिवर्तन से तेजी और मंदी आती है और इससे वितरण पर भी प्रभाव पड़ता है। जैसे तेजी में वितरण असमान हो जाता है।

2. **Differential-Tax-Incidence**

यदि सार्वजनिक व्यय को स्थिर रखा जाता है और एक कर के स्थान पर दूसरे कर का स्थानांतरण किया जाए और दोनों करों से आय समान रहे तो इसका वितरण पर जो प्रभाव पड़ता है उसे Differential Tax-Incidence कहते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि 10 लाख रुपये आयकर कम कर दिया जाए और 10 लाख रुपये सिग रहे पर उत्पादन बढ़ा दिया जाए तो इसका वितरण पर, तम्बाकू पैदा करने वालों पर भी प्रभाव पड़ेगा। परंतु आयकर कम होने से सिगरेट की मांग बढ़ेगी, वास्तव में Musgrave ने इसे ही सर्वोत्तम माना है। कर लागते समय इसी धारण का सबसे अधिक प्रयोग होता है।

3. **Specific-Expenditure Incidence**

इसमें कर की मात्रा, कर का फार्मूला, कर की दर स्थिर रखे जाते हैं। इस स्थिति में सार्वजनिक-व्यय में परिवर्तन का वितरण पर जो प्रभाव पड़ता है उसे Specific-Expenditure Encidence कहते हैं। उदाहरणतया यदि सार्वजनिक व्यय में व द्धि की जाती है तो लोगों की आय बढ़ेगी जिससे करों पर प्राप्त आय भी बढ़ेगी लेकिन आय में व द्धि की अपेक्षा करों से प्राप्त आय कम होगी। इससे खर्च करने योग्य आय बढ़ जाएगी। जिससे फिर मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न होगी। यदि व्यय को कम कर दिया जाए तो मंदी की स्थिति उत्पन्न होगी। इस स्थिति में वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों को Specific Expenditure-Incidence कहते हैं।

4. **Differential Expenditure-Incidence**

इसमें कर की दर परिवर्तित नहीं होती। Tax-Formula भी वही रहता है। सार्वजनिक व्यय में भी इस तरह से परिवर्तन होता है कि मंदी और तेजी की स्थिति उत्पन्न नहीं होती, क्योंकि कुल व्यय तो उतना ही किया जाता है। परंतु Items पर होने वाला व्यय बदल दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर खर्चा तो 10 करोड़ है लेकिन शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि आदि पर होने वाले व्यय में परिवर्तन कर दिया जाता है। यहि Differential Expenditure Incidence है। Musgrave के अनुसार इस धारणा का महत्व कम है। क्योंकि Incidence का संबंध व्यय में परिवर्तन की अपेक्षा करों मे परिवर्तन से अधिक है।

5. **Balance Budget Incidence**

जब करों में परिवर्तन और सार्वजनिक व्यय में परिवर्तन इस प्रकार से हो कि इनमें आपस में संतुलन हो अर्थात Budget-Balance हो तो इसे Balance-Budget-Incidence कहते हैं। इसके वितरण पर पड़ने वाले प्रभाव को उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

मान लो एक करोड़ का सार्वजनिक-व्यय किया जाता है। और एक करोड़ के ही कर लगा दिये जाते हैं। तो इस स्थिति में वितरण पर पड़ने वाले प्रभाव को Balance-Budget-Incidence कहते हैं। परंतु इसमें यह नहीं पता लगता कि वितरण पर व्यय में परिवर्तन का कितना प्रभाव पड़ता है और भार में परिवर्तन का कितना प्रभाव पड़ता है।

Measuement of Incidence or Burden Impact from Sources and user side :

पुराने अर्थशास्त्रियों ने प्रसारित सिद्धांत और केंद्रीयकृत सिद्धांत दिए हैं। परंतु Musgrave के अुनसार आज कर-स्थिति ऐसी नहीं है। Budget नीति का प्रभाव समाज के विभिन्न वर्गों पर किसानों, व्यापारियों, विद्यार्थियों आदि पर पड़ता है। वास्तव में प्रत्येक व्याप्त पर कितना प्रभाव पड़ेगा, उसका हमें माप करना कठिन है। इसलिए व्यक्तियों को विभिन्न वर्गों में बाँट कर उस पर कर के भार को मापने का प्रयास किया जाता है।

उदाहरण के तौर पर-उच्च-आय-वर्ग पर प्रभाव, निम्न आय-वर्ग पर प्रभाव आदि। विभिन्न वर्गों पर करापात कितना होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि करों के कारण उनकी खर्च करने योग्य वास्तविक आय पर क्या प्रभाव पड़ेगा। D R Y पर प्रत्यक्ष करों जैसे आय करों का भी प्रभाव पड़ता है और अप्रत्यक्ष करों का भी प्रभाव पड़ता है। इसका अध्ययन हम इस प्रकार कर सकते हैं कि करों का भार D R Y पर क्या पड़ता है।

$$D\ R\ Y = \frac{E - Ty}{P + Ts}$$

Here Ty ⇒ कुल आय

Ts ⇒ Sale Tax.

इस प्रकार ⇒ P + TS = gp (Gross-Price)

$$\frac{E - Ty}{gP}$$

Here ⇒ E ⇒ Earn Income

TY ⇒ Income Tax

P ⇒ Price

TP ⇒ Produce Tax

DY ⇒ Disposable- Income

gp ⇒ Gross-Price

इसलिए करापात कितना होगा ये इस पर निर्भर करेगा कि दोनों प्रकार के करों से DRY में कितना परिवर्तन आता है। करों में परिवर्तन के प्राथमिक प्रभाव के कारण E - TY में परिवर्तन आता है तथा यदि TS में परिवर्तन होता है तो उपभोग में भी परिवर्तन आता है। प्रत्यक्ष करों में परिवर्तन के प्रभाव को प्राथमिक प्रभाव कहा जाता है। जबकि अप्रत्यक्ष करों के कारण जो प्रभाव पड़ता है उसे User Side प्रभाव कहते हैं अर्थात् द्वितीय प्रभाव या गौण प्रभाव कहते हैं। अतः स्पष्ट है कि DRY मे परिवर्तन विभिन्न करों से होता है। इसके अतिरिक्त DRY इस बात पर भी निर्भर करेगी कि किस प्रकार के कर लगाए जा रहे हैं। यह इस बात पर भी निर्भर करेगा कि विभिन्न वर्गों की DRY से क्या परिवर्तन हो रहा है।

उदाहरणतयाः यदि विक्री कर लगाया जाता है तो गरीबों की DRY कम होगी।

Incidence का विस्त त माप करने के लिए यह देखा जाता है कि कर लगाने से पहले वितरण की स्थिति क्या थी और कर लगाने के बाद क्या हो गई है? यदि कर लगाने के बाद वितरण असमान हो गया है तो Incidence ज्यादा हो जाता है। अगर वितरण से समान हो जाता है तो करापात भार कम होगा। अतः इसे रेखाचित्र द्वारा समझा जा सकता है।

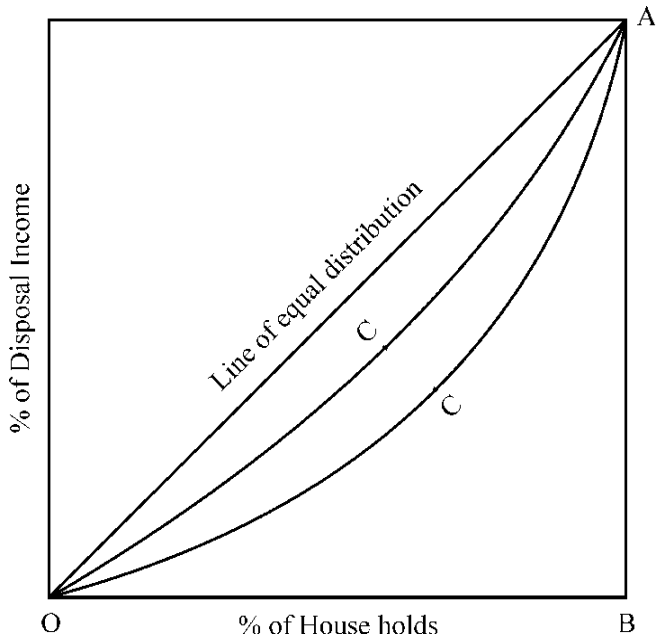

Diagram में OA रेखा Equal-distribution को बताती है। कर-लगाने से पहले समाज OCA पर है। कर लगाने के बाद समाज OC^1A पर आ जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि वितरण समान हो गया है। कर लगाने के कारण रेखाचित्र OCAB, OAB Equality का सूचक हैं। कर लगने के बाद रेखा OC^1A हो जाती है। जिससे Equality Index इस प्रकार होगा।

जो $\frac{OC'AB}{oAB}$ से ज्यादा है। इस प्रकार कर के विवर्तन का प्रभाव प्रगतिशील हुआ है।

$$\frac{OC'AB}{oAB} > \frac{OCAB}{oAB}$$

इससे पता चलता है कि इसका करों पर क्या प्रभाव पड़ता है। इससे इस Curve या रेखाचित्र की सहायता से माप सकते हैं।

अध्याय - 20

कुशल कर निर्धारण : इष्टतम कराधान

(Efficient Tax Design : Optimal Taxation)

करों का Optimal Mix इस समय होता है जब सभी करों का Excess Burden Minumum हो। अनेक कर हो सकते हैं जिससे हम Optimum-Tax Mix का निर्माण कर सकते हैं लेकिन इसके बावजूद भी अनुकूलतम स्थिति उत्पन्न न हो तो हमें Second-Best पर निर्भर रहना पड़ सकता है। इसके बावजूद भी अर्थशास्त्री प्रयास कर रहे हैं जिसमें Optimal Taxation की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी परंतु यह कठिन कार्य है। इसके लिए सभी वस्तुओं और सेवाओं की Elasticity of Demand और Elasticity of Substitution का पता होना चाहिए। लेकिन इनका भी पता लगाना कठिन कार्य है। इससे अनेक कर की दरें होगी। उसके लिए हम एक ही दर लगाते हैं।

अतः Second-Best पर ही संतुष्ट होना पड़ता है। परंतु Optimal Tax का आधार क्या हो अर्थात् Optimal Tax हम किसे कहेंगे। इसको जानने के लिए जरूरी है -

A) Administrative Cost & Compliance Cost should be Minimum.

B) Equality in Taxation

C) No-Efficiency Cost.

Excess-burden हो इनको ध्यान में रखकर हम करों का ऐसा मिश्रण बना सकते हैं जो Ideal हो अर्थात् प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कर और विभिन्न दर इस प्रकार से हों कि ये तीनों शर्तें पूरी हो जाए तभी Optimal Mix Tax कहलाएगा। परंतु वास्तव में ऐसा नहीं होता। इस प्रकार Optimal-Mix Tax का निर्माण इन तत्वों के आधार पर किया जा सकता है अर्थात् ये बातें Optimal Tax के लिए जरूरी है। **जो कि इस प्रकार से है -**

1. **Excess-Burden Minimum हो:**

   Optimal Tax Mix के लिए आवश्यक है कि जिससे करों का मिश्रण इस प्रकार हो कि Excess-Burden Minimum हो। अनेक प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कर लगाए जा सकते हो। कर इस तरह से लगाए जाने चाहिए तथा उनकी दर इस प्रकार से हो कि विभिन्न दरों का Burden समान हो।

   दूसरे शब्दों में कर इस प्रकार लगाए जाए कि प्रत्येक कर का सीमांत Excess Burden

समान हो या बराबर हो या फिर, प्रत्येक वस्तु पर लगाए गए कर के आखिरी डालर का भार बराबर हो अर्थात् Narginal Sacrifice का ध्यान रखा जाए।

2. **Difference Circumstances and Optimal Taxes:**

अर्थशास्त्रियों द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में करों के बारे में नियम बनाए हैं। विभिन्न परिस्थितियों की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है।

(a) यदि विभिन्न वस्तुएँ स्थानापन्न हो तो सब पर मूल्य-अनुसार एक जैसा कर लगाना चाहिए।

(b) **Ad-Valoreon के अनुसार:** यदि वस्तु और Laisure के बीच में स्थानापन्न हो तथा वस्तुओं के मध्य में आपस में न हो तो मांग की लोच के अनुसार कर लगाया जाए।

(c) Goods or Laisure के बीच दोनों में एक साथ स्थानापन्न हो सकता है इसलिए कर लगाते समय Elasticity of Substitution को ध्यान में रखा जाए। Laisure पर भी कर लगाया जा सकता है। जैसे - Boating पर कर।

3. **Adminstration Cost Minimum:**

इससे अभिप्राय है कि ऐसे Tax लगाए जाए कि जिसे एकत्रित करने से सरकार का खर्च कम हो। दूसरे शब्दों में Cost Minimum हो और Revenue-Maximum हो सके। क्योंकि सभी देशों में प्रशासनिक लागतें, कम्प्यूटर पर कर्मचारियों पर, बिजली पर, कार्य पर खर्च होती है। जैसे अमेरिका में 20 अरब $ A.C. लागते हैं। इसके लिए यह भी जरूरी है कि केंद्र और राज्यों में तालमेल हो।

4. **Compliance-Cost:**

इससे अभिप्राय है जो करदाता कर लगाते हैं उस पर जो कर चुकाते हैं वह Compliance Cost है। जैसे C.A. की फीस, समय खर्च, वकील की फीस, तेल खर्च आदि।

अमेरिका में एक व्यक्ति एक वर्ष में 91.7 घण्टे लगाता है और प्रति व्यक्ति $ 975 लागत आती है इसी तरह ही भारत में 3½ करोड़ करदाता हैं। इसलिए कर प्रणाली सरल होनी चाहिए।

5. **According to Lefter:**

करों का थैला ऐसा बनाया जाए जिससे कर-प्रणाली अच्छी हो। Burden कम से कम हो। लोगों पर ज्यादा भार ना पड़े। इस संबंध में अमेरिकन अर्थशास्त्री Lefter ने कराधान से संबंधित एक धारणा दी है। उनके अनुसार ये जरूरी नहीं कि ज्यादा आय प्राप्ति के लिए कर की दर भी ज्यादा हो। क्योंकि कर की एक ऐसी देर होती है। जिस पर Revenue Maximum होता है। जिसे कि रेखाचित्र द्वारा दिखाया गया है।

रेखाचित्र में दिखाया गया है कि $\frac{PT}{OR}$ वह कर की दर है, जिस पर Revenue Maximum है। अतः विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर इस दर से लगाने चाहिए Revenue Maximum तथा Excess Burden Minimum हो। लेकिन यह कठिन काम है।

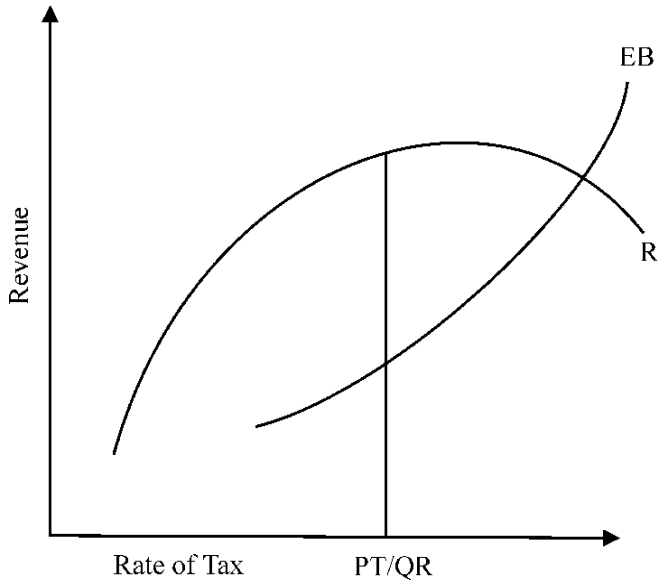

6. **Mixture of Direct & Indirect Taxes:**

देश में विभिन्न प्रकार के Direct or Indirect Tax लगाए जाते हैं इससे हमें यह पता चलता है कि जो प्रत्यक्ष कर हैं जो अप्रत्यक्ष करों की तुलना में अच्छे होते हैं। जैसा कि रेखाचित्र में दिखाया गया है।

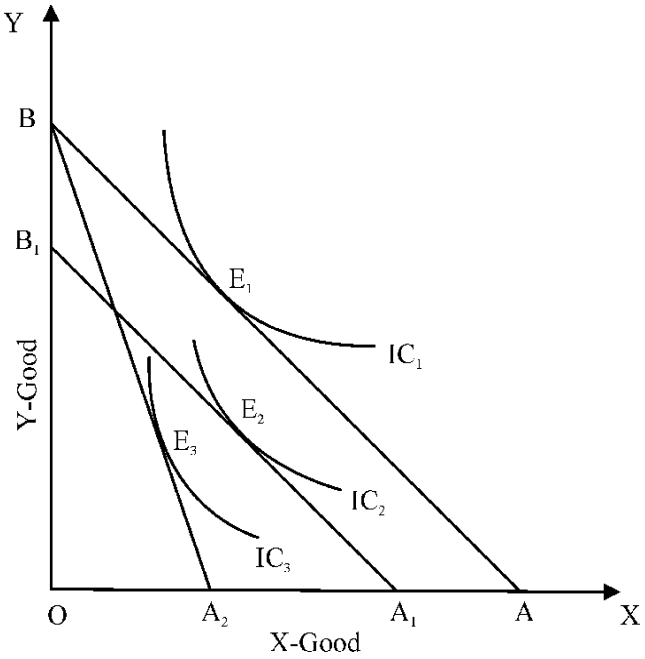

BA Price Line और संतुलन E_1 बिंदु पर है। प्रत्यक्ष कर लगाने से आय कम हो जाती है। जिससे नया संतुलन बिंदु E_2 हो जाता है। पता चलता है कि इस स्थिति में प्रत्यक्ष कर लगाने से नुकसान होता है। और IC_1, IC_2 पर पहुँच जाता है। और दूसरी तरफ यदि इतनी ही आय अप्रत्यक्ष कर लगाने से एकत्रित करते हैं तो इसकी मात्रा कम कर दी जाएगी

और नई रेखा BA_2 हो जाएगी। और नया संतुलन बिंदु IC_3 के E_3 Point पर होगा। इससे स्पष्ट होता है कि अप्रत्यक्ष करों की तुलना में प्रत्यद्रा कर अच्छे होते हैं।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हमारे Bag में प्रत्यक्ष कर हो या फिर सरकार सारे प्रत्यक्ष कर लगाए। क्योंकि अप्रत्यक्ष कर भी लगाने पड़ते हैं। इसलिए देश की परिस्थिति के अनुसार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करों का ऐसा मिश्रण हो जिससे न्यूनतम Excess Burden हो।

7. **Tax as Correct Market Imperfection:**

Market Imperfection से Inefficiency अर्थात् उत्पादन कम और कीमत ज्यादा होती है। तो इसके लिए करों की सहायता से Efficiency लाई जा सकती है। उदाहरणतया - यदि ऐसे कर लगाए जाए जिससे एकाधिकार की स्थापना न हो तथा जिन कार्यों के External Benefit ज्यादा हों। जैसे शिक्षा का विस्तार, Polio-Voccine, उन पर कम कर लगाए जा सकते हैं। इस प्रकार देश में ऐसे करों का मिश्रण होना चाहिए जो अधिकतम लाभ और न्यूनतम कष्ट लाते हों और Inefficiency को दूर करते हुए उत्पादन में व द्धि ला सके।

8. **Distribution Effect:**

ऐसे करों का मिश्रण लगाया जाए जिससे वितरण पर अनुकूल प्रभाव पड़े। क्योंकि यह भी पता लगाना आवश्यक है कि अंतिम भार किस पर पड़ता है और इसका वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस कार्य के लिए Social Welfare Function का प्रयोग किया जा सकता है। अर्थात् ऐसे कर लगाए जाए, जिनका अमीरों पर भार ज्यादा और गरीबों पर कम भार हो। तथा जिन वस्तुओं की मांग की लोच कम हो उनका प्रयोग अमीर व्यक्ति करते हैं। उन पर अधिक कर लगाए जाएँ तथा जिन वस्तुओं का प्रयोग गरीब व्यक्ति करते हैं उन पर कम कर लगाए जाएंगे क्योंकि माँग जितनी कम लोचशील होगी, उतना ही Excess-Burden भी कम होगा।

इसे भी चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता रेखाचित्र में DD मांग वक्र है। और ABE भाग

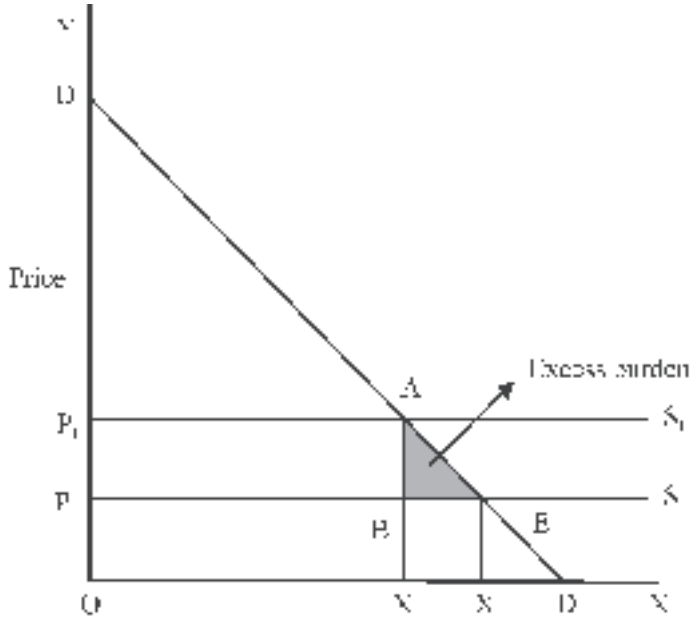

Excess-Burden को बताता है। इसलिए उन वस्तुओं पर कर लगाना चाहिए, जिनका प्रयोग अधिक व्यक्ति करते हैं तथा जिनकी मांग उनके लिए कम लोचशील है।

9. **According to Various Theory of Taxation:**

कराधान विभिन्न सिद्धांतों के अनुसार होना चाहिए जैसे लाभ का सिद्धांत, प्रगतिशीलता का सिद्धांत आदि के अनुसार। जब विभिन्न प्रकार के कर लगाए जाएंगे तो इससे कराधान में Equity भी आएगी और Excess-Burden भी कम होगा।

10. **Careful Application of Concept of Excess Burden:**

Excess-Burden की धारणा एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसका Partial or General equilibirum. का अध्ययन करने पर हम अनेक निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। जैसे -

यदि एक वस्तु पर कर लगाया जाता है जैसे - बिक्री कर, उससे वस्तुओं का चुनाव भंग हो जाता है। जब दोनों वस्तुओं पर कर लगाए तो चयन भंग नहीं होता। इसके अतिरिक्त आयकर और General-Consumption Tax वस्तुओं और आराम के बीच चुनाव को भंग करता है। Excess-Burden प्रगतिशील करों का आनुपातिक करों से ज्यादा होता है और यदि मांग कम लोचशील है तो Excess-Burden कम होता है।

इस प्रकार कर लगाते समय Excess-Burden की धारणा का ध्यानपूर्वक प्रयोग करना चाहिए और प्रयास यह हो कि कर या कर प्रणाली Economic-Efficient हो जिससे Efficiency की तीनों शर्तें पूरी हों।

अध्याय - 21

करों का कार्यक्षमता पर प्रभाव

(Effects of Taxation on Work Effort)

करों का अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव होता है यह जानने के लिए परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार करों का प्रभाव तटस्थ होता है। क्यों कि वो Laissez Faire Policy पर विश्वास करते थे। देश की अर्थव्यवस्था पर विभिन्न आर्थिक-क्रियाओं और तत्वों पर प्रभाव पड़ता है। जिसे कि हम Work Effort पर करों के प्रभाव को देखते हैं।

काम करने की इच्छा पर प्रभाव

काम करने की इच्छा से अभिप्राय है, अधिक आय प्राप्त करने के लिए काम करने की इच्छा। प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों प्रकार के कर, करदाता की आय को कम कर देते हैं। इसलिए करारोपण का काम की इच्छा पर पड़ने वाला प्रभाव करदाता की आय मांग सापेक्षता (Income Elasticity of the Taxpayer) पर निर्भर करता है।

आय की माँग सापेक्षता तन प्रकार की होती हैं :

(i) **आय की शून्य मांग सापेक्षता:** निर्धन-व्यक्तियों की मांग सापेक्षता लगभग शून्य होती है। वे अपने निम्न-जीवन स्तर को बनाए रखने के लिए उपभोग के वर्तमान स्तर में किसी भी प्रकार की कमी करना नहीं चाहते। करारोपण के फलस्वरूप उनकी वास्तविक आय अथवा क्रय-शक्ति कम हो जाती है। इससे वे अपने उपभोग के वर्तमान स्तर को कायम नहीं रख सकेंगे क्योंकि बचत भी नहीं होती है। इसलिए उन्हें वास्तविक आप को स्थिर रखने के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। जिसके फलस्वरूप उनकी मौद्रिक आय में व द्धि होगी। इसलिए करारोपण के कारण व्यक्तियों की काम करने की इच्छा बढ़ती है तथा उत्पादन में भी व द्धि होती है।

(ii) **आय की इकाई से अधिक मांग-सापेक्षता:** धनी व्यक्तियों की आय की मांग-सापेक्षता इकाई से अधिक अर्थात् लोचदार होती है। ऐसे व्यक्तियों की काम करने की इच्छा में करारोपण के कारण सामान्यतः व द्धि नहीं होती क्योंकि धनी व्यक्ति अपनी बचत कम करके अपने खर्च को वर्तमान स्तर पर बनाए रख सकते हैं। इस स्थिति में करारोपण के कारण खर्चे में होने वाली व द्धि को पूरा करने के लिए उनमें अधिक काम करने की इच्छा नहीं होगी।

यह तो हो सकता है कि करारोपण के कारण वे अपने खर्च में होने वाली व द्धि को पूरा करने के लिए अधिक आय प्राप्त करना चाहते हों। परंतु धनी व्यक्तियों के लिए अधिक आय प्राप्त करने के लिए अधिक काम करके उत्पादन बढ़ाना जरूरी नहीं है। वे एकाधिकार प्रव त्तियों में व द्धि करके अथवा लाभ की मात्रा बढ़ाकर आय बढ़ा सकते है।

(iii) **इकाई के बराबर आय की मांग सापेक्षताः** मध्यम आय वाले व्यक्तियों की आय की मांग-सापेक्षता इकाई के बराबर होती है। उनके काम करने की इच्छा पर करारोपण का प्रभाव उनके परिवारों की दशाओं, आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कुछ परिवारों में, परिवार के अन्य सदस्य जैसे स्त्रियाँ भी काम करना शुरू कर सकती हैं, परिवारों के आय उपार्जन करने वाले सदस्य अधिक काम कर सकते हैं। जैसे पार्ट-टाईम काम करना, ओवर टाईम करना, Tution etc. इसलिए प्रायः मध्यम आय वाले व्यक्तियों की काम करने की इच्छा करारोपण के कारण बढ़ती है।

इस प्रकार हमने देखा कि विभिन्न कर श्रम की पूर्ति को प्रभावित करते हैं। कर लगने से यदि कोई व्यक्ति काम के बदले आराम करता हैं तो प्रतिस्थापन प्रभाव होता है। मान लो कि एक व्यक्ति आराम के बदले काम करता है। तो यह काम का प्रतिस्थापन प्रभाव है। इसकी व्याख्या रेखाचित्र द्वारा की जाती है

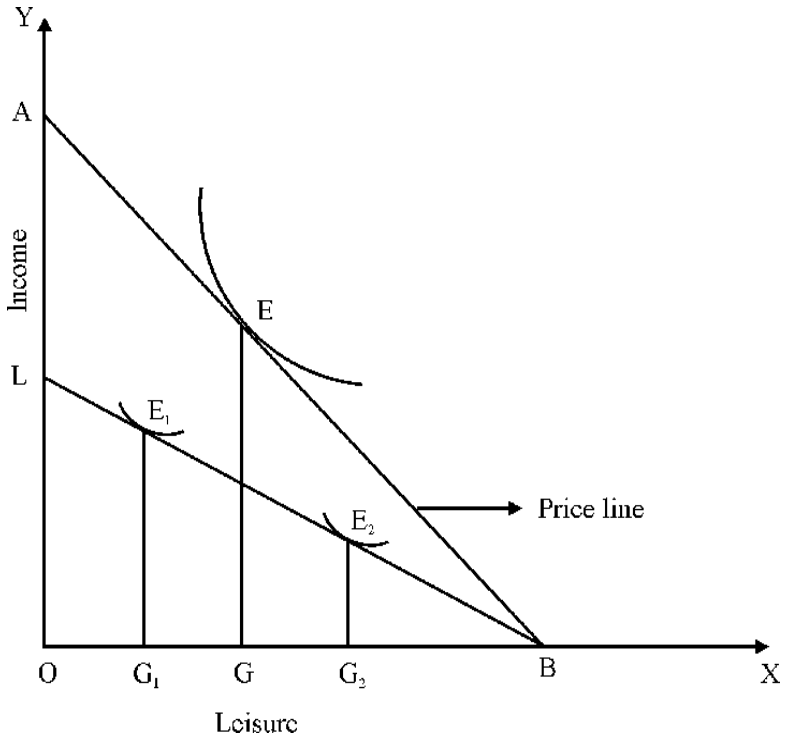

$\frac{AL}{AO}$

कर लगने से पहले wage rate $\frac{OA}{\Delta B}$ है। संतुलन बिंदु E पर है। OG आराम और GB घंटे काम करता है। यदि Wage rate कर दी जाए तो रेखा LB होगी। और यदि संतुलन E_1 पर होता है तो यह आय प्रभाव है। यह आय प्रभाव करों पर निर्भर करेगा। E_2 पर प्रतिस्थापन प्रभाव

है। ऐसे ही Work-Effort पर अप्रत्यक्ष करों का प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार Sale Tax का भी प्रभाव पड़ता है।

Effects of Taxation on Saving

बचत करने की इच्छा व शक्ति पर प्रभाव

बचत आय और व्यय पर निर्भर करती है। यदि कर लगाए जाते हैं तो कुल बचत कम हो जाती है तथा निजी बचत होती है। प्रत्यक्ष करों के कारण यह और भी अधिक होती है। प्रत्यक्ष कर ज्यादातर अमीर व्यक्ति ही देते हैं। अप्रत्यक्ष करों में कीमत बढ़ती है, उपभोग-व्यय बढ़ता है, बचतें कम होती हैं।

करों का बचत करने की इच्छा पर भी प्रभाव पड़ता है। यदि अधिक अप्रत्यक्ष कर लगा दिए जाते हैं तो कीमतें ज्यादा और उपभोग कम तथा बचत अधिक होती है, अर्थात् लोग अधिक बचत करना चाहेंगे। ऐसे ही बचत करने से करों में छूट दी जाए तो भी बचत करने की इच्छा, अधिक होती है। बचत इस बात पर भी निर्भर करती है कि व्यक्तियों का भविष्य के लिए क्या द ष्टिकोण है। व्यक्ति वर्तमान और भविष्य उपभोग में से किसको प्राथमिकता देते हैं। बचत ब्याज दर पर भी निर्भर करती है। आय-कर लगने से बचत पर प्रतिफल की दर कम रह जाती है। इसलिए बचत की इच्छा कम होती है।

Masgrave के अनुसार उपभोग करों का प्रभाव बचतों पर कम होता है क्योंकि व्यक्ति अपने उपभोग को adjust कर लेते हैं। व्यवसायिक बचतें, लाभ-करों पर निर्भर करती है। इस प्रकार करों का बचत करने की इच्छा व शक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है कोई स्पष्ट निष्कर्ष नहीं निकाला जाता।

उदाहरणतया अमेरिका में 1950-60 और 1960-70 के दशक में बचत की दर 7% थी। 1980 के दशक में 4% रह गई। हालांकि करों की दर में व द्धि हुई है। इसलिए बचतों पर करों की अपेक्षा लोगों के व्यवहार और ऋण की उलब्धता का अधिक असर पड़ता है।

Effects of Taxation on Investment & Growth

करों का निवेश दर भी प्रभाव पड़ता है। यदि करों में छूट दी जाती है तो निवेश करने की शक्ति अधिक होती है। निवेश अधिक होने से औद्योगिक-विकास भी सुद ढ़ होता है तथा इससे विकास भी बढ़ता है। ऐसे ही यदि वित्तीय निवेश पर अधिक कर लगाए जाते हैं तो व्यक्ति ऐसा निवेश नहीं करते अर्थात् इस स्थिति में निवेश कम किए जाने से विकास की दर भी कम हो जाती है क्योंकि निवेश की कमी होने औद्योगिक पूंजी निवेश करने के लिए भी पूंजी पर्याप्त नहीं होती। जिससे कि व द्धि भी कम होती है।

ऐसे ही यदि House Tax कम होता है तो मकान बनाने में निवेश कर दिया जाता है। अप्रत्यक्ष करों की निवेश पर अच्छा ही प्रभाव पड़ता है। क्योंकि इससे कीमतें बढ़ती है। ये हस्तांतरण लाभदायक और हानिकारक दोनों हो सकते हैं। यदि विलास की वस्तु के स्थान पर अनिवार्य वस्तु बनने लग जाए तो यह लाभ-दायक होता है। और यदि आवश्यक वस्तुओं के स्थान पर विकास की वस्तुएँ बनें तो हानिकारक होता है। कुछ कर ऐसे होते हैं। जिनसे साधनों का हस्तांतरण नहीं होता। जिससे Land-Revenue, Wind fall tax से साधनों का हस्तांतरण, स्थानांतरण नहीं होता। मुख्यतया प्रत्यक्ष कर, अप्रत्यक्ष कर से होता है।

अध्याय - 22

करों का वर्गीकरण : प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर

(Classification of Taxes : Direct and Indirect Taxes)

प्रत्यक्ष कर

प्रत्यक्ष कर वह कर है जो जिस व्यक्ति पर लगाया जाता है वह ही उसका भार स्वयं उठाता है। इस प्रणाली के अंतर्गत करदेयता या कर का भार दोनों एक ही व्यक्ति पर होते हैं। प्रत्यक्ष करों में आयकर, उपहार कर, निगमकर, आस्ति कर आते हैं। प्रो॰ सैम्युअयसन के अनुवार "प्रत्यक्ष कर लोगों पर प्रत्यक्ष रूप से लगाए जाते हैं।"

प्रत्यक्ष करों के गुण

1. **प्रगतिशील करः** प्रत्यक्ष कर समानता के सिद्धांत के अनुसार लगाए जाते हैं। ये कर प्रगतिशील होते हैं। इसका भार निर्धन लोगों पर कम तथा धनी व्यक्तियों पर अधिक पड़ता है। यह कर समानता तथा न्याय के सिद्धांत पर आधारित है। ये कर आय की असमानता को दूर करते हैं।
2. **बचतः** इन करों को एकत्रित करने में अधिक व्यय नहीं करना पड़ता। करदाता को स्वयं ही ये कर सरकार के पास जमा कराने पड़ते हैं। कर के रूप में जितना धन जमा होता है, उसका बहुत कम भाग ही इनके एकत्रित करने पर खर्च होता है।
3. **निश्चितताः** ये कर निश्चितता के सिद्धांत पर आधारित होते हैं। करदाता को यह पता होता है कि उनको कितना कर कब, कहाँ और कैसे देना है। सरकार को भी इन करों से प्राप्त होने वाली आय के बारे में काफी हद तक निश्चितता होती है।
4. **लोचदारः** ये कर लोचदार होते हैं। सरकार आवश्यकतानुसार इन करों की दर बढ़ाकर या कम करके अपनी आय को कम या अधिक कर सकती है। जैसे भारत में 1938-39 से आयकर तथा Corporation Tax से 16 करोड़ रुपये की आय प्राप्त हुई थी। परंतु अब सरकार के व्यय में कई गुना व द्धि होने के कारण इनसे प्राप्त आय भी कई गुना बढ़ गई है। 2000-01 में आयकर से 31,590 करोड़ या Corporation tax से 40,000 करोड़ रुपये की आय हुई है।
5. **उघादकः** ये कर उत्पादकता के सिद्धांत पर भी आधारित हैं। थोड़े से कर लगाने से ही

सरकार को काफी आय प्राप्त हो जाती है। जैसे भारत सरकार को 1997-98 के बजट में लगभग 45,570 करोड़ रुपया केवल चार प्रत्यक्ष करों से प्राप्त हुए हैं।

6. **सरलः** ये कर सरल होते हैं। इनको समझना व इनका ब्यौरा बनाना कोई कठिन नहीं है। इनसे संबंधित कानून काफी स्पष्ट होते हैं। इसलिए इनका अनुमान लगाना कोई कठिन कार्य नहीं होता।

7. **सुविधाः** ये कर सुविधा के सिद्धांत पर आधारित हैं। इन करों का भुगतान अधिकतर उस समय करना पड़ता है जब लोगों के पास भुगतान करने की सुविधा होती है। जैसे मासिक वेतन प्राप्त करने वालों से आय कर उस समय लिया जाता है। जब उन्हें आय का भुगतान किया जाता है। सरकार इन करों को किश्तों में चुकाने की सुविधा भी प्रदान कर देती है।

8. **वितरण संबंधी न्यायः** पूंजीवादी देशों तथा अल्पविकसित देशों में जहाँ आय के वितरण में काफी असमानता पाई जाती है। वहाँ प्रत्यक्ष कर जैसे आय कर, संपत्ति पर, म त्यु कर आदि आय तथा धन वितरण की असमानता को दूर करने में काफी सहायक सिद्ध होते हैं।

प्रत्यक्ष करों के दोष

1. **लोकप्रियता का अभावः** ये कर लोकप्रिय नहीं होते क्योंकि इनका भार करदाता को प्रत्यक्ष रूप से उठाना पड़ता है। क्योंकि इन्हें काफी मात्रा में चुकाना पड़ता है।

2. **करों से बचावः** इन करों से अप्रत्यक्ष करों की अपेक्षा आसानी से बचा जा सकता है। करदाता अपनी आय को कम बता कर इन करों से बच जाते हैं।

3. **भुगतान संबंधी कठिनाइयाँः** इन करों का भुगतान करने में कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इन करों के रूप में दी जाने वाली राशि को निर्धारित करने के लिए करदाता को आयकर अधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों के पास कई बार जाना पड़ता है। और हिसाब-किताब दिखाना पड़ता है। जिससे करदाताओं को बहुत असुविधा होती है।

4. **खर्चीलेः** इन करों को एकत्रित करने में कभी-कभी बहुत अधिक खर्च आता है। जैसे भारत में भूमिकर एक प्रत्यक्ष कर है। इस कर को लाखों किसानों से थोड़ी-थोड़ी मात्रा में एकत्रित किया जाता है। इसलिए इनको एकत्रित करने पर काफी खर्चा आता है।

5. **मनमानीः** इन करों को लगाने का कोई वैज्ञानिक तरीका नहीं है। कर अधिकारी इन्हें अपनी इच्छानुसार मनमाने ढ़ंग से लगा सकते हैं। जिसके कारण भ्रष्टाचार की संभावना बढ़ जाती है।

6. **पूँजी-निर्माण में बाधाः** ये कर पूँजी निर्माण में बाधक हो सकते हैं। यदि इन करों की दर बहुत ऊँची हो तो इसका बचत पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे देश में पूँजी-निर्माण कम होता है।

7. **विदेशी-पूँजी पर प्रतिकूल प्रभावः** अल्पविकसित देशों में यदि प्रत्यक्ष कर की दर अधिक होती है। तथा उस देश में होने वाली विदेशियों की आय पर भी कर लगाया जाता है तो विदेशी उस देश में अपनी पूँजी निवेश करना पसंद नहीं करेंगे। इस प्रकार देश के विकास के लिए आवश्यक विदेशी पूँजी प्राप्त नहीं हो सकेगी। इसका देश के आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

8. **संकुचित आधारः** प्रत्यक्ष कर देश की कम जनसंख्या पर ही लगाए जाते हैं। देश के अधिकतर लोग जिनकी आय एक सीमा से कम होती है। इन करों से बचे रहते हैं। अतएव इन करों का क्षेत्र विस्त त नहीं होता। देश के बहुत कम लोगों पर ही इनका प्रभाव पड़ता है।

Indirect Taxes

अप्रत्यक्ष या परोक्ष कर

अप्रत्यक्ष कर वे कर हैं जिनका प्रारंभिक भार एक व्यक्ति पर पड़ता है, परंतु उस भार को वह दूसरों पर टालने में सफल हो जाता है।

जैसे - बिक्री कर, उत्पादन कर, सीमा शुल्क आदि परोक्ष करके ही उदाहरण हैं।

प्रो॰ सैम्युलसन के अनुसारः "अप्रत्यक्ष कर की परिभाषा उन करों के रूप में की जाती है, जो वस्तुओं तथा सेवाओं पर लगाए जाते हैं। अतः ये लोगों पर अप्रत्यक्ष रूप से लगाए जाते हैं।"

अप्रत्यक्ष करों के गुण

1. **सुविधाजनकः** ये कर सुविधाजनक होते हैं। जैसे बिक्री कर देते समय करदाता को कोई असुविधा नहीं उठानी पड़ती। करों का भुगतान उस समय ही किया जाता है, जब वस्तुएँ खरीदी जाती हैं। इस कारण करदाता को कर का भर अनुभव नहीं होता। सरकार के लिए भी यह कर सुविधाजनक होता है। क्योंकि सरकार इन करों की रकम को उत्पादकों या आयातकर्त्ताओं से एकदम वसूल कर लेती है।

2. **टालना-कठिनः** इस प्रकार के करों से बचना प्रत्यक्ष करों की अपेक्षा कठिन है। ये कर अधिकतर वस्तुओं की कीमतों में ही शामिल कर लिए जाते हैं। इसलिए जब भी कोई व्यक्ति वस्तु खरीदता है जो उसे यह कर देने पड़ते हैं।

3. **विविधताः** इन करों में विविधता पाई जाती है। क्योंकि ये कर देश के प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी रूप में देने पड़ते हैं। जैसे उत्पादन-कर वस्तु के उत्पादन करने वालों से ही वसूल कर लिए जाते हैं। और वे उन्हें वस्तु के खरीददारों से वसूल कर लेते हैं। इस प्रकार बिक्री कर भी उन सभी व्यक्तियों को देना पड़ता है। जो बिक्री कर वाली वस्तुओं का उपभोग करते हैं।

4. **लोचदारः** ये कर लोचदार होते हैं। कर की दर बदलने से आमदनी का मात्रा भी बदल जाती है। जैसे बिक्री कर या उत्पादन कर में थोड़ी सी व द्धि करने पर सरकार की आय

में काफी व द्धि हो जाती है। 2000-2001 में उत्पादन कर से केंद्रीय सरकार को 71,252 करोड़ रुपये की आय प्राप्त होने का अनुमान था।

5. **लोकप्रियः** ये कर प्रत्यक्ष कर की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय होते हैं। लोगों को यह कर देते समय विशेष कठिनाई महसूस नहीं होती। इन करों का भुगतान थोड़ी-थोड़ी मात्रा में उसी समय करना पड़ता है जब लोग किसी वस्तु को खरीदते हैं। ये कीमत का ही एक भाग बन जाते हैं।

6. **हानिकारक उपभोग पर प्रतिबंधः** इन करों को हानिकारिक वस्तुओं जैसे शराब, सिगरेट आदि पर लगाने से उनकी कीमत बढ़ाई जा सकती है। जिससे उनका उपभोग कम हो सकता है तथा समाज को लाभ पहुँच सकता है।

7. **विस्त तः** राज्य की सहायता करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। और ये कर विस्त त होते हैं। उनका क्षेत्र काफी फैला हुआ है। ये देश के संपूर्ण उत्पादन क्षेत्र पर लागू होते हैं। ये धनी तथा निर्धन दोनों लोगों पर लागू होते हैं। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को किसी ना किसी रूप में ये कर देने ही पड़ते हैं।

8. **समानताः** इन करों को विलासिता की वस्तुओं पर अधिक दर पर लगाने से धनी लोगों पर इनका भार बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार ये कर त्याग की समानता को सिद्धांत पर आधारित हैं।

9. **विदेशी प्रतियोगिता से बचानाः** इन करों की सहायता से देश के आंतरिक उद्योगों की विदेशी प्रतियोगिता से बचाया जा सकता है। आयात-निर्यात करों का उपयोग इसी उद्देश्य के लिए किया जाता है। जब सरकार देश के किसी उद्योग को विदेशी प्रतियोगिता से बचाना चाहती है तो उस वस्तु के आयात पर आयात-कर बहुत अधिक मात्रा में लगा देती है जिससे उस वस्तु की कीमत बढ़ जाती है तथा देश में उत्पादित वस्तु, विदेशी वस्तु की तुलना में कम कीमत पर बिकने लगती है। इससे फिर घरेलू उत्पादन की मांग अधिक हो जाती है।

10. **प्रगतिशीलः** अप्रत्यक्ष कर यदि विलासिता की वस्तुओं पर अधिक मात्रा में लगाए जाएँ और जीवन-निर्वाह वस्तुओं को करों से मुक्त कर दिया जाए तो यह कर अधिक प्रगतिशील सिद्ध होते हैं।

अप्रत्यक्ष-करों के दोष

1. **अवरोही (Regressive):** कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार ये कर अवरोही होते है। इनका भार अमीरों पर कम तथा गरीबों पर अधिक पड़ता है क्योंकि सभी लोगों पर कर की दर एक ही होती है। इसलिए ये कर न्याय संगत नहीं है। परंतु वास्तव में यह तर्क सही नहीं है। अप्रत्यक्ष कर जैसे विलासिता की वस्तुओं पर लगाए गए कर तथा कार, स्कूटर, टेलीविजन आदि पर लगाए जाने वाले करों का अधिक भार धनी व्यक्तियों पर ही पड़ता है क्योंकि वे इन वस्तुओं को वास्तव में ज्यादा खरीदते हैं।

2. **अनिश्चितः** ये कर अनिश्चित होते हैं। इनके विषय में यह निश्चित अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि वास्तव में सरकार को कितनी आय प्राप्त होगी। इन करों से प्राप्त आय कई बातों पर निर्भर करती है जैसे वस्तु की मांग, उत्पादन की मात्रा, वस्तु की कीमत etc.

3. **बचत का अभावः** ये कर बचत के सिद्धांत पर आधारित नहीं है। इसलिए इनको एकत्रित करने में काफी व्यय करना पड़ता है।

4. **नागरिक-जाग त्ति का अभावः** इन करों से नागरिक-जाग त्ति नहीं होती। क्योंकि ये कर वस्तु की कीमत में ही छिपे होते हैं और करदाता को यह ज्ञान नहीं हो पाता कि वस्तु की वास्तविक कीमत कितनी है और उस पर कितना कर लगाया जाता है।

5. **उत्पादन में कमीः** इन करों का उत्पादन तथा व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ता है। क्योंकि इन करों से मूल्य बढ़ जाते हैं और उनका वस्तुओं की मांग पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

6. **करों से बचनाः** इन करों की भी चोरी की जाती है। कई बार दुकानदार वस्तु की बिक्री का Cash memo ग्राहक को नहीं देते। इस प्रकार वे बिक्री कर भी सरकार को नहीं देते। जबकि स्वयं वे इस कर को ग्राहक से वस्तु की कीमत के साथ ही प्राप्त कर लेते हैं।

7. **बचत को निरूत्साहित करनाः** इन करों के कारण वस्तु की कीमत में व द्धि होती है इसलिए लोगों को अपनी आय का अधिक भाग वस्तुओं को खरीदने पर व्यय करना पड़ता है। जिसके परिणाम-स्वरूप बचत निरूत्साहित होती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष कर और अप्रत्यक्ष कर दोनों में ही दोष हैं। परंतु प्रत्यक्ष करों के दोष प्रशासनिक कठिनाइयों के कारण उत्पन्न होते हैं और इन्हें प्रयत्न करके दूर भी किया जा सकता है। क्योंकि देश के आर्थिक-विकास, आय के समान-वितरण तथा बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय को पूरा करने के लिए इन करों का बहुत महत्त्व है।

अध्याय - 23

प्रगतिशील, अनुपातिक तथा प्रतिगामी कर, मूल्य वर्धित तथा विशिष्ट कर

(Progressive Tax, Proportional Tax & Regressive Tax)

प्रगतिशील कर

अधिकतर देशों में प्रगतिशील कर प्रणाली प्रचलित है अर्थात् प्रगतिशील कर प्रणाली वह कर प्रणाली है कि आय बढ़ने के साथ-साथ कर की दर भी बढ़ती जाती है।

डाल्टन के अनुसार, "प्रगतिशील करों में करदाता की आय जितनी अधिक होती है उतने ही अधिक अनुपात में वे कर अदा करते हैं।"

प्रगतिशील कर प्रणाली को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। जैसे कि मान लीजिए किसी व्यक्ति की आय 5000 रुपये प्रति वर्ष है तथा उस व्यक्ति को 10 प्रतिशत कर देना पड़ता है और यदि व्यक्ति की आय बढ़कर 10,000 रुपये हो जाती है तो उस व्यक्ति को कर की 15% दर देनी पड़ती है। इसी प्रकार आय के बढ़कर 20,000 हो जाने पर कर की दर बढ़कर 20% तक हो सकती है।

प्रगतिशील कर प्रणाली को अर्थशास्त्री **टेलर ने** इस प्रकार **व्यक्त किया है।**

टेलर के अनुसार, "प्रगतिशील कर प्रणाली में आय की व द्धि के साथ-साथ कर की प्रभावपूर्ण दर में भी व द्धि होती है क्योंकि आय की सीमांत व द्धियों पर उच्च दर से कर लगाया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि कर देने की शक्ति में आय की व द्धि के साथ व द्धि होती है। इसके विपरीत व्यक्तिगत आय कम होने के साथ-साथ कर की दर में भी गिरावट आ जाती है।"

प्रगतिशील कर प्रणाली को रेखाचित्र द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है।

चित्र द्वारा प्रगतिशील-कर प्रणाली को स्पष्ट किया गया है। चित्र में T T रेखा प्रगतिशील कर प्रणाली को स्पष्ट कर रही है। इस रेखा का ढलान नीचे से ऊपर की ओर है। इससे प्रकट होता है कि कर का आधार जैसे-जैसे बढ़ता जाता है। कर की दर भी बढ़ती जा रही हैं। प्रगतिशील करों का प्रभाव निर्धनों पर कम तथा धनी-वर्ग पर अधिक पड़ता है।

Merits of Progressive Tax

1. **न्यायपूर्णः** प्रगतिशील कर न्याय पूर्ण होते हैं। क्योंकि इनका भार धनी व्यक्तियों पर अधिक तथा निर्धनों पर कम पड़ता है। क्योंकि यह कर-कर देने की शक्ति पर लगाए जाते हैं।
2. **असमानताः** इन करों द्वारा आय की असमानता को कम किया जा सकता है क्योंकि धनी वर्ग पर अधिक तथा निर्धन वर्ग पर कम कर लगाए जाते हैं और इससे आय में होने वाली असमानता कुछ कम होती है।

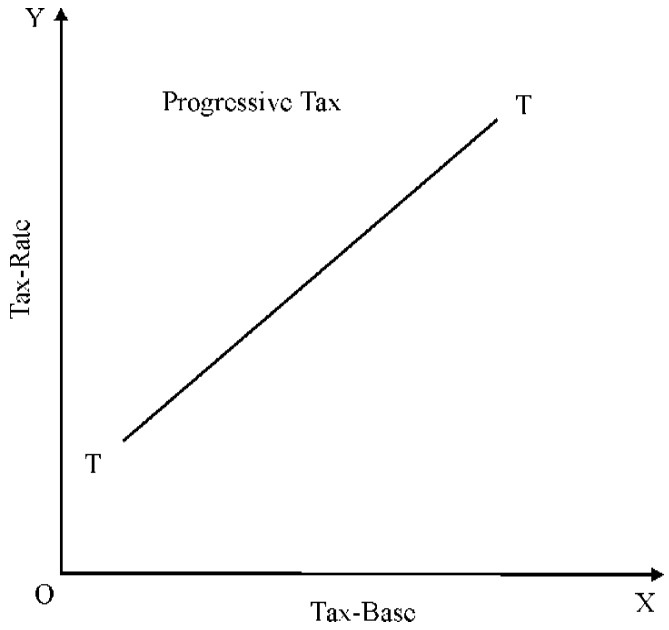

3. **ये कर लोच पूर्ण होते हैंः** ये कर लोचपूर्ण होते हैं क्योंकि कर, कर देने की शक्ति द्वारा निर्धारित किया जाता है।
4. इन करों से सरकार अधिक आय प्राप्त कर सकती है। जैसे कि विलासिता की वस्तुओं पर अधिक कर लगाना। क्योंकि विलासिता की वस्तुएँ धनी वर्ग द्वारा बहुत मात्रा में खरीदी जाती है।
5. केंज ने पूर्ण - रोजगार की द ष्टि से इन करों को महत्त्वपूर्ण बताया है क्योंकि सरकार धनी व्यक्तियों पर अधिक कर लगाकर जो धन एकत्रित करेगी, उसे निर्धनों पर व्यय करने प्रभाव-पूर्ण मांग को बढ़ाया जा सकता है। और इसके फलस्वरूप रोजगार को बढ़ाया जा सकता है।
6. ये कर मितव्ययी होते है।
7. इन करों से मुद्रा-स्फीति को कम किया जा सकता है।

Demerits of Progressive Tax

1. इन करों के कारण बचत कम होती है। इसलिए पूँजी-निर्माण पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
2. इन करों की दर का निर्धारण मनमाने ढंग से किया जाता है।
3. इन करों के कारण उन्हें सजा मिलती है, जो परिश्रम करके धन का संचय करते हैं।

4. इन करों का आधार गलत है। आय की सीमांत-उपयोगिता की ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता।
5. इन करों की चोरी की अधिक संभावना रहती है।
6. ये कर सरल नहीं होते हैं। इसलिए इन्हें समझने में कठिनाई होती है।
7. इन करों के फलस्वरूप भ्रष्टाचार बढ़ने की संभावना रहती है।

Effects of Progressive Tax

प्रगतिशील करों के उत्पादन तथा वितरण पर निम्न प्रकार से प्रभाव पड़ते हैं।

(i) **उत्पादन पर प्रभावः** प्रगतिशील करों की दर बहुत अधिक होने के फलस्वरूप बचत कम होती है। बचत कम होने से लोग निवेश करना कम कर देते हैं। निवेश कम होने से फिर उत्पादन का स्तर भी कम होता जाता है। इसलिए प्रगतिशील करों की दर बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए। इसकी अधिकतम दर कुल आय का 25 से 30 प्रतिशत तक ही होनी चाहिए।

(ii) **वितरण पर प्रभावः** प्रगतिशील करों के द्वारा धन के समान-वितरण के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। ये कर धनी व्यक्तियों पर अधिक मात्रा में लगाए जाते हैं। इन करों से प्राप्त धन को निर्धनों की सहायता के लिए व्यय किया जा सकता है। परंतु यदि ये कर बहुत ऊँची दर पर लगाए जाएंगे तो धनी व्यक्तियों में अपनी आय को अधिक करने की प्रेरणा नहीं रहेगी। इसका फिर देश के आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

इसलिए प्रगतिशील करों की उच्चतम सीमा बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए। अर्थात् इसकी अधिकतम दर कुल आय का 25 से 30% तक ही होनी चाहिए।

Proportional Taxes

करों की दर के आधार पर इनका निम्नलिखित ढंग से वर्गीकरण किया जा सकता है।

आनुपातिक करः "आनुपालिक कर वह कर है जो आय के निश्चित अनुपात के आधार पर लगाया जाता है।"

डाल्टन के अनुसारः "आनुपातिक कर प्रणाली के अंतर्गत् सभी करदाता अपनी आय का समान अनुपात कर के रूप में अदा करते हैं। आनुपातिक कर को एक उदाहरण की सहायता से समझा जा सकता है। जैसे यदि कर की दर 5 प्रतिशत है तो जिस व्यक्ति की आय 100 रुपये है। वह पाँच रुपये कर देगा। इसके विपरीत जिसकी आय 1000 रुपये है। वह 50 रुपये कर देगा। अर्थात् आय चाहे कितनी ही बढ़ जाए अथवा कम हो जाए, कर एक निश्चित अनुपात में ही लगाया जाएगा। आनुपातिक करों को एक चित्र द्वारा भी समझा जा सकता है।

चित्र द्वारा आनुपातिक कर प्रणाली को स्पष्ट किया जा सकता हैं। चित्र में O X पर कर के आधार को और ox अक्ष पर कर की दर को प्रकट किया गया है। T T रेखा आनुपातिक कर को प्रकट कर रही है। इससे स्पष्ट होता है कि कर का आधार चाहे कम हो या अधिक परंतु कर की दर O T ही रहती है। इस कर का समाज में धन के वितरण पर कोई प्रभाव नहीं

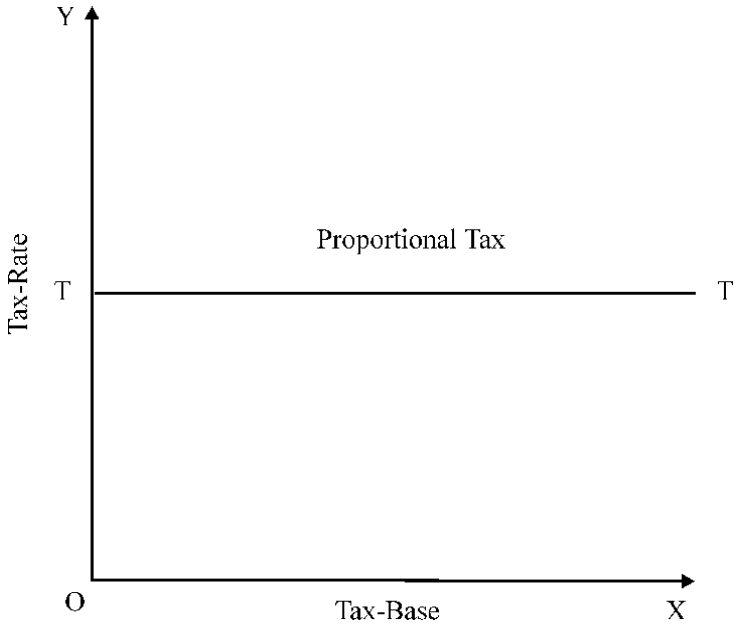

पड़ता। समाज के विभिन्न व्यक्तियों की आय का अनुपात कर लगाने के बाद भी वही रहता है जो उससे पहले था। इसलिए यह कहा जा सकता है कि इन करों का वास्तविक भार निर्धन व्यक्तियों पर अधिक तथा धनी व्यक्तियों पर कम पड़ता है। करों का मौलिक भार सभी व्यक्तियों पर समान रूप से पड़ता है।

आनुपातिक कर प्रणाली के गुण

1. आनुपातिक कर प्रणाली सरल है।
2. इसका दूसरा गुण यह है कि यह समता पर आधारित है।
3. इस कर प्रणाली के फलस्वरूप धन का वितरण पहले जैसा ही रहता है।
4. इस कर प्रणाली में अधिक समरूपता पाई जाती है।
5. इस कर प्रणाली का लोगों की काम करने की इच्छा और बचत पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

लेकिन इस कर प्रणाली में गुणों का अध्ययन करने के पश्चात् इसमें कुछ दोष भी पाए गए हैं। जो कि गुणों से अधिक है। जो इस प्रकार से हैं।

आनुपातिक कर प्रणाली के दोष

1. यह कर प्रणाली न्याय-सिद्धांत के विरूद्ध है। क्योंकि इसका कारण यह है कि इसका भार निर्धन वर्ग पर अधिक पड़ता है।
2. इन करों में लोच भी कम पाई जाती है।
3. इन करों से सरकार को कम आय प्राप्त होती है।
4. इस कर प्रणाली से आय और संपत्ति की असमानता कम नहीं होती।

इस प्रकार आनुपातिक कर प्रणाली कर देने की क्षमता के सिद्धांत के प्रतिकूल है।

Regressive Tax

प्रतिगामी कर प्रणाली: प्रतिगामी कर प्रणाली से यह अभिप्राय है कि इस कर प्रणाली में करों की दर आय व द्धि के साथ-साथ घटती जाती है।

इसमें कम आय वाले व्यक्तियों पर कर अधिक दर से लगाया जाता है और अधिक आय वाले व्यक्तियों पर कर की दर अपेक्षाकृत कम होती है। प्रतिगामी कर-प्रणाली को रेखा चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।

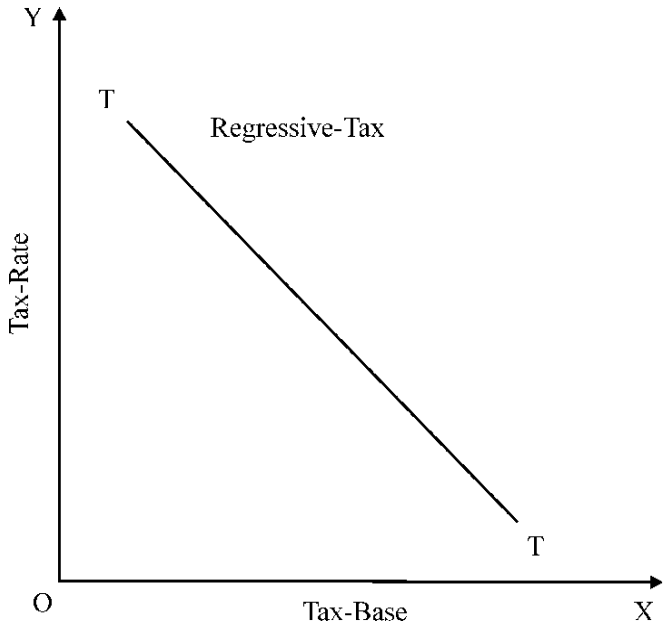

रेखाचित्र में O X अक्ष पर करों के आधार को और O Y अक्ष पर करों की दर को प्रकट किया गया है। चित्र द्वारा स्पष्ट होता है कि T T रेखा का ढलान ऊपर से नीचे की और है। इससे पता चलता है कि जैसे-जैसे कर का आधार बढ़ता जा रहा है, कर की दर कम होती जा रही है। इसका भार निर्धन व्यक्तियों पर अधिक पड़ता है और धनी व्यक्तियों पर कम पड़ता है।

यह कर प्रणाली अन्यायपूर्ण, अनुचित तथा कर देने की योग्यता के विपरीत है। इसके कारण असमानता बढ़ती है। भारत ब्रिटिश सरकार द्वारा लगाए गए नमक पर कर का भार निर्धनों पर अधिक था और अमीरों पर कम था। यह केवल उस समय उपयोगी हो सकती है, जब सरकार यह चाहती है कि निर्धन व्यक्तियों द्वारा हानिकारक वस्तुओं का उपभोग कम हो।

Ad-Valorm and Specific Taxation

मूल्य वर्धित कर

(Value Added Tax or VAT)

सर्वप्रथम यह कर फ्रांस में 1954 में एक सीमित मात्र में लगाया गया था। 1967 में यूरोपीय आर्थिक समुदाय ने भी इसे अपनाया था।

मूल्य वर्धित कर: वह अप्रत्यक्ष कर है जो उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाली मूल्य व द्धि पर लगाया जाता है।

किसी वस्तु के सकल मूल्य तथा मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्य के अंतर को मूल्य व द्धि कहते हैं। मूल्य वर्धि कर (VAT) वास्तव में बहुचरण बिक्री कर है। उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर इस कर को एकत्रित किया जाता है। इसलिए किसी एक स्तर पर प्राप्त न किए गए कर को बाद में प्राप्त किया जा सकता है।

मूल्य वर्धित कर को इस प्रकार भी समझा जा सकता है। "एक पूर्ण मूल्य वर्धित कर वास्तव में घरेलू अंतिम उपभोग पर एक मूल्यानुसार कर ही है जिसे उत्पादन और अंतिम बिक्री के बिंदु तक के बीच सभी स्तरों पर लगाया और संग्रहित किया जाता है।"

अन्य शब्दों में: मूल्य वर्धित कर, कर (VAT) प्रत्येक स्तर पर मूल्य व द्धि पर ही लगाया जाता है।

मूल्य व द्धि = कूल बिक्री - मध्यवर्ती वस्तुओं की लागत = अंतिम बिक्री = सकल राष्ट्रीय आय = मजदूरी + लगान + लाभ + ब्याज।

VAT की गणना करने की प्रायः बीजक पद्धति (Invoice Method) को अपनाया जाता है। इस विधि में पहले उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर बिक्री कर लगाया जाता है। इसके बाद उत्पादक को मध्यवर्ती वस्तुओं की खरीद पर अदा किए गए करों की पूरी कटौती कर दी जाती है। इस प्रकार उत्पादक, सरकार को केवल मूल्य व द्धि पर ही कर का भुगतान करता है। इसकी गणना बिक्री तथा खरीद बीजकों द्वारा की जाती है। इन करों का वस्तु के आकार, वजन आदि से कोई संबंध नहीं होता है।

भारत जैसे संघीय ढांचे में VAT Tax तीन प्रकार से लगाया जा सकता है।

(i) **केंद्रीय कर के रूप में:** VAT केंद्रीय कर हो सकता है। इस विधि में VAT की दर केंद्रीय सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है। इसके फलस्वरूप जो धन एकत्रित होता है वह केंद्र और राज्यों में बांट दिया जाता है।

(ii) **राज्य करः** VAT पूरी तरह राज्य कर भी हो सकता है। केंद्रीय सरकार का इस पर कोई नियंत्रण नहीं होता।

(iii) **द्वियात्मक वैट (Dual Vat):** द्वियात्मक बैट केंद्र तथा राज्य दोनों द्वारा लगाया जा सकता है। दोनों की जिम्मेदारी का क्षेत्र स्पष्ट होता है। इसका एक रूप यह है कि केंद्रीय वैट को र्निमाण स्तर से थोक बिक्री स्तर तक लागू रखा जाता है। इसमें थोक बिक्री स्तर पर वैट से प्राप्त आय को राज्यों द्वारा एकत्रित की जाती है। तथा उन्हीं द्वारा अपने पास रख ली जाती है। इस प्रकार आजकल संसार के अधिकतर देशों में मूल्य विर्धित कर का प्रचलन है।

Merits of VAT

1. VAT का मुख्य गुण यह है कि इसके फलस्वरूप कर की चोरी करना बहुत कठिन है। किसी एक स्तर पर प्राप्त ना किए गए कर को बाद में प्राप्त किया जा सकता है। इस कारण से इसके फलस्वरूप आय की अधिक प्राप्ति की जा सकती है।
2. यह कर एक ही दर पर लगाया जाता है। इसलिए यह एक तटस्थ कर है।

3. VAT के द्वारा मांग का अधिक प्रभावपूर्ण टंग से नियमन हो सकता है। यदि VAT को अनिवार्य वस्तुओं पर नहीं लगाया जाए तो यह एक प्रगतिशील कर का कार्य कर सकता है।
4. VAT में बीजकों की Cross Audit होती है। इसलिए यह अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से लागू किया जा सकता है। इस कारण से फार्मों की कार्यकुशलता बढ़ती है। क्योंकि किसी कर्म को इस कर पर छूट नहीं मिलती।
5. इस कर से निवेश तथा निर्यात को भी बढ़ावा मिलता है।
6. विशाल असंगठित लघु क्षेत्र वाले गरीब देश में बिक्री कर की तुलना में VAT बहुत लाभकारी होता है।

Demerits of VAT

1. इस कर का मुख्य अवगुण यह है कि यह कर बिक्री कर की तुलना में अधिक जटिल है। क्योंकि इस कर व्यवस्था में हिसाब-किताब रखने की अधिक आवश्यकता है।
2. यह कर अधिक खर्चीला है।
3. इससे मुद्रा स्फीति को बढ़ावा मिलता है। और अधिकारियों को जनता का सहयोग नहीं मिलता।
4. अल्पविकसित देशों मैं, प्रशासनिक अकुशलता के कारण इसे अपनाना कठिन है।

इस प्रकार VAT के उपरोक्त दोष होते हुए भी संसार के सभी विकसित तथा कई विकासशील देशों ने उत्पादन शुल्क तथा बिक्री कर के स्थान पर इसे अपनाया है।

Specific Taxation System

विशिष्ट कर प्रणाली

वह कर प्रणाली है जब किसी वस्तु पर उसकी इकाई, आकार या तोल के अनुसार कर लगाया जाता है। तो उसे विशिष्ट कर प्रणाली कहते हैं। इस कर का गुण यह है कि यह सुविधाजनक और सरल होता है। परंतु इसका अवगुण यह है कि इसका प्रभाव देश के धनी वर्ग पर कम और निर्धन वर्ग पर अधिक पड़ता है। इसलिए यह कर अन्यायपूर्ण है। इसका दूसरा दोष यह है कि इन करों में चोरी की संभावना रहती है।

अध्याय - 24

बहु इकाई वित्त

(Multi Unit Finance)

किसी भी देश में राजकोषीय कार्य सरकारी की विभिन्न ईकाइयों द्वारा किए जाते हैं। अर्थात ये विभिन्न स्तरों पर होते हैं। कैनेड़ा, आस्ट्रेलिया, पश्चिमी जर्मनी तथा भारत में त्रिस्तरीय सरकारे पाई जाती है। भारत में 28 राज्य हैं और 22 लाख स्थानीय सरकार है।

Mult Unit Finance का अर्थ है वित्त से सम्बन्धित कई Units अर्थात कई Units वितीय कार्य करती है साधारण शब्दों में कई Units Fiscal Functions करती है, For eg Centre Government State Governement, or Local Govt. etc. यही Multi unit Finance है। सभी आम प्राप्त करती है और व्यय करती है। किसी देश का बहुस्तरीय वितीय ढाचा किस प्रकार का होगा यह निम्न तत्वों जैसे :- भौगोलिक स्थिति, युद्ध, राष्ट्र को बनाने वाले ऐतिहासिक तत्व आदि पर निर्भर करता है। सरकार को मुख्य तौर पर तीन राजकोषीय कार्य करने पड़ते है।

1. Allo cation Functions
2. Distribution Functions
3. Stablization Functions

Mult Unit Finance के सिद्धान्तों के अन्तर्गत ये देखा जाता है कि किस प्रकार सरकार द्वारा कौन सा कार्य किया जाए ताकि अधिकतम लाभ हो। जैसे Nations Defence, Transmissions आदि जो राष्ट्रीय महत्त्व की चीजें हैं। वे केन्द्र सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाती है और Street Light, Fire Brigade etc. स्थानीय स्तर पर किए जाते हैं। सिचाई, चिकित्सा आदि राज्य सरकार उपलब्ध कराती है। अतः कौन सा कार्य केन्द्र सरकार करे कौन सा कार्य राज्य सरकार करे तथा कौन सा स्थानीय सरकार करे इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है।

I. Spatial Demension of Allocation Function (संक्षिप्त भूमिका)

Mult Unit Finance को आवश्यकता आबंटन कार्य को सम्पन्न करने के लिए पड़ती है। इसकी व्याख्या करने के लिए हम एक Pure Public Good लेते है। अब यह देखते हैं कि इनके आबंटन के लिए Multi Unit System की ही आवश्यकता क्यों है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कुछ Social Goods ऐसी होती है जिनका लाभ पूरे देश मे फैलता है। जैसे - National Defence, Cancer Research, Space Exploration आदि। तथा कुछ Social Goods

ऐसी भी है जिसमे लाभ कुछ ही क्षेत्रों को होता है। for eg Fire Brigade Street Light etc जब सार्वजनिक क्षेत्र पर आबंटन सिद्धान्त लागू किया जता है हो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जिस क्षेत्र को इन वस्तुओं और सेवाओं से लाभ प्राप्त होते है वे ही उनकी लागत वहन करें। साधारण शब्दों में ये कहा जा सकता है कि जिन वस्तुओं से पूरे देश को लाभ हो, वे केन्द्र सरकार द्वारा तथा जिनसे किसी विशिष्ट क्षेत्र को लाभ हो वे स्थानीय सरकारों द्वारा तथा अन्य सेवाए जैसे - Highways राज्य सरकार द्वारा दी जानी चाहिए।

Multi Unit Finance Theory यह बताती है कि **Optical Fiscal Community** क्या ? अर्थात कितनी जनसंख्या को अनुकूलतम माने जिससे उनको अधिकतम सन्तुष्टि या लाभ हो। इसके अतिरिक्त **Optimal Service Level** क्या हो ? यानि (कितनी सेवाएँ प्रदान की जाएँ) इसके लिए कुछ मान्यताए ली गई हैं।

Assumptions:

1. केवल एक ही सार्वजनिक संघ है।
2. रुचि और आय सभी उपभोक्ताओं की समान होती है।
3. जितने ज्यादा व्यक्ति उस सेवा सेवा का लाभ उठाते है उतनी ही प्रत्येक उपभोक्ता को कम लागत वहन करनी पड़ेगी।
4. Over Crowding नहीं होती है।
5. लाभ कुछ ही क्षेत्र के व्यक्तियों को मिलता है।
6. सार्वजनिक वस्तुएँ तथा सेवाओं को इनके Pure Social Goods हैं अर्थात् इन वस्तुओं तथा सेवाओं को जितना भी प्रयोग किया जाए, इन गुणों में कोई परिवर्तन नहीं होगा। अर्थात् Quality of Services प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान रहेगी।

इन मान्यताओं के आधार पर हम Optimal Community Size और Optimal Service Level का निर्धारण करते है।

(A) **Determination of Optimal Community Size**

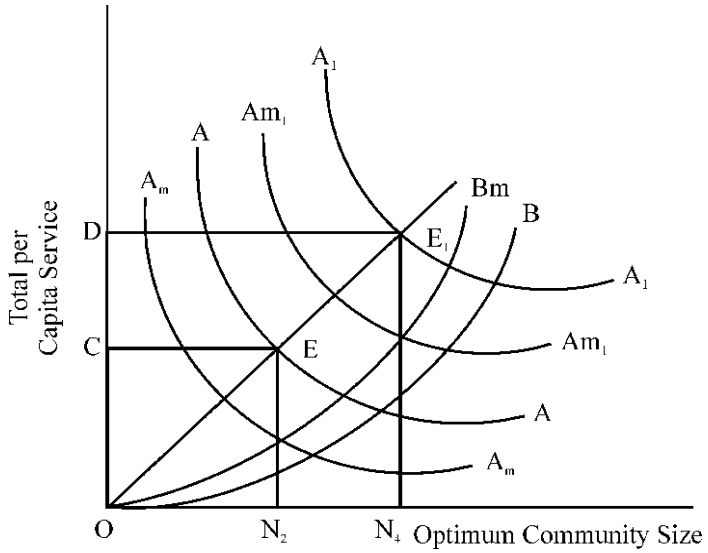

हम यह मानते है कि सामाजिक सेवाओं का स्तर दिया हुआ है। यदि कुल लागत 2$ है व हम में भी मानते है प्रत्येक व्यक्ति उतनी कीमत देता है जितना उसे सीमान्त लाभ प्राप्त होता है। AA curve per capita service cost i.e. Z/N को दिखाता है जैसे Community बढ़ता है ZIN कम होती जाती है Amamcure AA वक्र से निकाला गया है। तथा Per Capita Service Cost की सीमान्त बचत को बताता है। जो लोगों की संख्या बढ़ाने के परिणाम स्वरूप प्राप्त होती है। अर्थात जैसे-जैसे Community का आकार बढ़ता है वैसे-वैसे प्रत्येक व्यक्ति को पहले से कम लागत वहन करनी पड़ती हैं। जिससे प्रत्येक व्यक्ति को बचत प्राप्त होती है Am Am वह इसी सीमान्त बचत को बताता है।

परन्तु अगर यही स्थिति होती है तो पूरा समाज ही Optimal Size का हो जाता है। या फिर जब तक Am Am + Ve तब तक समुदाय को बढाया जा सकता है। चाहे समुदाय कितना बड़ा न हो जाए परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता।

अधिक भीड़ के कारण Discetility प्राप्त होती है। इसलिए इस विश्लेषण से हम **Crowding Cost** को भी शामिल करते हैं। OB वक्र Percapita Crowding Cast को बताता है और OBM Marginal Per Capita Cost को बताना है। इस प्रकार Optimum Community Size ON_2 होगा। सन्तुलन E बिन्दु पर स्थित होगा। क्योंकि OBM और Am Am वक्र E बिन्दु पर बराबर है EP+ से परे किसी भी बिन्दु पर को बढ़ाने से कुल कल्याण में कमी होगी। इसलिए Optimal Community size ON_2 होगा। हाँ प्रत्येक व्यक्ति को OC लागत वहन करनी पड़ेगी।

अब अगर Service Level बढ़ जाता है जो उसके परिणाम स्वरूप Service Cost भी बढ़ जाएगी। जिससे AA Curve A,A, तथा Am Am वक्र Am, Am, हो जाएगें। पुनः सन्तुलन वहाँ होगा जहाँ AM, OBM के बराबर है। जिससे Optimum community size भी बढ जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति को OD लागत वहन करनी पड़ेगी।

(B) **Determination of Optimal Service Level**

किसी दिए हुए समुदाय के लिए **Optimum Service Level** क्या होगा इनकी व्याख्या रेखाचित्र द्वारा की जा सकती है।

Ox Axis पर Service Level व Oy Axis पर Per Capita Service Cost ली गई है। Service Level के निर्धारत के लिए माँग तथा पूर्ति वक्रो की आवश्यकता होगी है। dia में DD व्यक्तिगत मांग वक्र है। SS वक्र सेवा को प्रयोग करने की लागत वक्र है। अगर Comm Size ON_2 है तो Supply Schedule $S_2 S_2$ होगा और Service Level CQ_2 निर्धारित होगा। इसी प्रकार अगर Comm. size ON_4 है Supply Schedule S_u S_u होगा और Service level Cos_4 निर्धारित होगा।

Determination of Optimal Structure इस प्रकार Optimal Comm. size और Optimal Service Level की सहायता से हम Optimal Structure का निर्धारण कर

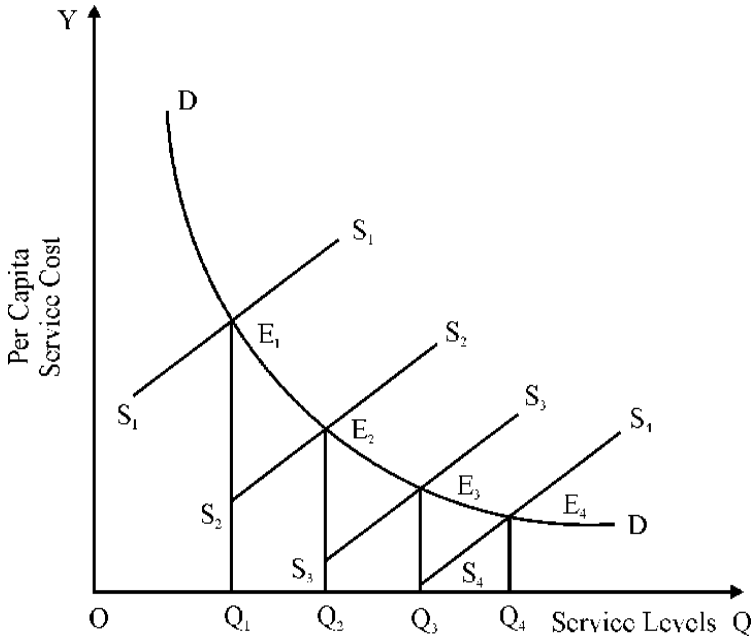

सकते हैं। इस रेखाचित्र द्वारा बताया जा सकता है। Ox Axis पर Size of Community तथा Oy Axis पर Service Level लिया गया है NN वक्र विभिन्न सेवा स्तर दिए होने पर Optimum Community Size of को बताता हैं। OQ_1 विभिन्न समुदाय के आकार पर Optimum service Level को बताता है

NN Curv, OQ वक्र को E बिन्दु पर काटता है तथा यही सन्तुलन की स्थिति है। इसके अनुसार ONu Comm. size के लिए OQu Service Level की आवश्यकता है। EP+ से परे कहीं भी सन्तुलन की स्थिति नहीं पाई जाती। क्योंकि EPi से पहले Size of Comm. Service Level से कम है। जिसके परिणामस्वरूप सदस्यों को लागत अधिक देनी पड़ेगी। इसलिए लागत कम करने के लिए Comm. size को बढाया

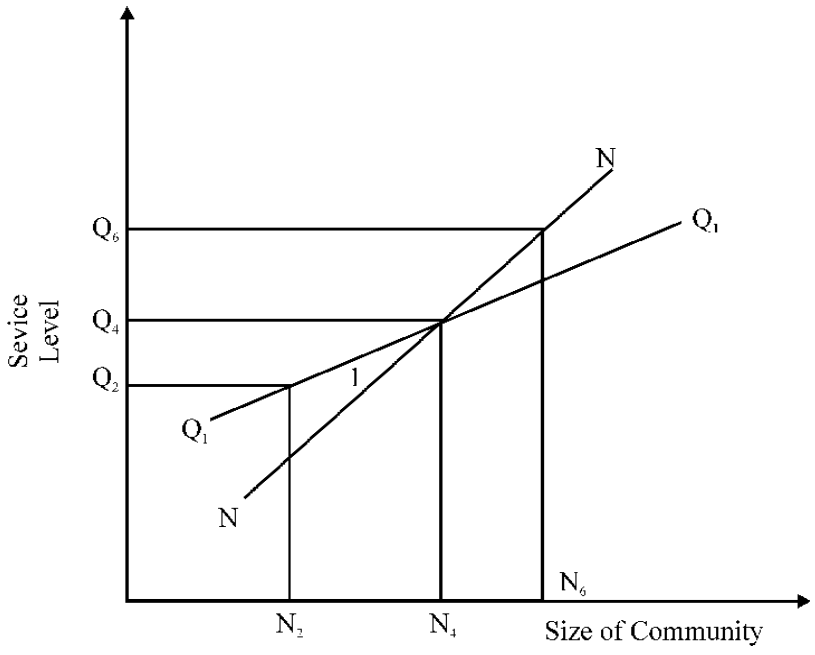

जाएगा। इसी प्रकार EPt के बाद Comm. Size, Service Level से अधिक है। इसलिए Over Crowding की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार सन्तुलन EP+ पर ही होगी।

Limitations of this Model

Optimal Fiscal Comm. के Model में हमने कुछ मान्यताएँ मानी। यदि इन मान्यताओं में परिवर्तन आ जाए तो हमारे Model में कुछ Complications आ जाएगी। जैसे -

1. **Difference in Task:** यदि हम ये मानते है कि सभी व्यक्तियों की रुचि समान है तो Local Fiscal Units भी समान रहती है। परन्तु वास्तव में लोगों की रुचि असमान होती है क्योंकि सार्वजनिक सेवाओं के लिए प्राथमिकताएँ अलग-अलग होती हैं। इसलिए Efficient Solution के लिए आवश्यक है कि समान रुचि वाले व्यक्ति अपने-अपने ग्रुप बना लें।

   परन्तु इससे Community छोटी-छोटी इकाईयों में बंट जाएंगे और जो लाभ हमें Optimum Comm. Size से प्राप्त होते थे वे अब हमें नहीं मिलेंगे। अर्थात उन लोगों के रूप में हमें लागत वहन करनी पड़ेगी।

2. **Difference in Income:** Fiscal Unit में तब भी अन्तर आता है जब लोगों की आम में अन्तर हो। क्योंकि सार्वजनिक वस्तुओं के लिए लोगों की प्राथमिकता में अन्तर आय में अन्तर के फलस्वरूप भी उत्पन्न होती है।

   परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि Tax जो कि सार्वजनिक वस्तु की पूर्ति के लिए लोगों द्वारा दिया जाता है। आम बढ़ने के साथ-साथ अधिक होता जाता है। फलस्वरूप जिसकी आम अधिक है वो, जिसकी आय कम है उसकी तुलना में अधिक लागत वहन करता है। जिससे आय व धन का समान वितरण होने लगता है।

3. **Congusted Goods:** अभी तक हमने Multi Unit Finance की समस्याओं का अध्ययन किया वो सभी Pure Social Good थी अर्थात उन वस्तुओं में Non-rival in Consumption पाया जाता है। परन्तु Local Goods Public Good से अलग होती है। जैसे - Fire Station Sewage Disposal Plant आदि ये सभी Municipal Govt. द्वारा दी जाती है। इनमें Non-Rival in Consumption नहीं पाया जाता क्योंकि एक निश्चित सीमा के बाद एक और उपभोक्ता शामिल करने से उस सेवा की Quality कम हो जाती है अर्थात् Congusted Goods की स्थिति में Crowding Cost अधिक है अधिक व्यक्ति होने से Disutility अधिक होती है।

4. **Economies of Scale:** कुछ ऐसी वस्तुएँ तथा सेवाएँ भी हैं जिनसे ब्राह्म तथा आन्तरिक बचते प्राप्त होती है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

   यदि कोई सेवा 100 लोगों को दी जाती है तो उसकी लागत 1000 Rs. आती है और यही सेवा 200 व्यक्तियों को दी जाती है तो कुल लागत 1600 Rs. आती है। इस प्रकार

Per Capita Cost of Community 100 is = 10 Rs.

Per Capita cost of Community 200 is = 5 Rs.

Sewer, Construction, Sanitary Facilities आदि ऐसी सेवाएं है जिससे पैमाने की बचते प्राप्त होती है। इसलिए जब Optimal Size of Community निर्धारित किया जाए तो बचतों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

Voting by Feet: इस प्रकार इन समस्याओं के कारण कोई Efficient Solution नहीं निकलता, Efficient निकालने का एक तरीका है 'voting by Feet'

अगर हमें ये शर्त रखें कि प्रत्येक समुदाय अपने सार्वजनिक सेवाओं की लागत स्वयं वहन करता है तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी रूचि अथवा प्राथमिकताओं के अनुसार सम्प्रदाय का चुनाव कर सकता है। जैसे - अगर व्यक्ति खेलों को अधिक पसन्द करता है तो वे उन लोगों को साथ सम्प्रदाय का चुनाव कर सकता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति संगीत को पसन्द करते हैं वे उन व्यक्तियों के साथ सम्प्रदाय बनाएंगे जो संगीत से सम्बन्धित Building के निर्माण को प्राथमिकता देंगे।

यह सिद्धांत केवल उसी समय तक लागू हो सकता है जब तक Location चुनने के लिए वित्त एक महत्त्वपूर्ण साधन है। परन्तु नौकरी और घर से सम्बन्धित निर्णय लेने में अवास्तविक लगता है जैसे - यदि कोई व्यक्ति नगर के अन्दर काम करता है तथा नगर के बाहर रहने की योजना बनाए तो यह सिद्धान्त लागू नहीं होता। अब प्रश्न यह उठता है कि Tax-Disign कैसा हो ? For eg National Defence के लिए Income Tax प्रत्येक व्यक्ति से लिया जाए। Local Services के लिए उन्हीं व्यक्तियों से जिनको फायदा मिल रहा होता है। Benefit के अनुसार Taxation किया जा सकता है। अतः Spatial Dimension of Allocation Function तीनों Govt के द्वारा किया जाना चाहिए।

So, allocation for should be done or performed at different level. So, there is a need of MULTI UNIT FIANANCE. साधनों का तभी उचित बंटवारा हो सकता है।

II. Spatial Demension of Distribution Function

प्रश्न यह उठता है कि वितरण का कार्य किस स्तर पर किया जाए ? केन्द्र स्तर पर या राज्य, या स्थानीय स्तर पर। यह कार्य State or Local Levels पर नहीं किया जा सकता। क्योंकि यदि एक राज्य आय और धन की असमानता को दूर करने के लिए **Direct Taxes** में व द्धि कम करता है तो अमीर व्यक्तियों पर कर लगाता है तथा गरीब व्यक्तियों के कल्याण के लिए कार्यक्रम बनाया है। Pansion देता है तो अन्य राज्यों के व्यक्ति वहाँ पर Migrate कर सकते हैं। इसलिए ये कार्य स्थानीय और राज्य स्तर पर सफल नहीं हो पाएगा। इसलिए Distribution Funcation केन्द्रीय स्तर पर करना चाहिए। केन्द्रीय सरकार या Fedral Govt. आय वह धन की असमानता को दूर करने के लिए अनेक Methods अपना सकती है।

eg Progressive Taxes more Expenditure on Poor is Welfare यदि क्षेत्रीय असन्तुलन है तो उसे भी Centre Level पर दूर किया जा सकता है। क्षेत्रीय असन्तुलन को को पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगीकरण तथा आधारभूत सुविधाएँ प्रदान करके दूर किया जा सकता है। So, it can be performed at the centre level.

III. Spatial Dimension of Stablization Function

Stablization Function देश में Inflation Deflation तथा Unemployment को दूर करने के प्रयासों से सम्बन्धित है। अधिकतर देशों में मन्दी और तेजी को नियन्त्रित करने के उपाय किए जाते है। 1929-30 की महामन्दी के बाद Keynesian View द्वारा ऐसे विचार प्रस्तुत किए जाते रहे है। ये कार्य भी Central Level पर अच्छी प्रकार से किया जा सकता है। केन्द्रीय नीति उचित प्रकार से लागू हो यदि हम मन्दी व तेजी को या बेरोजगारी को दूर करना चाहते है तो दूर कर सकते है। Goods और Capital का आवागमन होता है। All the markets are get together with the each other समस्त देश के आन्तरिक व्यापार के कारण सफल नहीं हो पाता इसलिए Centre Level पर ही Stablization Possible है। ये निर्णय Fiscal और Monetary Policies की Help से सम्पन्न हो सकते है। लेकिन विभिन्न देशों की Markets एक दूसरे से जुड़ी हुई है इसलिए हम मन्दी को आयात कर सकते हैं। इसलिए इस संबंध में **International Fiscal Construction** की आवश्यकता है। एक का प्रभाव सारी दुनिया में फैल जाता है।

अतः Allocation Function के लिए Multi Unit Finance की आवश्यकता होती है लेकिन Distribution व Stablization Finance मे Multi Units Finance की नहीं, अपितु Unitary Finance की आवश्यकता होती है।

Conclusion:

निष्कर्षतः कहा जा सकता है आबंटन संबंधी कार्य विभिन्न स्तरों की सरकारों द्वारा ही किए जाने चाहिए तथा वितरण व स्थिरीकरण सम्बन्धी कार्य केवल केन्द्र सरकार द्वारा ही किये जाने चाहिये तभी अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

अध्याय - 25

अनुदान निर्धारण के सिद्धान्त

(Principle of Grant Design)

वह राशि जो केन्द्र सरकार राज्य सरकारों व स्थानीय सरकारों को विभिन्न प्रकार की सहायता के रूप में प्रदान करती है। उन्हें अनुदान (Grants) **कहते है**

Type of Grants (i) Specific Grants (ii) General Grants

(i) **Specific Grant: इसको** Condition **या** Catagerical Granls **भी कहते है। जो राशि राज्य की वितीय स्थिति को देखे बिना दी जाती है तथा जिसका उपयोग राज्य सरकार को केन्द्र सरकार के दिशा-निर्देश के अनुसार करना पड़ता है। उसे ही** Condition Grants **कहते हैं।**

Uncondition Grants: जो सहायता की राशि केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को उनके खर्च और आय के अन्तर को दूर करने के लिए दी जाती है। तथा जिनका उपयोग राज्य सरकार अपनी इच्छा के अनुसार स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कर सकता है। उसे ही Uncondition Grants **कहते हैं।**

(ii) **General Grants:** (i) Matching Grants (ii) Non-Matching Grants

Matching Grants: जिस सहायता की राशि का उपयोग राज्य सरकार Private Goods

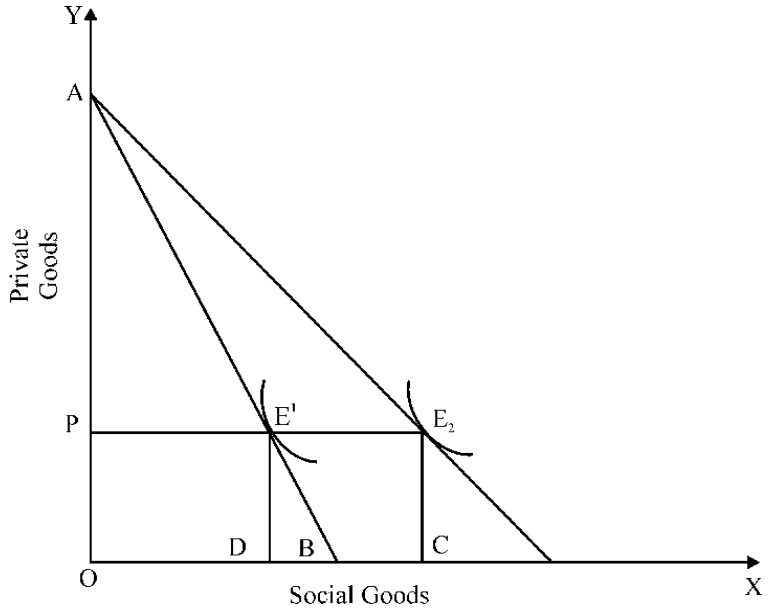

की अपेक्षा Social Goods पर करती है। तो उसे Matching Grants कहते है। इसको रेखाचित्र से दर्शाया जा सकता है।

रेखाचित्र से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ से सरकार E^1 बिन्दु पर सन्तुलन में होती है। इस बिन्दु पर O P निजी वस्तु का तथा O D सामाजिक वस्तु का उत्पादन करती है। परन्तु जब केन्द्र सरकार द्वार Matching Grants प्रदान की जाती है तो अर्थव्यवस्था E_2 बिन्दु पर पहुँच जाती है जिसके कारण सामजिक वस्तु सस्ती हो जाती है तथा कम सहायता की राशि से उतने ही Social Goods उपलब्ध हो जाती है।

Non-Matching Grant जिस सहायता की राशि का उपयोग राज्य सरकार निजी वस्तु तथा सार्वजनिक वस्तु पर समान रूप से करती है तो उसे Non-Matching Grants कहते हैं। इसको रेखाचित्र से दर्शाया जा सकता है।

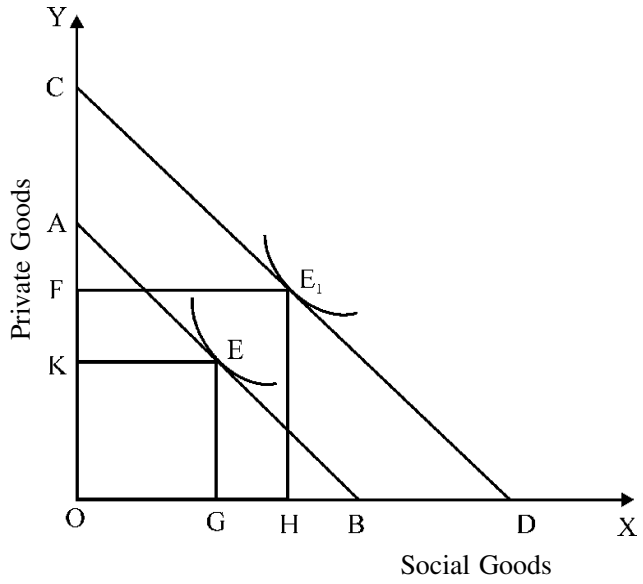

रेखाचित्र से ज्ञात होता है कि आरम्भ में अर्थव्यवस्था A B के बिन्दु पर होती है। परन्तु जब सरकार द्वारा अनुदान राशि प्रदान की जाती है। तो A B रेखा ऊपर की और बढ़कर C D रेखा बन जाती है। जिसके कारण सार्वजनिक वस्तु के साथ निजी वस्तु भी सस्ती हो जाती है। तथा उपभोक्ता सन्तुलन बिन्दु स्थापित होता है। सार्वजनिक वस्तु की माँग H बिन्दु तक बढ जाती है तथा निजी वस्तु की माँग F बिन्दु तक बढ जाती है।

Contribution Gernal and Specific Grant: केन्द्र सरकार के सामने जब यह समस्या उत्पन्न होती है कि राज्य सरकार को जो अनुदान राशि प्रदान की जाती है। जो उसे General रूप में दी जाए या Specific रूप में प्रदान की जाए क्योंकि एक सीमा तक General Grants और Specific Grants अधिक प्रभावशाली हो जाती है। इसको रेखाचित्र से दर्शाया जा सकता है।

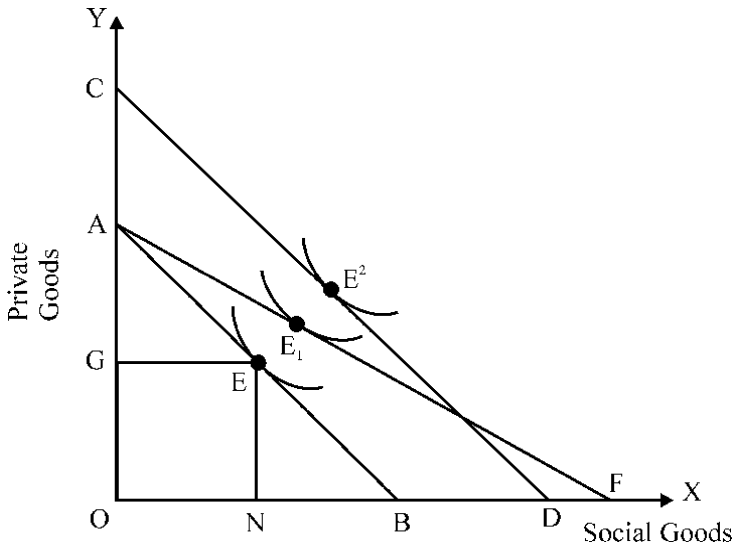

रेखा चित्र से ज्ञात होता है कि आरम्भ में सन्तुलन E बिन्दु पर होता है और यदि Gernal Grants प्रदान की जाती है E^2 पर सन्तुलन हो जाता है यदि X वस्तु के लिए Grants दी जाए तो नई कीमत रेखा A F है तो उतनी वस्तुओं की आपूर्ति कम Grants पर होती है परन्तु यह ध्यान देने योग्य एक सीमा तक Gernal Grants दी जाती है तो उसका प्रभाव Specific Grants से कम हो जाता है।

अध्याय - 26

केन्द्रीय सरकार के आय के स्रोत

(Sources of Revenue for the Central Govt.)

सविधान के केन्द्रीय सरकार के आय संबंधी मुख्य साधनों को दो भागों में बांटा है।

(i) आय के कर साधन

(ii) आय के गैर-कर साधन करों को हम दो भागों में बांट सकते हैं।

(i) प्रत्यक्ष कर (ii) अप्रत्यक्ष कर

I. प्रत्यक्ष कर

केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाए जाने वाले मुख्य प्रत्यक्ष कर निम्नलिखित हैं।

(i) **आयकरः** आयकर संघीय सरकार की आय का एक महत्वपूर्ण साधन है। आय कर एक न्यूनतम आय सीमा के ऊपर लगाया जाता है। 1998-99 के बजट में यह न्यूनतम सीमा 50,000 रुपये निश्चित कर दी गई। यह कर प्रगतिशील कर प्रणाली पर आधारित है। निजी व्यक्तियों अविभाजित हिन्दू परिवारों (H.U.F) आदि के लिए करों की दर भिन्न-भिन्न होती है। भारत में आयकर की दर कम से कम 10% तथा अधिक से अधिक 30% है। दसवें वित आयोग की सिफारिशों के अनुसार आय कर का 77.5 भाग राज्यों में बांटना पड़ता है। 2002-03 के बजट के अनुसार इस कर के 42,524 करोड़ रुपये आय प्राप्त होने का अनुमान है। आयकर के करदाताओं का वर्गीकरण निम्न भागों में किया जाता हैः (1) व्यक्तिगत (2) अविभाज्य हिन्दू परिवार या संयुक्त हिन्दू परिवार (3) कपंनिया (4) स्थानीय संस्थाएं (5) हिस्सेवार फर्म (6) व्यक्तियों का संघ।

निगम करः व्यापारिक कंपनियों और निगमों की आय पर जो कर लगाया जाता है उसे निगम कर कहते हैं। निगम कर का निर्देशन आय कर अधिनियम और वित अधिनियम दोनों के ही निगमों द्वारा होता है। कंपनियों पर आय कर अर्थात निगम कर ब्याज, मजदूरी तथा मूल्य_ह्रास जैसी सभी लागतों को निकालने के बाद उन कर योग्य लाभों से अदा किए जाते हैं जो किसी कर-निर्धारण वर्ष में से निगम कर द्वारा कमाए जाते हैं निबल लाभों का शेष भाग शेयर होल्डरों में बांट दिया

जाता है। शेयर होल्डरों द्वारा अर्जित की गई इस प्रकार की आय पर लाभांश कर तथा अधिक कर लगाए जाते है, निगम कर बढ़ता हुआ प्रतीत हो रहा है, जैसे -

Year	Revenue
1970-71	472 Crore
1990-91	10,712 Crore
2000-01	71,650 Crore

सम्पति करः यह एक आवर्ती कर है जबकि पूंजी कर एक अनावर्ती कर है। यह कर किसी व्यक्ति की पूंजी पर हर वर्ष लगाया जाता है। आस्ति कर तथा संपति कर में मुख्य अंतर यह है कि आस्ति कर किसी व्यक्ति की म त्यु के बाद लगाया जाता है परन्तु सम्पति का लोगों को अपने जीवन काल में देना पड़ता है। 1985-86 के आस्ति करों को समाप्त कर दिया गया। यह व्यक्तियों (H.U.F) हिन्दू अविभाजित परिवारों तथा कपंनियों के शुद्ध धन पर वार्षिक कर के रूप में लगाया जाता है। इस कर को समता व न्याय आर्थिक प्रभाव तथा प्रशासनिक कार्यक्षमता के आधार पर न्यायोजित ठहराया गया था।

2001-2002 के केन्द्रीय बजट में इस कर से 145 करोड़ रुपये की आमदनी होने का अनुमान है।

II. अप्रत्यक्ष कर (Indirec Tax)

ये कर केन्द्रीय सरकार की आय का एक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत है। यद्यपि यह कर उपभोग की मात्रा को परिभाषित करने में सहायक होते हैं, परन्तु इनके प्रभाव अवरोही होते हैं।

ये कर न्यायशीलता के अनुरूप नहीं होते। केन्द्रीय सरकार के मुख्य अप्रत्यक्ष कर निम्नलिखित हैं।

(i) **केन्द्रीय उत्पादन करः** यह कर देश में उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं पर उस समय लगाया जाता है जबकि वस्तुओं का उत्पादन हो रहा होता है। स्पष्ट है कि इस कर को वस्तुओं के उत्पादन कर्ताओं अथवा वस्तुओं के निर्माताओं अथवा वस्तुओं के थोक व्यापारी से वसूल किया जाता है। जब ये वस्तुएं उपभोक्ताओं के पास पहुँचती है। यह कर वस्तुओं की कीमतों में शामिल हो जाता है। इस प्रकार यह कर प्रारंभ वस्तुओं के निर्माताओं से वसूल किया जाता है किन्तु इसका अन्तिम कर उपभोक्ताओं पर पड़ता है। इस प्रकार यह अप्रत्यक्ष कर देने के संकेत प्रदान करता है। 2002-03 के बजट से 91,433 करोड़ रुपये की आय प्राप्त होने का अनुमान है। सरकार उत्पादन शूल्कों मूल्य व द्धि दर (VAT) के रूप में वसूल करने को अधिक महत्त्व दे रही है।

(ii) **Custom Duty:** सीमा शुल्क संसार का सबसे पुराना शुल्क है। आरंभ में यह व्यापारियों के व्यापारिक लाभों पर लगाया जाता था। आजकल सीमा शुल्क उत्पादन शुल्क की भांति वस्तुओं पर लगाया जाता है। सीमा शुल्क या तो मूल्यानुसार लगाये

जाते हैं या परिमाणानुसार जब ये मूल्यानुसार लगाए जाते हैं तो इन्हे यथारत्य (Ad-valarem) कहते हैं और जब ये परिमाणानुसार लगाए जाते हैं तो इन्हें परिभाषिक कहते हैं। प्रथम प्रकार के सीमा शुल्क की दरें वस्तुओं के मूल्य पर निर्भर करती हैं और ये प्रगतिशील होती हैं। दूसरी प्रकार के सीमा शुल्क वस्तुओं की मात्रा, संख्या आकार एवं लाभ के अनुसार लगाए जाते हैं। और ये प्रतिगामी होते हैं।

सीमा शुल्क दो प्रकार के होते है (1) आयात शुल्क (Import Duty) (2) निर्यात शुल्क आयात शुल्क उन वस्तुओं पर लगाए जाते है जो विदेशों से देश की सीमाओं के भीतर आते है और निर्यात शुल्क उन वस्तुओं पर लगाए जाते है जो देश की सीमाओं से बाहर विदेशों को भेजी जाती हैं।

Expenditure Tax: व्यय कर एक ऐसा कर है जो लोगों द्वारा किए गए उपभोग-व्यय की धनराशि पर लगाया जाता है इस कर में करदाता की व्यक्तिगत परिस्थितियों के अनुसार हेर-फेर किया जा सकता है और इसे आरोही बनाया जा सकता है। व्यय कर के अन्तर्गत चूंकि खर्च करने पर कर लगाया जाता है अतः इससे बचतों को प्रोत्साहन मिलता है फिर एक बात यह है कि अपने उद्यम तथा निवेश द्वारा जो लाभ कमाता है उसका एक अच्छा भाग करो के रूप में ले लिया जाता है, परन्तु हानियों की स्थिति में उसमें कोई क्षतिपूर्ति नहीं होती। इस तरह से व्यय कर का निवेश तथा उधम पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता जैसा कि आय कर का पड़ता है क्योंकि यह लोगों के व्यक्तिगत खर्चों पर लगाया जाता है ब्याज और लाभों पर नहीं। इसी प्रकार, व्यय कर व्यक्ति की अधिक काम करने की इच्छा पर भी कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता।

Arguments in Favour of Expenditure Cash

1. **It Provide Incentive to Saving and Investment:** बचत तथा निवेश अत्यधिक क्रगवर्धी कर प्रणाली के प्रभाव में अच्छे नहीं होते। वास्तविकता यह है कि आय पर यदि अत्यधिक आरोही प्रत्यक्ष कर लगाए जाते है।
2. इस कर के लगने से लोगों की विलासिता की सामग्री खरीदने और अनुत्पादक खर्च करने की प्रव ति कम हो जाती है।
3. व्यय पर कर लगने से करों की चोरी आय कर की तुलना में कम होगी तथा करों से रकम एकत्र करना आसान होगा।

Objections of Exp. Tax

व्यय कर की आलोचना में अनेक तर्क दिए जा सकते हैं जो इस प्रकार से हों।

1. **व्यय को ज्ञात करना कठिनः** व्यय का पता लगाना एक बड़ा कठिन कार्य है। व्यय अनेक मदों पर किया जाता है अतः उनकी मात्रा नहीं मालूम की जा सकती। फिर जिन मदों पर खर्च किया जाता है उनका भी हर एक को पता नहीं होता। अतः खर्च को प्रामाणिक कर सकना कठिन होता है।

2. **वितरण में असमानता:** व्यय कर बचतों को प्रोत्साहित करना है अतः इससे हो सकता है कि इससे धन के वितरण में असमानताओं में व द्धि हो।

3. **सभी वर्गों द्वारा समान कर चुकाना:** यदि व्यय को कराधान कर आधार बनाया गया तो भिन्न-भिन्न आर्थिक परिस्थितियों में रहने वाले को भी यदि उनका व्यय एक समान है तो एक समान ही कर देना होगा। इसमें एक अमीर व्यक्ति के मुकाबले गरीब वर्ग पर कर का भार अधिक पड़ेगा। इस प्रकार से व्यय कर के भार को अवरोही कहा जाएगा।

Non-Tax Revenue of the Center Govt. of India

1. **ब्याज प्राप्तियाँ:** भारत सरकार ने राज्यों तथा अन्य संस्थाओं को काफी मात्रा में ऋण दिया हुआ है। इन ऋणों पर भारत सरकार को ब्याज के रूप में काफी आय प्राप्त होती है। 2002-03 के बजट के इन ऋणों से 41,401 करोडों रुपये आय प्राप्त होने का अनुमान है।

2. **करेंसी तथा सिक्के:** केन्द्रीय सरकार को एक रुपये के नोट छापने तथा सांकेतिक सिक्के टकसाल मे ढालने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। सरकार को चलन में प्रामाणिक सिक्कों तथा पत्र मुद्रा के निर्गमन से लाभ होता है। इससे भी भारत सरकार को प्रति वर्ष आय की प्राप्ति होती है। 1998-99 के बजट में इस मद से 824 करोड़ रुपये की आय हुई है।

3. **सामाजिक सेवाएँ:** भारत सरकार शिक्षा, सार्वजनिक चिकित्सा, स्वास्थ्य तथा कई प्रकार की अन्य सेवाएँ प्रदान करती है। इन सेवाओं के बदले में सरकार को आय की प्राप्ति होती है। 1998-99 में इससे 961 करोड़ रुपये की आय प्राप्ति हुई।

4. **आर्थिक सेवाएं:** भारत सरकार, सड़क, भवन, निर्माण आदि कई प्रकार के कार्य करती है। भारत सरकार के 1998-99 में 10,225 करोड़ रुपये आय की प्राप्ति हुई थी।

5. **डाक तार विभाग:** सरकार को भी डाक तार विभाग से काफी आय प्राप्त होती है। ये सेवाएं यद्यपि जनता को सुविधाए पहुँचाने के लिए प्रदान की जाती है। फिर भी इनसे केन्द्रीय सरकार को आय की प्राप्ति होती है। 1998-99 मे इससे 4,405 करोड़ रुपये आय की प्राप्ति हुई थी।

6. **रेलें:** रेलों से भारत सरकार को काफी आय प्राप्त हुई है यह केन्द्रीय सरकार की पूंजी है। 2001-2002 के बजट मे रेलवे से सरकार को लाभांश के रूप में 831 करोड़ की शुद्ध आय मिली।

अध्याय - 27

वित्त आयोग

(Finance Commission)

वित्त आयोग क्या है। इसके कार्य क्या हैं तथा इसका गठन कैसे होता है।

वित्त आयोग एक स्वतन्त्र अर्थ न्यायिक विशेषज्ञ निकाय के रूप में काम करके राष्ट्रपति को करों के विभाजन अनुदान मामलों पर जो इसे सौंपे गए हो, अपने सुझाव देता है।

वित्त आयोग सामान्य रूप से केन्द्र एव राज्यों के बीच राजस्व के वितरण संबंधी विषयों पर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करता है ताकि केन्द्र तथा राज्यों के बीच किसी प्रकार का विवाद न रहे। वित्त आयोग का मुख्य उद्देश्य राज्य की आवश्यकताओं का मूल्याकन करना तथा संघीय वित्त प्रणाली को सुद ढ करना होता है।

वित आयोग गठन

सविधान के अनुसार प्रत्येक पाँच वर्ष की समाप्ति पर या उससे पहले राष्ट्रपति उचित समझे तो आदेश द्वारा एक वित्त आयोग का गठन करेगा। इसके एक अध्यक्ष तथा चार अन्य सदस्य होंगे। अनुच्छेद 280 (2) के अनुसार इन सबकी नियुक्ति का तरीका संसद विधि द्वारा निर्धारित करेगी। वित आयोग अधिनियम 1951 के अनुसार आयोग के अध्यक्ष तथा चार अन्य सदस्यों की निम्न आवश्यकताएं है।

1. उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश होने की योग्यताएँ रखते हैं।
2. सरकारी खातों पर वित्तीय मामलों का विशेष ज्ञान रखते हैं।
3. वितीय अथवा प्रशासनिक मामलों का विस्त त अनुभव रखते हों।
4. अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञान रखते हैं।

सदस्यों की पदावधि

आयोग के सदस्य उसी समय तक पद पर बने रहेंगे जो राष्ट्रपति के आदेश में दिया गया है। किसी भी सदस्य की पुनः नियुक्ति हो सकती है।

वित्त आयोग के कर्तव्य

1. आयोग का कर्तव्य है कि वह निम्न विषयों पर राष्ट्रपति को अपनी सिफारिश करे।
2. करों से आय का केन्द्र व राज्यों में वितरण तथा राज्यों को इस आय का अंश निर्धारित करने के संबंध में।
3. राज्यों के राजस्व में सहायक अनुदानों को विनियमित करने वाले सिद्धांत के संबंध में।
4. राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे गए किसी अन्य विषय के संबंध में।

वित्त आयोग के कार्य

वित आयोग के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं।

1. केन्द्र तथा राज्यों में विभाजित होने वाले करों से प्राप्त धन के बंटवारे का आधार निश्चित करना है।
2. राज्यों को केन्द्र से मिलने वाले अनुदान के संबंध में सिद्धांत बनाना।
3. भारत सरकार तथा राज्यों के बीच में होने वाले समझौते जारी रखना या उनमें परिवर्तन करने की सिफारिश करना।
4. देश के वित्तीय हित में राष्ट्रपति द्वारा सूचित किये जाने पर किसी अन्य मामलों पर भी विचार करना।

भारत में अब तक ग्यारह वित्त आयोगों का गठन किया जा चुका है। पहले वित्त आयोग का गठन 1951 में श्री के॰ सी॰ नियोगी की अध्यक्षता में किया गया अब तक गठित ग्यारह में से दस वित्त आयोगों ने अपनी सिफारिश दे दी है।

इन्हें तीन शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है।

1. आयकर तथा अन्य करों का विभाजन तथा वितरण।
2. अनुदान एवम्
3. संघ द्वारा राज्यों को दिये गये ऋण।

1. **आयकर तथा अन्य करों का विभाजन तथा वितरणः** आयकर के वितरण के संबंध में विभिन्न वित आयोगों द्वारा की गई सिफारिशों को निम्नलिखित तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

   आयकर के संबंध में वित्त आयोगों की सिफारिशें

राज्यों में आयकर का वितरण

वितरण का आधार प्रतिशत

वित्त आयोग	आयकर के राज्यों का भाग	जनसंख्या के आधार पर	राज्य द्वारा एकत्र की गई आय के आधार पर
छठवाँ	80	90	10
सातवाँ	85	90	10
आठवाँ	85	90	10
नवाँ	85	90	10
दसवाँ	77.5	20	80

2. **राज्यों को सहायता अनुदानः** इस संबंध में दसवें वित आयोग की सिफारिशों को निम्नलिखित तालिका द्वारा दर्शाया गया है। राज्यों को सहायता अनुदान की राशि, वित्त आयोग, सहायता अनुदान का उद्देश्य।

   दसवाँ 1995-2000 की अवधि के लिए कुल 20,300 करोड़ रुपये का अनुदान इसमे से -

   (1) 7580 करोड़ रुपये राज्यों के राजस्व घाटे की पूर्ति हेतु।

   (2) 4730 करोड़ रुपये वितीय राहत के लिए।

3. 5380 करोड़ रुपये स्थानीय निकायों के लिए।
4. 2610 करोड़ रुपये के अन्य अनुदान।

उत्पादन शुल्क का विभाजन एवम् वितरणः उत्पादन शुल्क के संबंध में दी गई सिफारिशों को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

उत्पादन शुल्क के संबंध में विभिन्न वित आयोगो की सिफारिशें

राज्यों में उत्पादन शुल्क का वितरण

वित्त आयोग	उत्पादन शुल्क में राज्यों का हिस्सा	जनसंख्या के आधार पर	राज्यों के पिछड़ेपन जैसी अन्य शर्तों के अनुसार
पांचवाँ	45 शुल्कों का 20%	80%	20%
छठवाँ	45 शुल्कों का 20%	75%	25%
सातवाँ	सभी शुल्कों का 40%	—	चार कारकों का 25%
आठवाँ एवम् नवाँ	सभी शुल्कों का 45%	—	नया फार्मूला
दसवां	सभी शुल्कों का 47.5%	—	नया फार्मूला

वित आयोगों की सिफारिशो का मूल्यांकन

भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् दस वित्त आयोग अपनी रिपार्ट प्रस्तुत कर चुके है। इस अवधि में परिस्थितियों में परिवर्तन होने के फलस्वरूप विभिन्न वित आयोगों की रिपोर्ट में अन्तर पाया जाता है। परन्तु इनकी रिपोर्ट में अंतर होते हुए भी कुछ ऐसी आधारभूत समानताएं भी पाई जाती है। जिन्हें संघीय वित्त के प्रति भारतीय वित आयोगों का द ष्टिकोण कहा जाता है। इनकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित है।

1. **अन्तराल में कमीः** वित्तीय आयोगों की राज्यों को हस्तान्तरण भुगतानों के संबंध में की गई सिफारिशों का मुख्य उद्देश्य उनके वर्तमान राजस्व के अतंराल को पूरा करना है इसलिए में यह हस्तातरण सामान्य तथा बिना शर्त के दिये गये है। यह कहा जा सकता है कि काफी सीमा तक विभिन्न तक विभिन्न वित्त आयोगों को सरकार द्वारा जो विचारार्थ विषय दिया गया हैं वे इस अन्तराल भराई द ष्टिकोण के लिए जिम्मेवार है।
2. **आवश्यकता के आधार पर केन्द्रीय करों के आबंटन का अभावः** भारत के वित्त आयोगों ने केन्द्रीय करों में राज्यों के हिस्से का सही प्रकार से आवश्यकता के आधार पर बंटवार नहीं किया गया है। इसके विपरीत विभिन्न करों में अलग-अलग राज्यों के हिस्से का निर्धारण विभिन्न फार्मूलों के आधार पर किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि कुछ राज्यों को केन्द्रीय करों में गैर योजना व्यय के लिए आवश्यकताओं से अधिक भाग प्राप्त हो जाता है। तथा कुछ राज्यों को आवश्यकता से कम भाग प्राप्त हो जाता है। उनके बजट के घाटे को आयोग अनुदान द्वारा पूरा करने का प्रयत्न करता है। अनुदान की राशि बजट के घाटे पर निर्भर करती है। इसका निर्धारण किसी अन्य सूचक जैसे विकास का स्तर विशेष आवश्यकताओं आदि पर निर्भर नहीं करता।
3. **आर्थिक विषमताः** वित्तीय आयोग की कई सिफारिशों के कारण विभिन्न राज्यों के बीच आर्थिक विषमता में व द्धि हुई है। इसका एक कारण यह भी है कि वित्त आयोग एक स्थायी संस्थान नहीं है। इसलिए उनकी सिफारशों में निरन्तरता नहीं पाई जाती है। इसके फलस्वरूप आर्थिक विषमता को कम करने के लिए वित आयोग शीघ्रतापूर्वक आवश्यक उपायों में सुझाव नहीं दे पाते।

वित आयोग के कार्यकरण में सुधार के उपाय

वित आयोग के कार्यकरण में सुधार करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं:

1. **स्थाई वि त आयोग:** महत्त्वपूर्ण अर्थशात्रियों जैसे प्रो॰ लकड़वाला, उर्सला हिक्स, डा॰ वी॰ वी॰ भट्ट का यह सुझाव है, कि वित्त आयोग को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इसे एक स्थायी संस्था बना दिया जाना चाहिए। वित्त आयोग को स्थायी संस्था बनाने के कई लाभ होंगे।
   (i) स्थाई वित्त आयोग के फलस्वरूप सिफारिशों में आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन करना संभव होगा।
   (ii) इसके फलस्वरूप राज्यों की कर प्रणाली को विशेष कठिनाईयों तथा दायित्वों का निरन्तर मूल्यांकन करना संभव होगा।
   (iii) वित्त आयोग के कार्य में निरन्तरता बनी रहेगी।

   डा॰ के वी शास्त्री के अनुसार "वित्त आयोग के कार्यों में निरन्तरता होने के फलस्वरूप केन्द्र से वितीय हस्तांतरण भुगतान प्राप्त करने वाले राज्य उनका सर्वाधिक मितव्ययता पूर्ण उपयोग कर सकेंगे तथा राज्यों को हस्तांतरण भुगतान उनकी आवश्यकताओं के अनुसार प्राप्त हो सकेंगे।
2. **वित्त आयोग के कार्यक्षेत्र में विस्तार:** वित्त आयोग के कार्य क्षेत्र में विस्तार किया जाना चाहिए। इसके कार्यक्षेत्र में राजस्व तथा पूंजीगत खातों के सभी गैर योजना हस्तांतरण भुगतानों को शामिल किया जाना चाहिए इसका अभिप्राय यह है कि गैर योजना खाते में भी बिना आयोग की सिफारिशों के कोई हस्तांतरण नहीं किया जाना चाहिए।
3. **वित्त आयोग तथा योजना आयोग में अधिक समन्वय:** योजना आयोग तथा वित्त आयोग के बीच अधिक समन्वय की आवश्यकता है। पंचवर्षीय योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता का बंटवारा योजना आयोग की सिफारिशों पर होना चाहिए। परन्तु राज्यों को अधिक वितीय शक्ति देने के संबंध में वित्त आयोग तथा योजना आयोग को एक दूसरे के सहयोग से कार्य करना चाहिए।
4. **आर्थिक विषमता में कमी:** वित्त आयोग को राज्यों में आर्थिक विषमता कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि वित आयोग केन्द्र द्वारा राज्यों को विभाजित किये जाने वाले सभी करों जैसे आयकर उत्पादन कर आदि को एक ही विभाज्य राशि का भाग माने तथा उसका विभाजन राज्यों की आवश्यकता के आधार पर किया जाना चाहिए।

   संक्षेप में भारत की संघीय वित्त व्यवस्था को अधिक उपयोगी, तथा सुद ढ बनाने के लिए आवश्यक है कि वित्त आयोग के कार्यकरण को अधिक कार्यकुशल बनाया जाये।

अध्याय - 28

भारत का योजना आयोग

(Planning Commission In India)

भारतीय योजना आयोग की स्थापना 15 मार्च 1950 को एक मत्रिमण्डलीय प्रस्ताव द्वारा हुई। प्रस्ताव में इस पर बल दिया कि जनता का जीवन स्तर उठाने के लिए, युद्ध एवं विभाजन से हुई क्षति को पूर्ण करने के लिए तथा संविधान के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अनुरूप नियोजन का महत्त्व है। योजना आयोग से यह उम्मीद की गई है कि रोजगार प्रशासन के बोझ से मुक्त रहते हुए तथा सरकार से उच्चतम नीतिगत स्तर पर जुड़े रहते हुए वह व्यापक नियोजन कर सके।

योजना आयोग को देश के संसाधनों का कुशलता से दोहन करते हुए जनता का जीवन स्तर उठाने के लिए उत्पादन व द्धि एवं रोजगार अवसरो में बढोत्तरी से संबंधित जो कर्तव्य सौंपे गए थे वे इस प्रकार थे।

1. **साधन सामग्री पूंजी तथा मानव संसाधन का जायजा तथा परिव द्धिः** आयोग के लिए पहले जरुरी था कि वह विद्यमान सामग्री, पूंजी तथा मानव संसाधनों का जायजा ले जिसमे देश की तकनीकी जनशक्ति भी शामिल है। फिर उसे इन संसाधनों में देश की आवश्यकतानुरूप परिव द्धि करनी थी। इसमे योजना प्रकल्पों की मानव संसाधन आवश्यकताओं का अध्ययन करना तथा उसके अनुसार आवश्यक तकनीकी तथा विद्यापीठीय शिक्षा का बुनियादी ढांचा खड़ा करना निहित था। प्राकृतिक संसाधनों का गुणात्मक तथा संख्यात्मक अध्ययन शामिल था।
2. **संसाधनों का संतुलित उपयोगः** योजना आयोग के लिए जरुरी था कि वह देश के संसाधानों का अधिकतम उपयोग करने के लिए योजनाएँ बनाए ताकि अर्थव्यवस्था की अधिकतम विकास-दर सुनिश्चित हो, तथा जनता के लिए अधिकतम मात्रा में सामाजिक न्याय भी उपलब्ध हो।
3. **वरीयताओं का निर्धारणः** योजना आयोग की वरीयताओं का निर्धारण तय करने के लिएए लागत-लाभ विश्लेषण जैसी विशुद्ध कसौटियां विकसित करनी थी। पूंजी निवेश कसौटी, पूंजी उत्पाद अनुपात कसौटी भी इसमे शामिल थी। जब पूंजी निवेश करना हो तो ऐसी परियोजनाओं को वरीयता देना जरूरी था जो जनता की बुनियादी आवश्यकताओ को पूर्ण करने वाले सामान का उत्पादन करे।
4. **नियोजन तकनीकेंः** योजना आयोग को यह तय करना था कि नियोजन की सुधरी हुई

तकनीकें कौन सी हैं उसे श्रम-प्रधान तथा पूंजी-प्रधान तकनीकों में भेद करना था। भारी तथा हल्के उद्योगों आदि में चुनाव करना था।

5. **नीतिगत समीक्षाः** योजनाओं की नीतियां तथा व्यापक कार्य-नीतियां हर क्षेत्र के लिए अलग से तथा समूची अर्थव्यवस्था के लिए तय होनी थी। समय-समय पर उनकी समीक्षा जरूरी थी।

6. **सामाजिक परिवर्तनः** आर्थिक विकास को अवरुद्ध करने वाले तथ्यों और उसे बढाने वाले तत्वों का अध्ययन करना था। वैधानिक तथा अन्य उपायें द्वारा समाजिक संस्थाओं की सामाजिक व्यवस्था के लिए जनता की प्रव ति और द ष्टिकोण में बदलाव जरूरी था।

7. **प्रगति का मूल्यांकनः** योजना आयोग को समय-समय पर योजनाओं द्वारा उपलब्ध प्रगति का मूल्यांकन करना था। प्रशासन को सुधारने के लिए नीति तथा उसे कार्यरूप देने वाले उपायों में ताल-मेल सुझाने थे ताकि योजना का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन हो सके। योजना के सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं की गहराई से खोज करनी थी।

मंत्रिमण्डल के प्रस्ताव ने स्पष्ट शब्दों में योजना आयोग की सलाहकार की भूमिका व्यक्त की है। योजना को केन्द्र तथा राज्य सरकारों के मंत्रालय के निकट विचार-विमर्श करते हुए काम करना है। ये सरकारी ही सिर्फ निर्णय ले सकती है और उन्हें क्रियान्वित कर सकती है। इन सरकारों को लोगों को अपने साथ लिए चलना है। राज्य विधानसभाओं तथा केन्द्रीय संसद द्वारा उन्हें अनुमोदित करना जरूरी होता है।

विकास के दो पहलू हैं सामाजिक और आर्थिक। काम और बचत के प्रति खेमों में बदलाव लाना जरूरी है। लोगों में उच्च जीवन स्तर की आकांक्षा जगाना जरुरी है इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए योजना आयोग को योजना के क्रियान्वयन की हर अवस्था में उसकी सफलता के लिए अपने तंत्र का स्वरूप तय करना होगा।

योजना आयोग की रचनाः योजना आयोग की रचना मे दो मुद्दे ध्यान मे रखे गए हैंः

1. उसे केन्द्र तथा राज्यों सरकारें के निकट तथा निरन्तर सम्पर्क में रहना चाहिए उसे उनकी नीतियों तथा बदलती आर्थिक एवं अन्य स्थितियों का पूरा ज्ञान होना चाहिए। केन्द्र एवं मंत्रिमंडल के बीच निकट सम्पर्क सूल होना चाहिए।

2. उसे गैर-राजनीतिक संस्था होना चाहिए, ताकि उस पर राजनैतिक दलों के उतार-चढावों का असर न हो, उसे इस स्थिति में होना चाहिए कि वह अपने द ष्टिकोण स्वाधीनता एवं वस्तुनिष्ठता से तथ्य निर्धारित करे तथा उन्हें केन्द्र एवं राज्य सरकारों को पेश करें।

शुरुआत से ही प्रधानमंत्री योजना आयोग के अध्यक्ष रहे हैं। आयोग का रोजमर्रा का काम योजना आयोग का उपाध्यक्ष करता है जो कि एक पूर्ण कालिक सदस्य होता है। इसके अलावा योजना मंत्री पढ़ने सदस्य होता है। अन्य सदस्यों की नियुक्ति उनकी योग्यता के कारण होती है, न कि राजनैतिक द ष्टिकोण से।

सरकार से सम्पर्कः चूंकि आयोग का अध्यक्ष खुद प्रधानमंत्री होता है, मंत्रिमण्डल तथा आयोग के बीच उच्चतम स्तर पर सरकार से सम्पर्क बना रहता है। मंत्रिमण्डल से सम्पर्क सचिवालय स्तर पर भी होता। बाद में आयोग के रोजमर्रा कार्य के बोझ से उसे छुटकारा दिलाने के लिए आयोग का अतिरिक्त चुनाव नियुक्त किया गया। सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन के प्रस्ताव

तैयार किए जाते हैं तब योजना आयोग को अवसर दिया जाता है कि वह उन पर अपनी राय दे। जनता में विवादग्रस्त होने अथवा आलोचना का सीधा उतर देने से वह प्रतिबंधित है।

योजना आयोग की प्रमुख इकाइयाँ: योजना आयोग के चार तरह के विभाग है।

(क) समोजन विभाग, जिसमें शामिल हैः

(1) कार्यक्रम प्रशासन विभाग

(2) योजना-सयोजन अनुभाग

पहली इकाई, राज्य तथा केन्द्रशासित प्रदेशों की पंचवर्षीय तथा वार्षिक योजनाओं से संबंधित कार्य का संयोजन करती है ताकि एक संतुलित क्षेत्रीय विकास सुनिश्चित हो सके। उसका कर्तव्य है अधिक पिछड़े इलाकों का पता लगाना और उनकी जरूरी तरक्की के लिए कार्यक्रम तैयार करना।

दूसरी इकाई योजना-समोंजन अनुसार, योजना के विभिन्न विभागों के काम में तालमेल रखता है। और आयोग की बैठकें भी आयोजित करता है।

(ख) आय विभाग, आयोग के छः समान्य विभाग हैंः

(1) **आर्थिक विभागः** जो वितीय संसाधनों, आर्थिक नीति एवं विकास, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं विकास, मूल्य नीति तथा अन्तर उद्योग अध्ययनों से सम्बन्धित हैं।

(2) **परिप्रेक्ष्य नियोजन विभागः** यह मुख्य रूप से दीर्घकालीन विकास की समस्याओं तथा नीतियों से सरोकार रखता है। यह भविष्य के लिए लगातार संशोधित किए गए लक्ष्य प्रस्तुत करता है।

(3) **श्रमिक व रोजगार विभागः** वह समूचे देश में तथा राज्यों में रोजगार की स्थिति से संबंधित विश्लेषणात्मक अध्ययन संचालित करता है। बढ़ते हुए रोजगार के अवसर खासकर विभिन्न स्कीमों और कार्यक्रमों की रोजगार क्षमता, दस्तकार प्रशिक्षण योजनाएं श्रमिक शिक्षा, विद्यापीठ रोजगार ब्यूरो आदि भी उसके अध्ययन के विषय में है।

(4) **सांख्यिकी एवं सर्वेक्षण विभागः** यह हालांकि योजना आयोग के लिए काम करता है लेकिन असल में केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन का नियोजन प्रकोष्ठ है। उसके काम की देख-रेख केन्द्रीय सांख्यिकी सगंठन के निर्देशन द्वारा की जाती है।

(5) **संसाधन एवं वैज्ञानिक अनुसंधान विभागः** वह प्राकृतिक संसाधनों जैसे भूमि, जल, खनिज, तथा ऊर्जा संसाधन एवं वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान से संबंधित समस्या का सरोकार रखता है।

(6) **अंततः प्रबंध एवं प्रशांसन विभागः**

(ग) **विषय विभागः** कुल दस विषय विभाग हैं जिनमें प्रमुख है -

(1) कृषि विषयक विभाग

(2) सिचाई एवं उर्जा विभाग

(3) उद्योग एवं खनिज विभाग

(4) शिक्षा विभाग

(5) स्वास्थ्य विभाग

(घ) **विशेष विकास कार्यक्रम से सम्बन्धित विभागः** इसके अन्तर्गत निम्नलिखित दो विभाग महत्त्वपूर्ण हैं।

(1) ग्रामीण कार्य विभाग (2) लोग सहयोग विभाग

योजना आयोग की सलाहकारी संस्थाएं

1. **कार्यक्रय सलाहकारः** इसके अन्तर्गत अतिरिक्त सचिव स्तर के सरकारी अधिकारी होते है जोकि योजना निर्माण एवं उसके लिए सूचना एकत्र करने में सहायता करते हैं।
2. **सामान्य सचिवालयः** इसमे प्रशासनिक उपविभाग होते हैं तथा उनके प्रशासनिक अधिकारी एवं कर्मचारी होते हैं।
3. **तकनीकी विभागः** योजनाओं के निर्माण में योजना के विभिन्न मुद्दों का अध्ययन करके विभिन्न परियोजनाओं आदि पर संस्तुति देता है इसके अन्तर्गत उनके उप-विभाग है जैसे - अर्थिक, वितीय एवं संसाधन, शिक्षा खाद्य एवं कृषि स्वास्थ्य, आवास, सिंचाई एवं विद्युत, सांख्यिकी एवं सर्वेक्षण, समाज कल्याण, ग्रामीण एवं लघु उद्योग, भूमि सुधार, श्रम सुधार आदि।

योजना आयोग के कार्य

योजना आयोग को निम्नलिखित कार्य सौंपे गए हैं -

1. देश की भौतिक, पूंजीगत एवं मानवीय संसाधनों का अनुमान लगाना तथा देश की आवश्यकताओं को ध्यान रखते हुए उनके संवर्धन की सम्भावनाओं का पता लगाना।
2. राष्ट्रीय संसाधनों के अधिक से अधिक प्रभावी एवं संतुलित उपयोग के लिए योजना तैयार करना।
3. योजना वे विभिन्न चरणों का निर्धारण करना एवं प्राथमिकता के आधार पर संसाधनों का आबंटन करने का प्रस्ताव करना।
4. उन तत्वों को, जो कि आर्थिक विकास के बाधक है, सरकार को इंगित करना एवं उन परिस्थितियों का निर्धारण करना जो कि वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में योजना के कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है।
5. योजना के प्रत्येक चरण के क्रियान्वयन के लिए समुचित तंत्र को प्रस्वावित करना।
6. योजना के प्रत्येक चरण के क्रियान्वयन के फलस्वरूप प्राप्त सफलता की समय-समय पर समीक्षा करना तथा सुधारात्मक सुझाव देना।
7. केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा विशेष समस्या पर राय मागँने पर अपनी सलाह देना।

योजनाओं की वितपूर्ति

योजनाओं के लिए विशाल संसाधन आवश्यक है भारत की पचंवर्षीय योजनाओं के वितीम स्रोतों दो वर्गों में आते हैं। (क) घरेलू (ख) विदेशी

(क) **घरेलू स्रोत**

(i) कराधान

(ii) सरकारी उद्योगों का अधिक्य

(ख) **विदेशी सहायता**

(i) विदेशी ऋण

(ii) अनुदान सहायता

(iii) विदेशी पूंजी निवेश

विभिन्न योजनाओं में वितपूर्ति को नीचे तालिका में स्पष्ट किया गया है।

संसाधन	I	II	III	IV	V	VI	VII	VIII
घरेलू संसाधन	73	57	59	53	81.5	88.0	76.0	81
विदेशी संसाधन	10	23	28	37	15.0	8.5	9.0	10
घाटे की अर्थव्यवस्था	10	20	13	10	3.5	3.5	15	9
योग	100	100	100	100	100	100	100	100

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि घरेलू संसाधनों पर निर्भरता बढ़ रही है और विदेशी संसाधनों पर से निर्भरता कम हो रही है।

आलोचना

1. **अनावश्यक विस्तारः** सालों के दौरान योजना आयोग का आकार विशाल होता गया है जिससे उसके कर्तव्य बढ़ने के साथ एक-दूसरे से उलझने लगे हैं।

   घाटे की वित त्यवस्था रोजगार अवसरों पर इस प्रकार प्रभाव डालती हैः

   (क) वह कुशल श्रम संसाधनों को वर्तमान व्यवसायों से अधिक मोड़ती है।

   (ख) ऊँचे मौद्रिक वेतन ग्रामीण क्षमशक्ति को नगरी केन्द्रों की और आकर्षित करते हैं जहाँ यह लाभदायक रोजगार पाती है।

2. **अल्प स्वतन्त्रताः** योजना आयोग को एक स्वाधीन एवं गैर राजनीतिक संस्थान बनना था जिसके सदस्य राजनीतिक दलों के उतार-चढ़ाव से प्रभावित न हो। लेकिन मंत्रियों के आयोग का सदस्य होने के नाते, उसके निर्णयों पर उनका प्रभाव पड़ता है। इससे आयोग को नीचा देखना पड़ सकता है।

3. **सामान्तर सरकारः** डॉ जान मथाई, जोकि भारत के वितमंत्री रह चुके है ने प्रश्न उठाया कि इस बात में क्या तुक है कि जब सरकार में एक वितमंत्री है तो योजना आयोग में वित का प्रभारी सदस्य हो।

4. **पुनराव तिः** आयोग तथा मंत्रालय में अक्सर एक ही काम को दोहराया जाता है। मानव श्रम शक्ति नियोजन पहले श्रम एवं रोजगार विभाग देखता था अब तकनीकी श्रमशक्ति से संबंधित कुछ मसले देखता है।

5. **भीड़-भड़क्काः** विषय विभागों से ज्यादा अहमिनत आम विभागों को दी जाती है योजना आयोग की तकनीकी गुणवता सुधारने की जरूरत है।

6. **राजनैतिक प्रभावः** योजना आयोग की कई सिफारिशें राजनैतिक उद्देश्य से रद्द कर दी जाती हैं।

अध्याय - 29

केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध

(Central State Financial Relation)

किसी देश में एकात्मक शासन व्यवस्था अथवा संघीय शासन व्यवस्था हो सकती है। इस आधार पर वित्त व्यवस्था को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है।

1. संक्षिप्त भूमिका
2. संघीय वित्त

एकात्मक वित्त व्यवस्था में देश की सभी मदों पर केन्द्रीय सरकार ही व्यय करती है। तथा उसे प्राप्त होने वाली सारी आय भी उसके कोष में जमा होती है। इसके विपरीत संघीय वित्त व्यवस्था में आय और व्यय की समस्त पदों का केन्द्रीय राज्य तथा स्थानीय सरकारों के बीच विभाजन कर दिया जाता है। ये तीनों प्रकार की सरकारें अपनी-अपनी मदों पर व्यय करने में और इसी प्रकार अपनी-अपनी मदों से आय प्राप्त करने में स्वतंत्र होती है। भारत की वित्त व्यवस्था एक संघीय वित्त व्यवस्था है। इसकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

1. संघीय वित्त व्यवस्था में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य में आय तथा व्यय के साधनों का बँटवारा संविधान के अनुसार होता है। संविधान में इसके कार्यक्षेत्र तथा अधिकार की भी स्पष्ट व्याख्या की गई है।
2. संघीय वित्त व्यवस्था में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य आय तथा व्यय के साधन अलग-अलग होते हैं। केन्द्र द्वारा राज्यों को आर्थिक सहायता दी जाती है।
3. राज्य सरकारों को शासन सम्बन्धी स्वतन्त्रता तो हेती है लेकिन वे केन्द्र के अधीन रहते हैं। कोई भी राज्य अपनी इच्छा से केन्द्र सरकार से प थक नहीं हो सकता।
4. केन्द्र तथा राज्य के मध्य में वित्त सम्बन्धी कोई भी समस्या उत्पन्न होने पर उसका हल सविंधान के अनुसार किया जाता है।

संघीय वित्त के सिद्धांत

संघीय वित्त के सिद्धांत वे सिद्धांत है जिनका सम्बन्ध केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें के मध्य आय और व्यय के स्रोत की उचित व्यवस्था करना है जो निम्नलिखित है-

1. **स्वतन्त्रता एवम् उत्तरदायित्व का सिद्धांत**

प्रो. आडरकर के अनुसार संघीय राज्य की प्रत्येक सरकार अपने आन्तरिक वित्तीय मामले में पूर्ण स्वतन्त्र होनी चाहिए। अर्थात किसी का किसी के मामले में कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए इसके साथ-साथ प्रत्येक सरकार को अपनी-अपनी कर नीति, ऋण नीति, तथा आय नीति सम्बन्धी उत्तरदायित्व को निभाना चाहिए।

2. **पर्याप्तता तथा लोचशीलता का सिद्धान्त**

इस सिद्धांत से अभिप्राय यह है कि प्रत्येक सरकार के पास आय के पर्याप्त साधन होने चाहिए जिससे उन कार्यों को पूरा कर सके जिन्हें उन्हें सौंपा गया है इसके साथ-साथ आय के साधन लोचदार होने चाहिए ताकि उनमें परिवर्तन संभव हो।

3. **प्रशासनिक कुशलता का सिद्धांत**

प्रो. अडारकर के अनुसार संघीय वित्तीय व्यवस्था प्रशासनिक कुशलता के सिद्धांत पर आधारित होने चाहिए इसका अभिप्राय है-

(i) कर एकत्रित करने से अधिक खर्च नहीं होना चाहिए।
(ii) करों की प्रशासनिक चोरी नहीं होनी चाहिए।
(iii) कर संग्रह में अधिक क्षमता होनी चाहिए।
(iv) दोहरे कर की सम्भावना नहीं होनी चाहिए।

4. **एकरूपता का सिद्धांत**

केन्द्रीय सरकार को अपनी नीति इस प्रकार की निर्धारित करनी चाहिए कि आर्थिक भार तथा लाभ में सभी राज्यों के मध्य एकरूपता बनी रहे। केन्द्र को प्रत्येक राज्य प्रति समान उत्तरदायित्व तथा समान कल्याण की नीति अपनानी चाहिए।

5. **हस्तांतरण का सिद्धांत**

इस सिद्धांत के अनुसार सभी नागरिकों के लिए एक न्यून्तम स्तर स्थापित करने की द ष्टि से यह आवश्यक है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा धनी राज्यों से धन एकत्रित करके उसे निर्धन राज्यों में वितरित किया जाए।

6. **समाता का सिद्धांत**

इस सिद्धांत के अनुसार विभिन्न राज्यों के करों के भार का वितरण विभिन्न होगा क्योंकि लागों के सीमान्त त्याग विभिन्न होंगे। इसलिए केन्द्रीय तथा राज्यों के करों में इस प्रकार समन्वय किया जाना चाहिए। कि सभी राज्यों में केन्द्रीय तथा राज्य सरकार द्वारा लोगों पर लगाए गए करों का भार समान हो जाए।

7. **समन्वय एवम् परस्पर सम्बन्धों का सिद्धांत**

विभिन्न सरकारों की वित्तीय व्यवस्था समन्वय एवम् परस्पर सम्बन्धों के सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए। यह समन्वय केवल करारोपण तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए वरन् सार्वजनिक व्यय, वर्तमान बजट, पूँजीगत व्यय आदि में भी परस्पर समन्वय होना चाहिए।

भारत की संघीय वित्त व्यवस्था

संविधान के अनुसार भारत एक संघीय देश है। इसमें केन्द्रीय, राज्य तथा स्थानीय स्तर की सरकार

कार्यरत है। अतएव भारतीय वित्त व्यवस्था संघीय वित्त व्यवस्था है भारतीय संविधान में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच वित्तीय साधनों के बँटवारे के लिए भारत सरकार के 1935 के एक्ट की प्रायः सभी विशेषताओं को सम्मिलित किया गया है।

केन्द्र तथा राज्यों के बीच साधनों का बँटवारा

भारत के सविधान में केन्द्र तथा राज्यों की वित्तिय शक्तियाँ का स्पष्ट उल्लेख किया गया है सविधान में केन्द्र तथा राज्यों के बीच करों के विभाजन को तीन भागों में बाँटा गया है।

(a) **केन्द्रीय सूचीः** इसमें वे कर शामिल किए गए हैं जिन्हें केन्द्रीय सरकार ही लगा सकती है

(b) **राज्य सूचीः** इस सूची में उन करों का वर्णन किया गया है। जिन्हें राज्य सरकार लगा सकती है। इसमें करों के स्रोत का वर्णन नहीं किया गया है।

(c) **समवर्ती सूचीः** इस सूची में संसद तथा राज्यों की विधान की विधान सभाएँ मिलकर कानून बना सकती है।

1. केन्द्रीय साधन

सविधान के अनुसार आय के 12 साधन केन्द्रीय सरकार के लिए सरंक्षित रखे गए हैं। ये कर इस प्रकार हैं - 1. कृषि आय के अलावा अन्य आय कर, 2. सीमा शुल्क, 3. नशीली वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं पर उत्पादन कर, 4. निगम कर, 5. सम्पति कर, 6. आस्ति कर, 7. सम्पति के पूँजीगत मूल्य पर कर, 8. यात्रियों एवम् पदार्थों पर अन्तिम कर, 9. शेयर बाजार तथा अन्य सटारिया बाजारों के सौदों पर कर, 10. स्टाम्प शुल्क, 11. विज्ञापन कर, 12. अन्तरराजीय व्यापार पर बिक्री कर।

यह ध्यान देने योग्य है कि केन्द्रीय सूची में शामिल मदों से प्राप्त समस्त आय केन्द्र सरकार के पास नहीं रहती। केन्द्रीय करों से प्राप्त आय को चार भागों मे बाँटा जाता है।

(i) कर जो पूरी तरह केन्द्र सरकार को प्राप्त होते हैं जैसे- निगमकर, पूँजीगत मूल्य पर कर, आयात निर्यात या सीमा शुल्क।

(ii) कर जो केन्द्र सरकार द्वारा-वसूल किए जाते हैं तथा उनका एक भाग राज्यों में बाँटा जाता है जैसे- आयकर, तथ्या उत्पादन कर।

(iii) कर जो केन्द्र द्वारा वसूल किए जाते हैं तथा उनसे प्राप्त रकम राज्यों को दे दी जाती है जैसे- सम्पतिकर, आस्तिकर

(iv) कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं परन्तु जिन्हें राज्य सरकारें एकत्रित करती है जैसे- स्टाम्पं कर, दवाइयों तथा सौन्दय प्रसाधनों पर लगाया जाने वाला कर।

2. राज्यों के साधन

राज्य सरकारें 19 प्रकार की मदों पर कर लगा सकती हैं वे मदें इस प्रकार है- कृषि भूमि उत्तराधिकार पर कर, भूमि पर आस्तिकर, मालगुजारी, स्टाम्प शुल्क, कृषि आयकर, अवकारी, भूमि भवनकर, बिजली के उपयोग पर कर, मोटरगाड़ियों पर कर, मनोरंजन कर, सड़क परिवहन कर, समाचार पत्रों के अतिरिक्त वस्तुओं पर बिक्री कर आदि।

3. **अति भार या सरचार्ज**

संविधान की धारा 271 के अनुसार संसद को अधिकार दिया गया है कि केन्द्र की आय में व द्धि करने के संसद को अधिकार दिया गया है कि केन्द्र की आय में व द्धि करने के लिए केन्द्र आयकर तथा उत्पादन कर के ऊपर सरचार्ज लगा सकता है इसे प्राप्त आय केन्द्र को मिलती है। इसका विभाजन नहीं होता।

4. **व्यवसाय कर**

संविधान की धारा 275 के अनुसार राज्य सरकारें की व्यवसाय और रोजगार पर आयकर की भाँति व्यवसाय कर लगाती है इसकी उच्चतम सीमा 2500 रुपये प्रति वर्ष निश्चित की गई है।

5. **ऋण**

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 292 में यह व्यवस्था की गई है कि भारत सरकार भारत के समेकित कोष की जमानत पर ऋण प्राप्त कर सकती है इसी प्रकार अनुच्छेद 293 में यह व्यवस्था की गई है कि राज्य सरकारें भी उधार ले सके। केन्द्रीय सरकार की ऋण लेने की क्षमता राज्य सरकारों से अधिक है। राज्य सरकारें तो केन्द्रीय सरकार से भी ऋण लेती है।

6. सहायता अनुदान

इसकी व्यवस्था इसलिए की गई है ताकि राजनैतिक तथा आर्थिक समानता के स्तर को प्राप्त किया जा सके और पिछड़े हुए राज्यों को विकास के अवसर प्रदान किए जा सके।

वित अयोग

भारतीय संविधान की धारा 280 के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा प्रत्येक पाँच वर्ष के पश्चात् वित्त आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है और यह भारतीय संविधान की एक विशेषता है। ऐसी विशेषता किसी अन्य संविधान में नहीं पाई जाती वित्त आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति के अधिकारों के अन्तर्गत 5 वर्ष की अवधि के पूर्व हो सकती है, यदि वे इसकी आवश्यकता अनुभव करें, अर्थात् संविधान के अनुसार वित्त आयोग की स्थापना एक निरन्तर प्रक्रिया है।

वित अयोग के कार्य

1. केन्द्र तथा राज्यों में विभाजित होने वाले करों से प्राप्त धन के बँटवारे का आधार निश्चित करना।
2. राज्यों को केन्द्र मे मिलने वाले अनुदान के सम्बन्ध में स्द्धिांत बनाना।
3. भारत सरकार तथा राज्यों के बीच में होने वाले समझौते जारी रखना या उनमें परिवर्तन करने की सिफारिश करना।
4. देश के वित्तीय हित में राष्ट्रपति द्वारा सूचित किए जाने पर किसी अन्य मामले पर भी विचार करना।

इस नियुक्ति का मुख्य उद्देश्य यही है कि केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच वित्तीय स्थिति

सन्तुलन में रहे और इनके बीच किसी प्रकार की द्वेष की भावना उत्पन्न न हो। इसके साथ-साथ इनके समक्ष कुछ जटिल समस्याऐं भी उत्पन्न होती रहती है वित्त आयोग की नियुक्ति इन जटिल समस्याओं का न्यायपूर्ण समाधान करने का एक महत्वपूर्ण कदम है।

ग्यारहवां वित्त आयोग

ग्यारहवें वित्त आयोग की स्थापना सन् 1998 में प्रो. ए. एम, खुसरो की अध्यक्षता में की गई थी। इस आयोग ने अपनी रिर्पोट 7 जुलाई 2000 का सरकार को प्रस्तुत की तथा इस आयोग की सिफारिशें सन् 2000 से सन् 2005 तक की अवधि के लिए है इस प्रकार इस आयोग की सिफारशें नौंवी योजना के केवल अन्तिम दो वर्षों के लिए लागू होगी बाकि दसवीं योजना की आंशिक अवधि के लिए लागू होगी। इस आयोग की मुख्य सिफारशें निम्नलिखित है-

1. **आयकर**

   ग्यारहवें वित्त आयोग की रिपोर्ट के अनुसार आयकर का विभिन्न राज्यों में वितरण निम्नलिखित प्रकार से किया जाना चाहिए-

   (i) 10% राज्य के जनगणना के आधार पर जबकि दसवें आयोग के अनुसार यह भाग 20% था।

   (ii) 62.5% का आधार तीन राज्यों पंजाब, महाराष्ट्र और गोवा की औसत आय के अन्तर से गुणा करके लगाया जाएगा।

   (iii) 7.5% राज्यों के क्षेत्रफल के आधार।

   (iv) 7.5% अधिसरचंना क विकास के आधार पर।

   (v) 5% राज्यों द्वारा किए गए प्रयासों के आधार पर।

   (vi) 7.5% राजकोषीय अनुशासन के आधार पर।

2. **बाँटने योग्य केन्द्रीय कर और शुल्क में राज्यों का हिस्सा**

   ग्यारहवें वित्त आयोग की सिफारशों के अनुसार सन् 2000-2005 में केन्द्रीय करों और शुल्कों का जो कि हिस्सेदारी के योग्य है उसका 28% सभी राज्यों के वहाँ से किए गए इकट्ठे करों के अनुसार बाँटा जाएगा।

3. **अतिरिक्त उत्पादन कर**

   ग्यारहवें वित्त आयोग की सिफारिश के आधार पर अतिरिक्त उत्पादन कर का 1.5 प्रतिशत राज्यों में बाँट दिया जाएगा।

4. **आधुनिकरण सहायता**

   ग्यारहवें वित्त आयोग ने वित आयोग ने सभी राज्यो को विशेष समस्याओं के समाधान तथा आधुनिकीकरण के लिए राज्यों को विशेष समस्याओं के समाधान तथा आधुनिकीकरण के लिए राज्यों को 4972.63 करोड़ रुपये की सहायता देने की सिफारिश की है।

5. **सहायक अनुदान**

   ग्यारहवें वित्त आयोग ने वित आयोग ने के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 275 के अनुरूप उन राज्यों को सहायक अनुदान दिया जाना चाहिए जिनमें केन्द्रीय करों से प्राप्त हिस्से

के बाद भी घाटा बना रहता है इन आयोग ने इनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए 35,359 करोड़ रुपये के सहायक अनुदान देने की सिफारिश की है।

6. **स्थानीय संस्थाओं को सहायता**

ग्यारहवें वित्त आयोग ने वित आयोग ने स्थानीय स्वशासन की संख्याओं जैसे- पचायतों, नगर पालिकाओं आदि को 10,000 करोड़ रुपये की सहायता देने की सिफारिश की है।

7. **आपदा राहत कोष**

इस आयोग ने आपदा राहत कोष को 2000-2005 की पाँच वर्ष की अवधि के लिए 11,007 करोड़ रुपये देने की सिफारिश की है।

8. **कर वितरण की वैकल्पिक योजना**

ग्यारहवें वित्त आयोग ने दसवें वित्त आयोग की तरह हो इस योजना को बढ़ाते हुए केन्द्रीय करों से प्राप्त कुल आय का 37.5% भाग राज्यों में वितरित करने की सिफारिश की है। संक्षेप इस आयोग ने भारतीय लोक वित्त में नवीनीकरण के लिए कई महत्वपूर्ण सूझााव दिए है।

वित्त आयोग के कार्यकारण में सुधार के उपाय

वित्त आयोग के कार्यकरण में सुधार करने के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं-

1. **स्थायी वित्त आयोग**

महत्वपूर्ण अर्थशास्त्रियों जैसे- प्रो. लकड़वाला, उसर्ला हिक्स, डा. वी. वी. भट्ट का यह सुझाव है कि वित्त अयोग को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इसे एक स्थायी संस्था बना दिया जाना चाहिए।

2. **वित्त आयोग के कार्यक्षेत्र में विस्तार**

इसके कार्यक्षेत्र में विस्तार करने के लिए राजस्व तथा पूँजीगत खातों के सभी गैर-योजना हस्तांतरण भुगतानों को शमिल किया जाना चाहिए।

3. **वित्त आयोग तथा योजना आयोग में अधिक समन्वय**

पंचवर्षीय योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता का बँटवारा योजना आयोग की सिफारशों पर होना चाहिए परन्तु राज्यों को अधिक वित्तीय शक्ति देने के सम्बन्ध में वित्त आयोग तथा योजना आयोग की सिफारशों पर होना चाहिए।

4. **आर्थिक विषमता में कमी**

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि वित्त आयोग केन्द्र द्वारा राज्यों को विभाजित किए जाने वाले सभी करो जैसे- आयकर, उत्पादन कर आदि को एक ही विभाज्य राशि का भाग माने तथा उसका विभाजन राज्यों की आवश्यकता के आधार पर किया जाना चाहिए।

संक्षेप में, भारत की संघीय वित्त व्यवस्था को अधिक उपयोगी तथा सुद ढ़ बनाने के लिए आवश्यक है कि वित्त आयोग के कार्यकरण को अधिक कार्यकुशल बनाया जाए।

अध्याय - 30

स्थिरीकरण के लिए राजकोषीय निति

(Fiscal Policy for Stabilizaion-Automatic V.S. Dicretionary)

Stabilization

राजकोषीय-नीति के प्रभाव की विवेचना करते समय यह जानना जरूरी है कि बजट में कुछ परिवर्तन स्वतः होते हैं। तथा कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें समझ-बूझकर, विवेक के साथ किया जाता है। इसमें पहला निहित लोच कहा जाता है। तथा दूसरे को विवेकाधीन राजकोषीय नीति कहा जाता है।

निहित-स्थिरता

निहित या स्वचालित स्थिरता कर एवं व्यय सरचना के माध्यम से आती है। कर एवं व्यय की संरचना ऐसी हो सकती है कि आय में व द्धि होने पर बजट में स्वतः अतिरेक होगा तथा आय में ह्रास के कारण अपने आप बजट में घाटे का निर्माण होगा। ऐसे ही स्वचालित परिवर्तनों को निहित लोच कहा जाता है।

प्रगतिशील कर-प्रणाली में निहित-स्थिरता आती है। राष्ट्रीय आय में व द्धि होने पर कर-राजस्व मे जो व द्धि होती है उसकी दर आय की व द्धि दर की तुलना मे अधिक रहती है। दूसरी और राष्ट्रीय आय में कमी होने की स्थिति में कर-राजस्व में अपेक्षाकृत अधिक कमी होती है। कर की संरचना की तरह लोक व्यय का ढांचा भी निहित स्थिरता प्रदान कर सकता है। ताकि चक्रीय अस्थिरता की गंभीरता को कम किया जाए। स्वचालित अस्थिरता के कारण उपभोग की सीमांत-प्रव त्ति का आकार घट जाता है। जिससे गुणक प्रभाव भी घट जाता है। राष्ट्रीय-आय में ह्रास के समय कर-राजस्व में अपेक्षाकृत अधिक कमी होती है। तथा हस्तांतरण भुगतान की मात्रा बढ़ जाती है। इन सबका यह परिणाम होता है कि राष्ट्रीय आय में ह्रास की तुलना में निजी व्यक्तियों की व्यय योग्य आय कम ही घटती है इसलिए उपभोग में उतनी कमी नहीं होगी तथा ह्रास की प्रव त्ति की गंभीरता घट जाएगी। and Vice-versa निहित स्थिरता का उद्देश्य यह गांरटी देना है कि बेरोजगारी के चालू-स्तर से विचलन के कारण जो गड़बड़ी होती है। वह स्वयं ऐसी शक्तियों का स जन करे जिससे ये गड़बड़ी स्वतः आंशिक या पूर्णरूप से समाप्त हो जाए।

कर एवं लोक-व्यय में स्वचालित तथा विवेक पूर्ण परिवर्तनों की व्याख्या चित्र द्वारा की गई है। मान लिया गया है कि लोक व्यय OM है इसे MM^1 रेखा द्वारा दिखाया गया है। जो क्षैतिक है। इसका कारण यह है कि व्यय को आय के स्तर से स्वतंत्र रखा गया है

स्वचल एवं विवेकाधीन परिवर्तन (Automatic-Stabilizers)

TT रेखा कर-राजस्व को बताती है। कर-राजस्व की मात्रा का निर्धारण आय के स्तर द्वारा होता है। जैसे-जैसे Y में व द्धि हाती है। वैसे ही राजस्व में भी होती है। मान लें कि प्रारंभ में आय Y^1 के बराबर रहती है। इस पर लोक व्यय (OM) कर राजस्व के बराबर है। और संतुलन में है। अब यदि माना जाए कि आशंसा (Expectations) में ह्रास के कारण विनियोग घट जाता

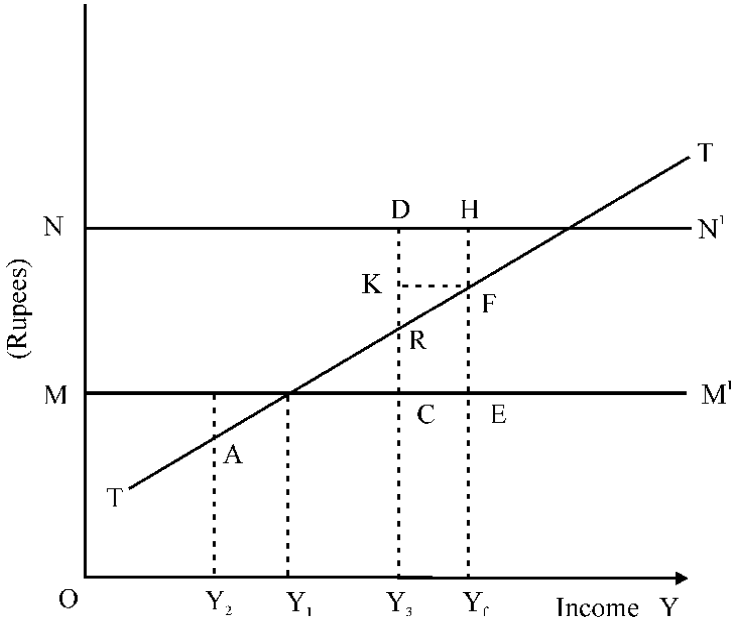

है। इससे आय क्रम होकर Y_2 हो जाती है। इससे राजस्व घट जाता है। और Y_2 आय पर बजट में AB के बाराबर घाटा हो जाता है। क्योंकि लोक-व्यय OM पर स्थिर है। और कर की दर पहले जैसी ही रहती है। अर्थात् व्यय में कोई विवेक पूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया है। इसलिए राजकोषीय नीति निविक्रय रही है।

अब दूसरी स्थिति को लेते हैं। पहले वाली स्थिति जैसे आय Y_1 पर रहती है। OM पर लोक व्यय। इन पर बजट संतुलन में है। माना लेते हैं की निजी क्षेत्र में कोई परिवर्तन नही होता है। लेकिन लोक-व्यय OM के बढ़कर ON हो जाता है और इसे NN^1 द्वारा व्यक्त किया गया है। लोक-व्यय में इस व द्धि के कारण आय स्तर Y_1 से Y_3 हो जाता है। इस स्थिति में T की व द्धि होती है लेकिन लोक व्यय के बराबर व द्धि नहीं होती। इस स्थिति में भी बजट में घाटा होता है जो RD के बराबर है। लेकिन RD = AB अतः Y_3 आय की स्थिति की तरह ही बजट में घाटा होता है। लेकिन परिस्थितियाँ अलग है। Y_2 की स्थिति में बजट-घाटा तब होता है जब आय का स्तर कम होता है माना जाए कि Y_f पूर्ण रोजगार के स्तर पर प्राप्त आय है। इस पर लोक-व्यय OM ही रहता है। इस स्थिति में EF के बराबर बजट में पूर्ण रोजगार अतिरेक प्राप्त होता है। स्वचलन स्थिरता की स्थिति में अब आय Y_1 से Y_2 हो जाती है तब भी पूर्ण रोजगार

का अतिरेक EF ही रहता है। किंतु विवेक पूर्ण परिवर्तन की स्थिति में लोक-व्यय OM से बढ़कर ON हो जाता है। और आय बढ़कर Y_3 हो जाती है। पूर्ण रोजगार-अतिरेक Mf के बराबर घाटे में बदल जाता है।

Limitations of Automatic Stabiligers

1. जब आर्थिक-क्रियाओं में उतार-चढ़ाव बड़े पैमाने पर होता है तब उस गंभीर स्थिति के समाधान के लिए यह पर्याप्त एवं प्रभावी नहीं रहती।
2. स्वचल-स्थिरता मुद्रा-स्फीति या बेरोजगारी को दूर नहीं कर सकती।
3. यह यंत्र गुणक के आकार को छोटा कर देता है।
4. आर्थिक-विकास की दीर्घकालीन स्थिति में स्वचालित परिवर्तन अधिक सहायक नहीं हो सकते।
5. गतिशील-अर्थव्यवस्था में स्वचलन अस्थिरता का स जन कर सकती है।

Discretionary Fiscal Policy

स्वचालित-स्थिरता की सीमाओं को देखते हुए यह जरूरी हो जाता है कि चक्रीय-उथल पुथल को नियंत्रित करने के लिए कर तथा लोक व्यय में विवेक पूर्ण परिवर्तन किया जाए। समझ-बूझकर किए गए ऐसे परिवर्तनों का ही विवेकपूर्ण राजकोषीय नीति कहा जाता है। इस नीति को अपनाने के दो कारण है।

1. गंभीर-मुद्रा-स्फीति या बेरोजगारी को दूर करने के लिए।
2. बजट के व्यय पक्ष में लोचहीनता के अभाव को ठीक करने के लिए। इस नीति के अंतर्गत कर दर एव लोक-व्यय में परिवर्तन-संबंधी अधिनियम पहले से ही विधानसभा में पारित हो जाता है। ताकि आवश्यकता पड़ने पर परिवर्तन तुरंत लागू किए जा सकें। किंतु अर्थव्यवस्था इतनी जटिल होती है। कि बजट परिवर्तन संबंधी किसी भी Formula's को पहले से तैयार नहीं किया जा कसता। जो कि सभी परिस्थितियों में लागू हो सके। इसलिए आवश्यकता पड़ने पर ही विवेक-पूर्ण राजकोषीय नीति को परिस्थिति के अनुसार लागू किया जाता है।

पूर्ण-रोजगार बजट एवं राजकोषीय नीति

राजकोषीय नीति के प्रभाव को राजस्व तथा लोक व्यय के अंतर के रूप मे देखा जाता है। बजट में घाटे का प्रसारकारी प्रभाव होता है। जबकि अतिरेक का संकुचनकारी प्रभाव Carry-Brown ने बजट में घाटा तथा अतिरेक के प्रभाव को साधारण बजट की जगह-पूर्ण-रोजगार बजट के रूप में देखने का प्रयास किया है। Brown के लेखक का यह प्रभाव यह पड़ा कि राजकोषीय नीति के स्वचल पहलूओं से विवेक पूर्ण पहलू को प थक करने के लिए पूर्ण-रोजगार बजट की धारणा का विकास हुआ यदि पूर्ण रोजगार स्तर पर बजट में अतिरेक हो तो इसका प्रभाव संकुचनकारी होगा। और इसी तरह पर बजट घाटे का प्रसारकारी प्रभाव पड़ेगा। पूर्ण रोजगार के स्तर पर बजट अतिरेक तथा धार वह है कि जो कर की वर्तमान दरों तथा मौजूदा व्यय के तरीके के आधार पर उस समय प्राप्त होता है। जब अर्थव्यवस्था पूर्ण-रोजगार के

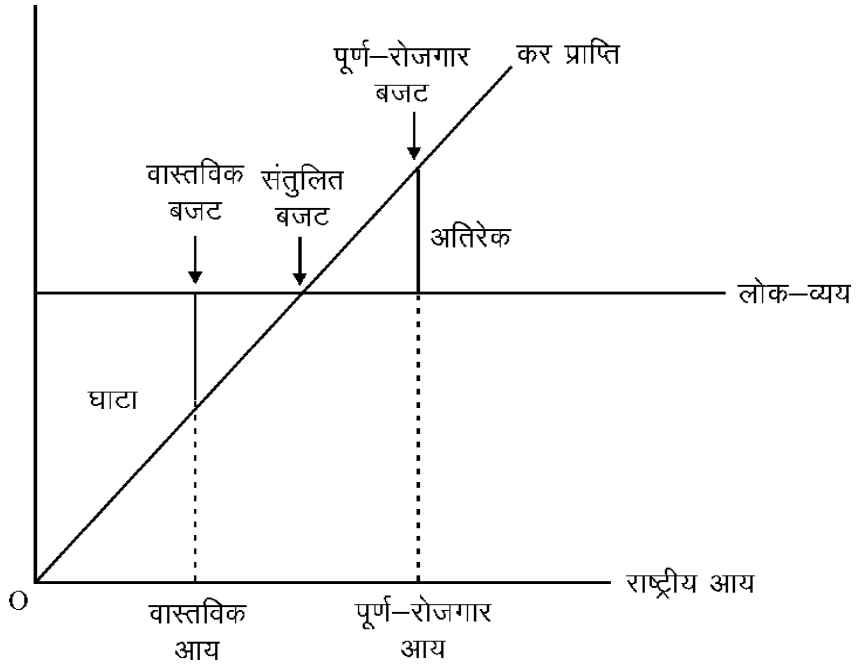

स्तर पर क्रिया करती है। इसे चित्र द्वारा दिखाया गया है। चालू बजट-धारा पसारकारी होता है। मंदीकाल में बजट घाटे का अर्थ है प्रसारकारी राजोषीय नीति। राजकोषीय हो सकती है। इसे चित्र द्वारा दिखाया गया है।

चित्र में दिखाया गया है कि मान ले X वर्ष में, वास्तविक बजट, घाटे में था। किंतु मौजूदा लोक-व्यय के स्तर तथा मौजूदा कर संरचना के आधार पर X वर्ष के बजट को पूर्ण रोजगार पर देखा जाए तो घाटा अतिरेक में बदल जाता है। इस प्रकार जहाँ वास्तविक बजट घाटा से प्रसारकारी प्रभाव पड़ने की आशा की जाती थी और वही बजट पूर्ण रोजगार के स्तर पर अतिरेक को दिखाता है। जिसका प्रभाव संकुचनकारी होगा।

Limitations

इसमें संदेह नहीं कि पूर्ण-रोजगार बजट धारा या अतिरेक की धारण वास्तविक बजट घाटा या अतिरेक की धारणा की तुलना में सुधार है। लेकिन फिर भी इसमें कमियाँ पाई गई हैं। जो कि इस प्रकार हैं-

1. यह धारणा कर में परिवर्तन तथा लोक-व्यय में परिवर्तन या वस्तुओं तथा सेवाओं पर व्यय तथा हस्तांतरण भुगतान के मध्य कोई अंतर नहीं करती।
2. भारित धारणा के अंतर्गत भी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों के समष्टि आर्थिक-प्रभाव में फर्क नहीं किया जाता है।
3. कर एवं व्यय में परिवर्तनों के भुगतान-शेष पर समान प्रभाव नहीं पड़ते हैं।
4. पूर्ण-रोजगार बजट-घाटा या अतिरेक की धारणा भी कर एवं व्यय के वास्तविक परिवर्तनों के प्रभाव को विकृत रूप में रखती है।
5. यह धारणा मूलतः स्थैतिक है और इसमें प्रभाव के विलंब से पड़ने के संबंध में कोई प्रावधान नहीं किया जाता।

अध्याय - 31

सार्वजनिक गहण प्रबन्ध

(Public Debt Management)

लोक ऋण व्यवस्था से आशय है कि सरकार द्वारा कर्ज लेने तथा उनकी वापिसी की रीतियों का देश की आर्थिक-स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। अर्थात् लोक ऋण के प्रबंध से तात्पर्य ईजरी की उन क्रियाओं से है जिनके माध्यम से राष्ट्रीय ऋण को कायम रखा जाता है। इसके प्रबंध की आवश्यकता इन समस्याओं को देखते हुए हुई जब लोक-ऋण में कोई शुद्ध व द्धि नहीं होती या जब कि ऋण स्थायी नहीं होते हैं बल्कि उन्हें वापस करना होता है। इन्हीं समस्याओं को देखते हुए लोक-ऋण की व्यवस्था के अनेक सिद्धांत प्रचलित हैं। जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित है।

Principles of Public Debt Management

1. **लोक-ऋण की ब्याज-लागत न्यूनतम होनी चाहिए**

   इस सिद्धांत के अनुसार, सरकार इस स्थिति में होनी चाहिए कि सार्वजनिक ऋण ले सके तथा उन्हें वापिस कर सके। यदि ऋणों की व्याज-लागत न्यूनतम होती है तो सरकार को थोड़ी मात्रा मे अतिरिक्त कर लगाने होते हैं। अन्यथा इससे उल्टा होता है। न्यूनतम कर मात्रा से आर्थिक प्रेरणाओं पर, अधिक बचत शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव कम पड़ते हैं। लोक-ऋणों की ब्याज-लागत उस स्थिति में न्यूनतम रखी जा सकती है जबकि देश के केन्द्रीय बैंक को इस बात के लिए प्रेरित किया जा सके कि वह अपनी मौद्रिक कार्यवाहियों के द्वारा अर्थात् बैंक दर नीति आदि के माध्यम से ब्याज की दर को कम रखे। परंतु ऐसी ब्याज दर की नीति में मुद्रा-स्फीति दबाव उत्पन्न होने की संभावना रहती है। अतः कम ब्याज वाली ऋण नीति को, जो कि मुद्रा-स्फीति संबंधी दबाव तथा आर्थिक अस्थिरता उत्पन्न करती है। वांछनीय नहीं माना जा सकता।

2. **निवेश-कर्त्ताओं की आवश्यकता की संतुष्टि**

   कुछ लोगों को यह विचार है कि सरकारी ऋणों का प्रबंध ऐसे ढंग से किया जाना चाहिए कि लोक ऋण-पत्रों की किस्म तथा उनको जारी करने की शर्तों आदि के संबंध में निवेश-कर्त्ताओं की इच्छओं व आवश्यकताओं को संतुष्ट किया जा सके। लेकिन यदि ऐसा ना हो तो कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए सरकार अपने अल्पकालीन ऋण को दीर्घकालीन ऋण के रूप में रखना चाहती है तो दीर्घकालीन ऋण पत्रों या प्रतिभूतियों पर उसे ऐसी आकर्षक शर्तें प्रस्तुत करनी होगीं जिससे धारक अपने ऋण पत्रों को बिना किसी हानि के नकदी में बदल सकें। और सरकार द्वारा जारी किए गए ऋण-पत्र खरीद सके। लेकिन यदि निवेश कर्त्ताओं की आवश्यकताओं का लोक-ऋण के माध्यम से

संतुष्ट नहीं किया जाता है तो हो सकता है कि प्रतिभूतियों या ऋण-पत्रों की बिक्री के कारण प्रतिभूति बाजार में अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हा जाए। और बॉण्ड धारक अपने ऋण-पत्रों को बेचना और नकदी प्राप्त करना प्रारंभ कर दे। लेकिन इसके दूसरी तरफ यदि निवेशकर्त्ताओं के हित को ऊपर रखा जाए तो सरकार के लिए सार्वजनिक ऋण की लागत बढ़ जाएगी।

अतः लोक-ऋणों की अदायगी के तरीकों में समुचित संतुलन बनाए रखकर इन दोनों ही स्थितियों से बचा जा सकता है।

3. **अल्पकालीन ऋण का दीर्घकालीन ऋण में निधिकरण**

इस सिद्धांत के अनुसार निधिकरण की ये कार्यवाहियाँ इस प्रकार की जानी चाहिए कि जिससे आर्थिक-स्थिरता को कोई क्षति ना पहुँचे। इस नीति के कारण चूँकि दीर्घकालीन निधियों की माँग बढ़ जाने के कारण दीर्घकालीन ब्याज की दर में व द्धि होने लगती है और इससे फिर भविष्य का बजट-व्यय भी बढ़ जाता है। परंतु दीर्घकालीन ब्याज दरों में होने वाली इस अनुचित व द्धि के कारण गैर-सरकारी निवेश (Private Investment) की मात्रा तथा ब्याज घट जाती है। जिससे फिर बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है। अतः आवश्यक है कि निधिकरण की कार्य वाहियाँ ऐसे ढंग से की जाए कि दीर्घकालीन ब्याज दर में ऐसी अनुचित व द्धि न हो जो कि गैर-सरकारी निवेश की मात्रा तथा दर पर प्रतिकूल प्रभाव डाले। अतः अल्पकालीन ऋणों की दीर्घकालीन ऋणों में निधिकरण ऐसी रीति से किया जाना चाहिए कि वह निवेश कर्त्ताओं की जरूरतों को पूरा कर सके।

4. **लोक ऋण नीति का राजकोषीय व मौद्रिक नीति के साथ तालमेल**

आर्थिक विकास को तीव्र करने के लिए यह सिद्धांत आवश्यक है। उदाहरण के लिए यदि सरकार केंद्रीय बैंक को इस बात के लिए बाध्य करती है कि नीची पर की ब्याज नीति को लागू करे ताकि लोक-ऋण के ब्याज की अदायगी की लागत कम हो सके तो उससे मुद्रा-सफीति की दशाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। और इससे फिर आर्थिक-अस्थिरता उत्पन्न हो सकती है। अतः राजकोषीय तथा मौद्रिक नीति के साथ लोक-ऋण नीति का संचालन ऐसे ढंग से लिया जाना चाहिए कि ये तीनों ही नीतियाँ आर्थिक स्थिरता तथा आर्थिक प्रगति के लिए अपना योगदान करें।

5. **परिपक्व होने पर ऋणों का वितरण तथा ऋण**

यदि कुल ऋण का एक बड़ा अनुपात अल्पकालीन ऋणों के रूप में हो और कुल ऋण का एक बड़ा भाग बैंकों द्वारा रखा गया है तो ऋण के बढ़ी मात्रा में नकद रूप में रहने की संभावना रहती है। और इससे फिर मुद्रा-स्फीति संबंधी दबाव उत्पन्न हो सकते हैं। अतः व्यक्तियों द्वारा रखे गये अत्यधिक नकदी ऋण का उपयोग मुद्रा-अवस्फीति विरोधी उपाय के रूप में किया जा सकता है। ऐसे ऋण-पत्रों की कीमतें बढ़कार तथा लोगों को ऋणों का नकदी में बदलने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

इस प्रकार इन सिद्धांतों से स्पष्ट है कि लोग ऋण की व्यवस्था के सभी लक्ष्यों को प्राप्त करना, हो सकता है कि संभव न हो। जैसे कि ब्याज की दरों को नीची रखने की नीति से मुद्रा-स्फीति संबंधी दशाएँ उत्पन्न हो सकती हैं जबकि अल्पकालीन ऋण का दीर्घकालीन ऋण में निधिकरण करने से बेरोजगारी उत्पन्न हो सकती है। अतः लोक-ऋण का प्रबंध ऐसे तरीके से किया जाना चाहिए जिससे कि आर्थिक लाभ तो अधिक से अधिक प्राप्त हो और आर्थिक हानि कम से कम हो।

अध्याय - 32

कार्यशील वित्त तथा सार्वजनिक गहण के भार से सम्बन्धित विरोध

(Functional-Finance and the Controversy Regarding Burden of Public-debt and its Shifting)

Functional Finance

क्रियाशील वित्त की विचारधारा का प्रतिपादन लार्ड किन्स् ने किया था। और प्रो॰ लर्नर ने इसका विकास किया। इनका कहना है कि राजकोषीय कार्यवाहियों की जाँच केवल उनके प्रभावों द्वारा ही की जानी चाहिए। जिस विधि के द्वारा अर्थव्यवस्था में राजकोषीय कार्यवाहियाँ क्रियाशील रहती हैं उसी को प्रो॰ लर्नर ने क्रियाशील वित्त का नाम दिया है।

क्रियाशील वित्त की विचारधारा के अनुसार, लोक वित्त मुद्रा-स्फीति तथा मुद्रा-अवस्फीत के मूल कारण को दूर करता है। जिससे आर्थिक स्थिरता कायम रहती है। क्रियाशील वित्त के अंतर्गत् सरकार की क्रियाओं के लिए निम्नलिखित उद्देश्य बताए गए हैं।

कार्यात्मक वित्त के उद्देश्य

1. **रोजगार में व द्धिः** प्रत्येक अर्थव्यवस्था के लिए बेरोजगारी को दूर करना अत्यंत आवश्यक है। अतः कार्यात्मक वित्त का उद्देश्य रोजगार में व द्धि करना होता है।
2. **आय-स्तर में व द्धिः** सरकार अपनी बजट-क्रिया द्वारा आयस्तर को प्रभावित कर सकती है। रोजगार में व द्धि करने के लिए उत्पादन को बढ़ाना आवश्यक है।
3. **आर्थिक विकासः** आर्थिक विकास के लिए सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण मुख्य उपकरण होते हैं। जिन्हें बजट प्रक्रियाओं द्वारा आसानी से प्रभावित किया जा सकता है।
4. **बचत में व द्धिः** आर्थिक विकास में व द्धि करके उत्पादन एवं रोजगार में व द्धि करके बचतों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। करारोपण से उपभोग में कमी करके बचतों को बढ़ाया जा सकता है।
5. **व्यापार-चक्रों पर रोकः** व्यापारिक मंदी एवं तेजी के समय सार्वजनिक व्यय में परिवर्तन करके व्यापार-चक्रों को नियंत्रित किया जा सकता है।

इन उद्देश्यों के लिए सरकार की क्रियाओं के लिए निम्न नियमों का पालन जरूरी होता है। जैसे -

1. **सार्वजनिक-व्ययः** सरकार का दायित्व होता है कि वह अपने व्यय को इस प्रकार नियंत्रित करें ताकि वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति की खपत चालू मूल्यों पर हो सके। सरकार को मुद्रा-स्फीति तथा अवस्फीति को रोकने के लिए निम्न कार्य करने चाहिए।

   मुद्रा-स्फीति की दशा में कार्य

   (i) कम-व्यय करके।

   (ii) नये-कर लगाकर तथा चालू करों की दूर बढ़ाकर।

   (iii) निजी अथवा गैर-सरकारी खर्च की द द्धि को रोकने के लिए सरकार रूपये-उधार ले सकती है।

   (iv) बैंक-दर बढ़ाकर

   (v) सरकार लोगों में वस्तुओं व सेवाओं की बिक्री पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में कर सकती है।

   संक्षेप में Surplus Budget की नीति अपनाकर मुद्रा-स्फीति संबंधी दबाव को रोका जा सकता हो और आर्थिक स्थिरता को बनाए रखा जा सकता है।

   मुद्रा-अवफीतिः इसके अंतर्गत् गैर-सरकारी खर्च की कमी को इस प्रकार दूर किया जा सकता है।

   (i) करों की दर घटाकर

   (ii) सरकार कुछ ऐसी मदों पर अपने व्यय में व द्धि कर सकती हैं जैसे कि व द्धावस्था पेंशन तथा बेरोजगारी भत्ता।

   (iii) ब्याज-दर को घटाकर

   (iv) सरकार अर्थव्यवस्था कें कृषि जैसे पिछड़े क्षेत्र को और अल्पविकसित क्षेत्रों को उपादान एवं अनुदान दे सकती हैं।

   (v) सरकार अपने ऋणों की अदायगी कर सकती है। जिससे लोगों की क्रय शक्ति, उपभोग व्यय, निवेश-व्यय बढ़ सकें।

2. **सार्वजनिक ऋणः** कार्यात्मक वित्त के अनुसार सरकार द्वारा उधार लेने का उद्देश्य स्वयं अधिक धन प्राप्त करना नहीं है। अपितु यह है कि जनता अपने पास Bond अधिक रखे और मुद्रा कम रखे। अर्थात् सरकार को मुद्रा-स्फीति का अवधि में उधार लेना चाहिए। और सरकार द्वारा लोगों को तभी उधार दिया जाना चाहिए जब वह यह उचित समझे कि लोगों के पास मुद्रा तो अधिक मात्रा में रहे और बॉण्ड कम मात्रा में।

3. **करारोपनः** कराधान का उद्देश्य अधिक धन प्राप्त करना नहीं है। अपितु यह है कि करदाता के पास कम मात्रा में मुद्रा छोड़ी जाए। यदि लोगों के खर्च पर पड़ने वाले कर के प्रभाव वांछनीय नहीं हैं। जैसे की मुद्रा-स्फीति में होता है। तब कराधान की मात्रा तथा करों की दरों में व द्धि की जानी चाहिए। गैर सरकारी व्यय को नियमित तथा नियंत्रित करता है।

4. **घाटे की वित्त-व्यवस्थाः** प्रो॰ लर्नर का यह भी मत है कि यदि सरकार के द्रव्य-व्यय की मात्र चालू-द्रव्य आय से अधिक हो और उसकी पूर्ति जनता से ऋण लेकर करना संभव ना हो तो उसकी पूर्ति घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा या नये नोट छापकर की जानी चाहिए विशेषकर मंदी की स्थिति में अतः क्रियाशील वित्त का प्रयोजन राजकोषीय या बजट नीति के प्रतिचक्रीय लक्ष्य को पूर्णतया प्राप्त करना है। अर्थात् क्रियाशील वित्त का उद्देश्य अर्थव्यवस्था के चक्रीय उतार-चढ़ावों को नियंत्रित करना तथा पूर्ण रोजगार व मूल्य-स्थिरता की स्थिति को प्राप्त करना है।

कार्यात्मक वित्त की धारणा कीन्स् के विचार

कीन्स् ने लोकवित्त संबंधी विचार को कार्यात्मक रूप प्रदान करने का प्रयास किया। उनका कहना है कि अर्थव्यवस्था के कुछ उद्देश्य प्राप्त करने के लिए राजकोषीय उपकरणों का सहारा लिया जाना चाहिए। इसके लिए कीन्स् ने परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के विचारों का खंडन किया। जो कि इस प्रकार हैं।

(i) सरकार का आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

(ii) बजट को छोटा रखा जाना चाहिए।

(iii) संतुलित बजट बनाया जाना चाहिए।

(iv) कर उपभोग पर लगाना चाहिए, बचत पर नहीं।

कीन्स् ने इन विचारों को कोई महत्त्व नहीं दिया। इनके अनुसार स्वतंत्र उद्यम के अंतर्गत् पूर्ण रोजगार स्थापि नहीं किया जा सकता। अर्थव्यवस्था मैं सदैव अल्प-बेरोजगारी बनी रहती है। क्योंकि प्रभाव पूर्ण माँग में व द्धि सरकारी हस्तक्षेप के बिना संभव नहीं होती। और प्रभावपूर्ण मांग सार्वजनिक व्यय में व द्धि करके ही संभव है। इन्होंने इस विचार का भी खंडन किया कि संतुलित बजट होना चाहिए बल्कि ये कहते हैं कि बेरोजगारी की स्थिति में घाटे का बजट बनाया जाना चाहिए। कीन्स् ने इस विचार का भी खंडन किया कि उपभोग पर कर लगाना चाहिए। इसका कहना है कि उपभोग पर कर लगाने से उन वस्तुओं की माँग में कमी हो जाएगी और बेरोजगारी को बढ़ावा मिलेगा। कीन्स् के अनुसार सार्वजनिक निर्माण में व्यय करने से देश में आय तथा रोजगार की मात्रा में कई गुना व द्धि होती है। यह विनियोग गुणक के कारण होता है। इनके अनुसार यदि विनियोग में व द्धि की जाती है तो इसके कारण उत्पादन कई गुना बढ़ जाएगा। माना कि अर्थव्यवस्था में ΔI के बराबर विनियोग किया जाता है और उसके फलस्वरूप आय $\Delta 4$ के बराबर व द्धि हो जाती है। तो विनियोग गुणांक इस प्रकार होगा।

$$K = \frac{\Delta 4}{\Delta I}$$

कीन्स् का यह मानना है कि विनियोग गुणांक का मान सीमांत उपभोग प्रवत्ति (M.P.C) पर निर्भर करता है। इसे इस प्रकार दर्शाया जा सकता है।

$$K = \frac{1}{1 - M.P.C}$$

गुणक की इस धारणा को चित्र द्वारा भी दिखाया जा सकता है।

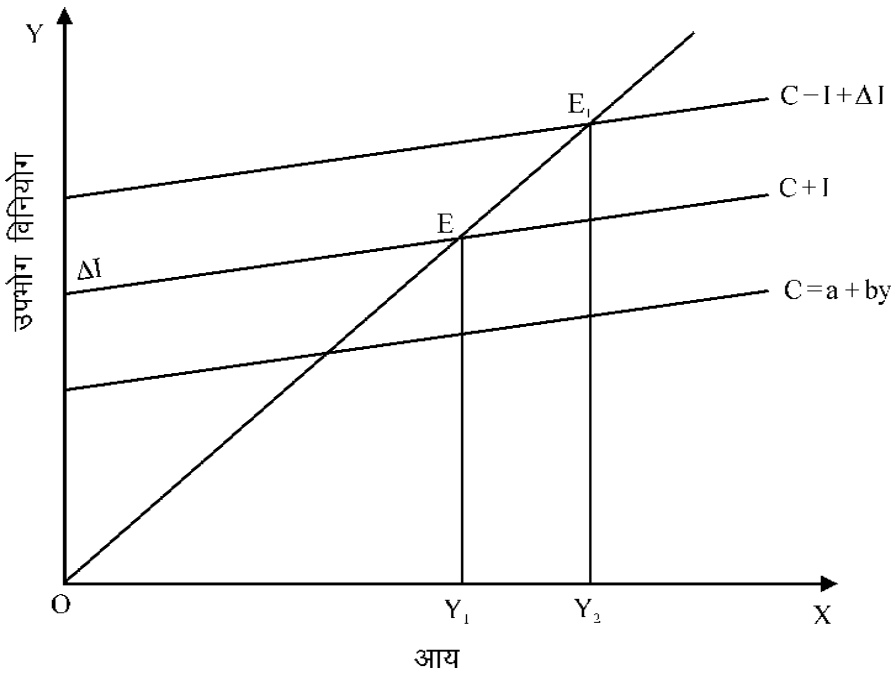

चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है कि प्रारंभिक अवस्था में संतुलन की स्थिति में OX_1 आय प्राप्त होती है। मान लीजिए कि आर्थव्यवस्था में ΔY के बराबर विनियोग किया जाता है। तो नई $\Delta I \, \Delta Y \, Y = C = I + \Delta I$ संतुलन स्थिति प्राप्त होगा और आय OY_2 निश्चित होगी। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में के विनियोग में व द्धि करने पर $Y_1 \; Y_2$ (अर्थात्) के बराबर आय में व द्धि होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मंदी काल में विनियोग बढ़ाकर मंदी को दूर किया जा सकता है। इस प्रकार कीन्स् का कहना था कि राजकोषीय नीति सरकार के हाथों में उपभोग कम करने, बचतों तो प्रोत्साहित करने एवं निवेश बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण उपकरण है। जिसे बजट-क्रियाओं द्वारा प्रभावित किया जा सकता है।

Controversy Regarding the Burden of Public Debt & its Shifting

अक्सर ऐसा कहा जाता है कि वर्तमान लोक ऋण का भारत भावी पीढ़ियों पर टाल दिया जाता है। इसको समझने के लिए दो विचार धाराओं क्लासिकल धारणा तथा नव-क्लासिकल धारणा ली गई हैं।

क्लासिल विचार धारा जैसे कि वर्तमान लोक ऋण का भार भावी पीढ़ियों पर टाल दिया जाता है। लर्नर इस बात से सहमत नहीं है। इन्होंने इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है। इन्होंने द्वितीय-विश्व युद्ध का उदाहरण लेते हुए कहा है किए इस युद्ध के दौरान सरकारों को बड़ी मात्रा में आंतरकि-ऋण लेना पड़ा था। इससे फिर उसी पीढ़ी के लोगों को अपना असैनिक उपभोग कम करना पड़ा। इस प्रकार जिस पीढ़ी ने सरकार को ऋण दिया उसी को ऋण के वास्तविक भार को वहन करना पड़ा। इन्हीं को ऋण को भुगतान के लिए अतिरिक्त कर देना पड़ेगा। क्योंकि भावी पीढ़ियों ने ऋण के मौलिकया वित्तीय भार को वहन किया था। लेकिन संपूर्ण अर्थव्यवस्था

के द ष्टिकोण से यह सही नहीं हो युद्धकालीन ऋण पर ब्याज को भुगतान तथा मूलधन भी वापसी का अर्थ है भावी करदाताओं से भावी Bond के धारकों को Funds का हस्तांतरण। ऐसे वित्तीय हस्तांतरण के कारण भावी पीढ़ियों की कुल संपत्ति में कोई प्रत्यक्ष कमी नहीं होती।

लेकिन यह तर्क इस समस्या के एक पहलू को भूला देता है। डयू का कहना है कि उपभोग एवं बचत पर ऋण एवं कर सापेक्ष प्रभाव समान नहीं होते। अधिक ऋण लेने का अर्थ है। भावी पीढ़ियों के लिए कम पूँजी स्टॉक। और फिर इसके कारण से राष्ट्रीय उत्पत्ति तथा उपभोग भी कम हो जाएंगे। पूँजी स्टॉक में कटौती के रूप में लोक ऋण का भार भावी पीढ़ियों पर टाला जाता है। क्लासिकल धारणा को इस प्रकार से भी समझा जा सकता है। यदि लोक-व्यय के लिए वित्त कर के द्वारा जुटाया जाता है तो पहली पीढ़ि, दूसरी पीढ़ी को सिर्फ कर प्राप्ति ही हस्तांवरिव करती है। किंतु यदि लोक-व्यय के लिए वित्त बॉण्ड द्वारा जुटाया जाता है जो पहली पीढ़ी, दूसरी पीढ़ी को बॉण्ड के साथ-साथ मूलधन की वापसी तथा ब्याज के भुगतान के लिए कर दायित्व को भी सौंप देती है। कर की स्थिति में पहली पीढ़ी उपभोग में अधिक कमी करेगी तथा विनियोग में कम। लेकिन लोकऋण की स्थिति में बॉण्ड के धारण के कारण इस पीढ़ी के लोग अपने को अधिक धनी अनुभव कर सकते हैं। फिर वे उपभोग में कमी करेंगे तथा बचत मे अधिक। इसका अर्थ है कि दूसरी पीढ़ी को कम पूँजी स्टॉफ प्राप्त होता है। और यही भावी पीढ़ी पर कर का भार है।

नव क्लासिकल विचाराधाराः जब पीढ़ियाँ परस्पर व्याप्त नहीं है, तब पूँजी स्टॉफ में कमी के बिना ऋण के मार को भावी पीढ़ियों पर टाला नहीं जा सकता है। इस विचारधारा में इस बात पर बल दिया है कि जब सरकार किसी परियोजना को शुरू करती है तब निजी क्षेत्र से साधन सार्वजनिक क्षेत्र में स्थानान्तरित होते हैं। फिर चाहे इसकी वित्त-व्यवस्था कर द्वारा हो या ऋण द्वारा। यदि वित्त कर के माध्यम से आता है तो करदाता अधिकांश कर राजस्व का भुगतान उपभोग में कटौती करके करते हैं। और यदि वित्त ऋण द्वारा हो तो इस फण्ड को व्यक्तियों तथा फर्मों के द्वारा अपनी परियोजनाओं के लिए मांगे गए फण्ड के साथ स्पर्धा करनी होती है। ऋण द्वारा वित्त की व्यवस्थ के कारण भावी पीढ़ी को पूंजी का कम स्टॉक प्राप्त होता है। इससे इस पीढ़ी की वास्तविक आय भी कम होगी। निजी विनियोग में भी कमी आती है। जब सार्वजनिक क्षेत्र निवेश के लिए जमा साधनों से फण्ड प्राप्त करता है तो निजी निवेश को इस जमा के बाहर निकाल दिया जाता है। इसे कभी-कभी "भीड़ से बाहर निकालना" प्रभाव कहाँ जाता है। किंतु यदि पीढ़ियाँ परस्परव्यापी हों तो भावी पीढ़ी पर भार को टालने के लिए पूँजी स्टॉक में कमी आवश्यक नहीं है।